नववामपंथी कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता

COCHIN UNIVERSITY LIBRARY
COCHIN - 682 022
UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

The Social Commitment of the New Leftist Poets

Thesis submitted to the
Cochin University of Science & Technology

for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
T.A.Babu

Supervising Teacher
Dr. M. SHANMUGHAN

Professor & Head of the Department
Dr. P.V. VIJAYAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE & TECHNOLOGY

1991

C E R T I F I C A T E

This is to certify that this **THESIS** is a bonafide record of work carried out by T.A. Babu under my supervision for **Ph.D.** and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
KOCHI. PIN 682 022.

Dr.M. SHANMUGHAN
(Supervising Teacher)

Date: 22nd October 1991.

COCHIN UNIVERSITY LIBRARY
COCHIN - 682 022
UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

उन सभी शहीदों को

जो क्रान्ति की मशाल
थामे राह में ही
दम तोड़े थे ।

प्राक्कथन

- १ -

हिन्दी की प्रगतिवादी कविता 'वामपंथी' रही थी । वह जरूर समाजोन्मुख थी और कवियों ने अपनी प्रतिबद्धता जाहिर भी की थी । 'नववामपंथी कविता' नाम के पीछे जरूर एक मकसद है । उपर्युक्त वामपंथी कविता याने प्रगतिवादी कविता से नववामपंथी कविता को अलग हटाना ही इस नामकरण का सही तर्क है । नववामपंथी कविता का दार्शनिक आधार मार्क्सवादी जरूर है लेकिन वह 'विकासशील मार्क्सवाद' है । मार्क्सवाद को परिवेश के मुताबिक विकसित करने का महान कार्य लेनिन, जोसफ़ स्टालिन और माओ-त्से-तुंग जैसे मनीषियों ने किया था । नववामपंथी कवियों ने मार्क्सवाद लेनिनवाद के साथ 'माओ चिन्तन' को भी आत्मसात किया और इसके मुताबिक अपनी सृजनशीलता के द्वारा सामाजिक क्रान्ति को बढ़ावा देने का स्तुत्य कार्य भी किया । भारत के राजनीतिक क्षितिज में एक निनाद के समान गूँज उठी 'नक्सलबाड़ी क्रान्ति' की अनुगूँजों को अभिव्यक्त करने की कोशिश भी इन नववामपंथी कवियों ने की हैं । जिस प्रकार संशोधनवादी साम्यवादी पार्टियों से नक्सलबाड़ी क्रान्ति तथा चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति को बुलन्द करने वाली 'मार्क्सिस्ट-लेनिनिस्ट' पार्टियाँ भिन्न रहती हैं, वैसे ही नववामपंथी कविता भी प्रगतिवादी कविता से अपनी नींवाधार भिन्नता सायास जाहिर करती है। इनकी अपनी 'प्रतिबद्धता' भी रही है । क्रान्तिकारियों के साथ अटूट संबन्ध, कविता को तेज़ औजार के रूप में प्रस्तुत करने की अदम्य ऊर्जा और कविताओं को साथ लिए संघर्ष में भाग लेने की तैयारी यही उनकी प्रतिबद्धता की विशिष्ट खासियतें रही हैं । यद्यपि तेलुगु कवियों जैसे सुब्बराव पाणिग्राही, चेरवंडु राजु, वरवर राव, गद्दर की 'पूर्ण सम्बद्धता' हिन्दी कवियों में उपलब्ध नहीं है फिर भी धूमिल, गोरख पाण्डेय, वेणुगोपाल, अरुण कमल आदि मानसिक रूप में ही सही बिल्कुल पीछे नहीं है ।

नववामपंथी कविता जो 'जनवादी कविता' से भी फिलहाल अभिहित हो गयी है और उसकी राजनीति को विश्लेषित करने की सफ़लतम कोशिश पहली बार 'समकालीन कविता की भूमिका' (1976) में डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने की थी । डॉ मंजुल उपाध्याय ने अपने शोध प्रबन्ध में 'समकालीन कविता और धूमिल' में धूमिल की कविता के परिप्रेक्ष्य में

समकालीन कविता के शिल्प-पक्ष को उभारने का प्रयास ही किया है । डॉ. नरेन्द्रसिंह की पुस्तक 'साठोत्तरी हिन्दी कविता की जनवादी चेतना' में यद्यपि 'नववामपंथी कविता' को भी सम्मिलित किया है लेकिन इनका 'जनवाद' मार्क्सवाद या वामपंथ नहीं है बल्कि जनतान्त्रिक विचारधारा के अधिक निकट है । इसको उन्होंने उस शोध कार्य के द्वारा सिद्ध करने की कोशिश की है (प्राक्कथन)। मार्क्सिज़्म, लेनिनिज़्म तथा माओ चिन्तन के बल पर नववामपंथी कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता को समग्रता के साथ ऊपर उभार कर प्रस्तुत करने का मेरा यह विनम्र प्रयास एकदम नया कदम है जहाँ तक मेरा विश्वास है इसके पीछे ज़रूर मेरी राजनीतिक सूझबूझ ही प्रेरणा रही है ।

यह शोधकार्य जितना सफल हुआ है यह हिन्दी के प्रबुद्ध पाठक ही मूल्यांकन कर सकते हैं । उनके समक्ष यह विनीत प्रयास समर्पित करते हुए

Cochin University of Science and Technology
Kochi - 682 022.
22nd October, 1991. T.A. Babu

अनुक्रमणिका

पृ.सं.

पहला अध्याय सामाजिक प्रतिबद्धता

ज्याँ पॉल सार्त्र का चिन्तन प्रतिबद्धता का अर्थ संलग्नता वरण की स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता मानव का आधारभूत मूल्य सामाजिक परिवेश से निहायत संघर्ष मानव की प्रगति अवरुद्ध नहीं स्वतन्त्र चयन पूर्णत्व की आकांक्षा दायित्व की भावना लेखन की चरितार्थता दुनिया को बदलना सर्जक-चिन्तक की भूमिका श्रेष्ठ कला वर्तमान व्यवस्था का अतिक्रमण कार्लमार्क्स की कला सम्बन्धी स्थापनाएँ तथा प्रतिबद्धता आधार और 'सुपरिगठन' आर्थिक आधार समाज रूपी भवन की नींव कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, संस्कृति आदि सुपरिगठन वर्गविभक्त समाज मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास सौन्दर्य चेतना बूर्ज्वा समाज शास्त्र बूर्ज्वा विचारधारा पदार्थीकृत और विश्रृंखलित मानव-चेतना श्रम-विभाजन वर्गमुक्त समाज साम्यवादी समाज स्वतः संचालित, स्वतः नियन्त्रित समाज की परिकल्पना आत्मनिर्वासन की समस्या वर्गग्रस्त समाज पराएपन का उन्मूलन समाजवादी क्रान्ति निजी सम्पत्ति की परिसमाप्ति वर्गपरक समाज का उन्मूलन पूँजीवाद का निर्मूलन नवजनवादी क्रान्ति समाजवादी क्रान्ति में कला की भूमिका विपरीत वर्गों का संघर्ष शोषितों का जागरण सर्वहारा क्रान्तिकारी वर्ग मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व कलाकार श्रमिकों के अगुआ कला तेज़ औजार लेनिन की कला सम्बन्धी स्थापना तथा प्रतिबद्धता सच्चा साहित्य श्रमिकों का उत्थान सक्रिय रचनात्मक हिस्सेदारी साहित्य की प्रचारात्मकता दल का अंकुश नारेबाजी वाला साहित्य कलाकार की स्वाधीनता सांस्कृतिक स्तर जनता का उज्जवल भविष्य सृजन तथा सहभागिकता जनता से सम्पर्क कला का जनवादी रूप सच्ची सर्वहारा क्रान्ति का विकास पूँजीवाद सर्वहारा का शत्रु साम्राज्यवाद खतरनाक शत्रु शोषण प्रमुख समस्या शोषण पूँजीवादी संस्कार सामाजिक, आर्थिक दासता से मुक्ति रचनाकार की जिम्मेदारी माओ-त्से-तुंग की कला सम्बन्धी स्थापना येनान की कला-साहित्य गोष्ठी में भाषण कला और साहित्य क्रान्ति के अभिन्न अंग जनता को एकजुट करना शत्रुओं पर आक्रमण साम्राज्यवाद को उन्मूलन करना कला और साहित्य सांस्कृतिक क्रान्ति के तेज औजार लेखकों व कलाकारों का वर्ग दृष्टिबिन्दु कलाकार का रूख कला और साहित्य का मुख्य लक्ष्य जनता जनता के प्रति समर्पित सामन्ती कला-साहित्य पूँजीपतिवर्ग का कला-साहित्य

देश-द्रोही कला-साहित्य प्रतिबद्ध कला-साहित्य प्रतिश्रुत जनवादी कला-साहित्य की संस्कृति साम्राज्यवादी कला-साहित्य की संस्कृति पुनःसंस्कार वर्गापसरण मार्क्सवाद का अध्ययन क्रान्तिकारी साहित्य की भूमिका मार्क्सवाद की प्रासंगिकता प्रतिबद्धता और कला सम्बन्धी प्लेहानॉव की स्थापना प्रोलिटकल्ट मार्क्सिम गोर्की का कला-चिन्तन लूशन की कला सम्बन्धी स्थापना नवमार्क्सवादी चिन्तन फ्रेन्कफर्ट स्कूल के प्रमुख नवमार्क्सवादी अन्टोनियो ग्रामशी का चिन्तन रेमंड विलियम्स, एडवर्ड थाम्सन, हरबर्ट मारकूस, एडर्नो, एडलर, फिशर, लूकाच, अल्थूसर आदि नवमार्क्सवादी चिन्तकों की प्रतिबद्धता तथा कला-सम्बन्धी स्थापना हिन्दी सृजनकारों की सामाजिक प्रतिबद्धता सम्बन्धी अवधारणा निष्कर्ष

दूसरा अध्याय नववामपंथी कविता का समारंभ 41

सामाजिक परिस्थिति आर्थिक परिस्थिति राजनीतिक परिस्थिति नववामपंथी कविता विकास की रूपरेखा नक्सलबाडी क्रान्ति का असर साम्राज्यवादी साजिश साहित्यिक परिस्थिति नववामपंथी जनवादी कविता का उदय जनवादी कविता गजानन माधव मुक्तिबोध नववामपंथी कविता के मार्गदर्शक मुक्तिबोध की कविता में प्रतिबद्धता का स्वर निष्कर्ष.

तीसरा अध्याय नववामपंथी कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता 74

वस्तु-तत्व समाज की दुर्दशा का पर्दाफाश अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता भ्रष्ट राजनीति के विरुद्ध आक्रमण व्यवस्था के प्रति विद्रोह तथा क्रान्ति का आह्वान नववामपंथी कविता सांस्कृतिक क्रान्ति का हथियार निष्कर्ष.

चौथा अध्याय नववामपंथी कविता का अभिव्यक्तिपक्ष 129

रूप-तत्व काव्य-भाषा शब्द बिम्ब प्रतीक निष्कर्ष.

उपसंहार नववामपंथी कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता 149

संदर्भ 153

संदर्भ-ग्रन्थ सूची 187

****
*

सामाजिक प्रतिबद्धता

प्रतिबद्धता की बहस पुरानी हो सकती है । पर आज यह देश-काल की सीमाएं लांघकर समूची मानव नियति की समस्या बन चुकी है । सबसे पहले प्रतिबद्धता के प्रश्न को आधुनिक संदर्भ से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य ज्याँ पॉल सार्त्र ने किया था । सार्त्र ने लिखा है "हमारा यह ध्रुवविश्वास है कि परिस्थिति से अलग रहना संभव नहीं । हम बचकर अप्रतिबद्ध न रह सकते हैं ।"[1] साहित्य के संदर्भ में उन्होंने सूचित किया है कि यदि साहित्य, सब कुछ नहीं है तो वह कुछ भी नहीं है । यही प्रतिबद्धता है । साहित्य यदि भोलेपन या गीतात्मकता तक सीमित है तो वह अपनी महिमा खो देता है । यदि उसका लिखित वाक्य मनुष्य और समाज के प्रत्येक आयाम को ध्वनित नहीं कर देता तो वह निरर्थक है । यदि किसी युग को साहित्य अपने में आत्मसातीकृत नहीं कर लेता तो वह व्यर्थ है ।[2]

सार्त्र ने 'साहित्य क्या है' नामक ग्रन्थ में प्रतिबद्धता का गंभीरतम अध्ययन किया है । उन्होंने इस ग्रन्थ में प्रतिबद्धता को 'संबद्धता' के अर्थ में स्वीकृति दी है ।[3] उनकी दृष्टि में 'प्रतिबद्धता' याने संबद्धता सिर्फ एक शब्द नहीं बल्कि कर्म है । युद्ध का फैसला लेना प्रतिबद्धता नहीं, युद्ध में संलग्न होना प्रतिबद्धता है ।[4] अर्थात लेखक जन जीवन के सुख-दुख का द्रष्टा नहीं है, भाष्यकार ही नहीं, वह स्थिति विशेष के कर्म के भी इच्छुक है । प्रतिबद्ध साहित्यकार और बुद्धिजीवी को राजनीतिक मोर्चे पर सक्रिय होना चाहिए । उन्हें राजनीतिक मोर्चे को जुझारू बनाने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करना चाहिए । इसके लिए लोक से संपृक्त रहना अनिवार्य है । दरअसल प्रतिबद्धता का कार्य संलग्नता है ।

वरण की स्वतंत्रता सार्त्र ने प्रतिबद्धता की बहस के दरमियान वरण की स्वतंत्रता का प्रश्न भी उठाया है । जो स्वेच्छा से किसी दर्शन को चुनता है, उसकी ही प्रतिबद्धता स्थायी होती है । किसी संगठन द्वारा हाँक कर लाये गये व्यक्तियों की वफादारी स्थायी नहीं हो सकती । अतः सार्त्र व्यक्ति को वरण की पूरी छूट देने के पक्ष में हैं । उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता मानवता का आधारभूत मूल्य है । इसकी उद्घोषणा करना प्रतिबद्ध साहित्य की जिम्मेदारी है । वे लिखते हैं "मनुष्य की समग्र स्वतंत्रता तथा मूल्य चेतना को विकसित करने में साहित्यकार की खास

भूमिका है ।[5] प्रत्येक युग में मानव ने साहित्यिक तथा कलात्मक सृजन से प्रेरणा प्राप्त कर स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से निहायत संघर्ष किया था । यह संघर्ष अनवरत है . "संघर्ष जारी रहने के कारण मानव की प्रगति अवरुद्ध नहीं होती ।"[6] पूँजीवादी समाज में मनुष्य खुद गुलाम है । वह यंत्र का पुर्जा हो गया है । इस नृशंस परिवेश में आत्मनिर्वासित होने की वजह मनुष्य उससे उबरने का श्रम भी करता है । सार्त्र ने स्पष्टतः कहा है "हम स्वतंत्र होने के लिए संघर्ष करने की स्वतंत्रता का वरण करें ।"[7]

मनुष्य अपने स्वतंत्र चयन के द्वारा अपने अस्तित्व को सार्थक बना देता है । जब तक वह स्वतंत्र चयन नहीं कर पाता और उसके मुताबिक काम नहीं करता तब तक उसका अस्तित्व भी नामुमकिन है । सार्त्र के अनुसार मनुष्य की इच्छायें कभी पूरी नहीं होती । इसलिए वह कभी भी पूर्णतः संतुष्ट नहीं होता । उसके मन में हमेशा पूर्णत्व की आकांक्षा बनी रहती है । उसकी प्राप्ति के लिए वह निरंतर संघर्षरत भी है । यह संघर्ष उसमें दायित्व की भावना जगाता है । साहित्यकार भी इससे मुक्त नहीं है वह किसी न किसी प्रकार किसी भी हालत में प्रतिबद्ध हैं ।[8]

रचना की भूमिका लेखक क्यों लिखता है ? उसकी प्रतिबद्धता किसके प्रति है ? यह प्रश्न सदा तर्कसंगत रहा है । सार्त्र ने बताया है कि रचनाकार की प्रतिबद्धता पूर्ण रूप से अपने प्रति और रचना के प्रति है । सृजन के पहले साहित्यकार को खुद ऐसा सवाल उठाना चाहिए कि मैं क्यों लिखता हूँ, किसके लिए लिखता हूँ ? याने सार्त्र ने आत्मविश्लेषण करने की जरूरत पर भी बल दिया है ।[9]

कृतिकार के माध्यम से, समूह अपनी सर्वांगीणता को पहचानता है । उसके बिना समाज जागरूक भी नहीं हो सकता । इसी तरह सर्जक, चिन्तक भी सामाजिक चेतना से अभिभूत हुए बिना श्रेष्ठ सृजन भी नहीं कर सकता । यों व्यक्ति और समाज आपसी माध्यम है । याने व्यक्ति और समाज का परस्पर माध्यमीकरण ही श्रेष्ठ कला का रहस्य है ।

साहित्य में परिवेश के यथार्थ के प्रति प्रतिक्रिया और बदलाव की प्रवृत्ति रहती है "साहित्य और कला में प्रचलित संरचना को बदलने की प्रक्रिया भी अन्तर्निहित है दुनिया को बदलने के माफिक खुद साहित्यकार भी तब्दील हो जाता है । अतः यह बदलाव द्वन्द्वात्मक है ।[10]

सार्त्र की राय में लेखन के पीछे नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक चुनौतियां होती हैं । उसकी अन्तर्वस्तु सदैव राजनीतिक ही रहती है । फिर भी वह मार्क्सवादियों द्वारा समर्थित साहित्य की अतिरंजित राजनीतिक भूमिका को मतान्ध कहते हैं । वह पूँजीवादीयुगीन साहित्य को पूँजीवाद की सृष्टि ही समझते हैं । उनके अनुसार साहित्य की मुक्ति वर्ग

व्यवस्था से मुक्ति है । वर्गमुक्त समाज में ही साहित्य, व्यक्ति का प्रकल्प बन सकेगा ।

सार्त्र वर्गच्युत लेखक की कल्पना भी करते हैं जो प्रबुद्ध समुदाय का हिमायती है । सार्त्र के विचार में उच्च या मध्य वर्ग का होने से भी लेखक स्वतंत्र होकर लिख सकता है । वह यदि चेतना संपन्न है तो बूर्ज्वा विचारधारा और इलीट वा संपन्न रईस वर्ग से भी आज़ाद रहता है । वर्ग समाज में लेखक का यही स्वरूप है । वह वर्गविमुक्त होकर सार्वभौमिक आशा-आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करता है । लेखक की इस अपील से मानव चेतना भी मुक्त होती है । अतः लेखक की स्वतंत्रता मानव की स्वतंत्रता बन जाती है और पाठक लेखन को पढ़कर उसी तरह मुक्त हो सकता है जिस तरह लेखक सृजनरत रहकर अपने वर्ग, अपने पूर्वाग्रहों या अपनी सीमाओं से मुक्त हो जाता है । सार्त्र इस मुक्ति को उच्चतम और गहनतम अर्थ में राजनीतिक मानते हैं ।

प्रारंभ में अमूर्त अवधारणाओं पर चिन्तन मनन करने वाला सार्त्र, अपने विकासक्रम में वाम अस्तित्ववाद से मार्क्सवादोन्मुख हो गए थे । वह साहित्य को समाज-परिवर्तन से जोड़ने लगे । उनकी राय में सचेत लेखन, नैतिक, राजनीतिक व प्रतिबद्ध कर्म है । साहित्यकार प्रतिबद्ध होने के लिए अभिशप्त है जैसे कि वह स्वतंत्र रहने के लिए अभिशप्त है ।[11] यों सार्त्र ने लेखक, लेखन और प्रतिबद्धता के साथ स्वतंत्रता को भी जोड़ दिया है !

निष्कर्षतः जैसे कि प्रारंभ में सूचित किया है कि सृजन के क्षेत्र में सबसे पहले प्रतिबद्धता शब्द का प्रयोग करते हुए सार्त्र ने ही उसका विश्लेषण किया था । उन्होंने प्रतिबद्धता को मार्क्सवादी जामा पहना दिया । स्वतंत्रता से जोड़ भी दिया । दरअसल सार्त्र मार्क्सवाद को मानते हुए भी मार्क्सवादी नहीं रहे थे । उन्होंने लेनिनग्राड़ के सम्मेलन में कहा था कि फ्राइड, काफ्का और जेम्स ज्वायस को पढ़कर मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हो गये थे ।[12] एक अस्तित्ववादी दार्शनिक के रूप में ही वह विश्वविख्यात भी हुए । सचमुच प्रतिबद्धता संबन्धी सार्त्र का चिन्तन अवश्य एक नया कदम है, पर वह अंतर्विरोधों से भरपूर है जो उसकी ज़िंदगी का ही प्रतिफलन है ।

प्रतिबद्धता तथा कला सम्बन्धी मार्क्सवादी स्थापनाएं: कार्ल मार्क्स ने 'प्रतिबद्धता' शब्द कहीं भी प्रयुक्त नहीं किया था । फिर भी उनके चिन्तन में प्रतिबद्धता का निकष छिपा हुआ है । जीवन के अन्य बुनियादी सवालों के साथ मार्क्स और एंगल्स ने साहित्य एवं कलासम्बन्धी प्रश्नों पर भी अपने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं । वास्तव में समूचे मार्क्सवादी साहित्यचिन्तन का मूल स्रोत 'ए कॅण्ट्रीब्यूशन टु दि क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकानोमी' पुस्तक की भूमिका है ।

मार्क्स और एंगेल्स ने साहित्य चिन्तन अथवा सौन्दर्यशास्त्र पर अलग से कोई ग्रन्थ नहीं लिखा था । संसार तथा समाज को जानने, समझने, विश्लेषित करने और अन्ततः उसे बदलने की आवश्यकता को प्रतिपादित करनेवाला उनका दार्शनिक चिन्तन ही वह स्रोत है जो हमें जीवन के अन्य बुनियादी सवालों के साथसाथ साहित्य तथा कला के बारे में भी एक नयी समझ और नयी दृष्टि देता है ।[13] इस मुद्दे पर विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने लिखा है कि कार्लमार्क्स और एंगल्स के लेखन में कोई व्यवस्थित कला-सिद्धान्त या सौन्दर्यशास्त्र नहीं मिलता । दोनों की कला और साहित्य में रुचि थी । जो भी हो इस सम्बन्ध में उनके जब तब प्रकट किए विचारों के आधार पर एक मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र निर्मित करने का इधर कई वर्षों से प्रयत्न चलता आ रहा है ।

आधार और सुपरिगठन मार्क्स के अनुसार कला और साहित्य समाज का सुपरिगठन हैं । आर्थिक 'आधार' के ऊपर ही यह सुपरिगठन निर्मित होता है । 1859 के अपने 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा के योगदान की भूमिका' में मार्क्स ने इस आधार आधेय सम्बन्ध को सविस्तार प्रस्तुत किया है । इसमें आर्थिक आधार को समाज रूपी भवन की नींव और कला, साहित्य, दर्शन, धर्मविधि और राजनीति को सुपरिगठन माना गया है । कला और साहित्य, सुपरिगठन की अन्य विचारधाराओं -सौन्दर्यात्मक, राजनीतिक, दार्शनिक, कानूनी, नैतिक आदि में से अग्रगामी विचार होते हैं । सामाजिक, भौतिक जीवन के विकास में, विशेष रूप से समाज के अन्तर्गत क्रान्तिकारी चेतना के विकास में, विचारधारा के विभिन्न रूपों - जिनमें साहित्य एवं कला भी शामिल है का महत्वपूर्ण योग होता है[14]। ये समाज के जीवन और विकास को दिशा देते हैं । आधार किसी विशेष ऐतिहासिक युग में जनता का आपसी उत्पादन संबन्ध है । 'आधार' के बदलने पर 'सुपरिगठन' भी बदल जाता है । अतः जैसा आधार होगा, वैसा ही सुपरिगठन । आधार और सुपरिगठन की अंतःक्रिया एक शाश्वत सत्य है । उनके आपसी अंतः संबन्ध को न समझना मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के आधारों का ही निषेध करना होगा । मार्क्स ने यह भी कहा है कि सामाजिक जीवन की उत्पादन प्रक्रिया में मनुष्य सुनिश्चित सम्बन्धों की स्थापना करता है । यह अपरिहार्य है । यह सम्बन्ध समाज के आर्थिक धरातल का निर्माण करता है । आर्थिक धरातल पर राजनीतिक बाह्य संरचना खडी होती है। सामाजिक चेतना इसके साथ सामंजस्य स्थापित करती है । सामान्यतः भौतिकउत्पादन विधि ही हमारे सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन की प्रक्रिया को निर्धारित करती है ।[15] दरअसल, मार्क्स की यही धारणा थी कि आर्थिक 'आधार' में परिवर्तन के साथ सम्पूर्ण विशाल बाह्य 'संरचना' कमोबेश उसी तेजी के साथ रूपान्तरित हो जाती है ।

वर्ग विभक्त समाज आधुनिक समाज वर्गविभजित समाज है । आदिम साम्यवादी युग के समाप्त होते ही समाज वर्गों में विभजित होने लगा ।[16] वर्गविभक्त समाज में बूर्ज्वा और श्रमिक प्रबल वर्ग हैं ।[17] जो वर्ग उत्पादन के साधनों पर प्रभुत्व जमाए रखता है वह साधनविहीन वर्गों को शोषित करके स्वयं बलवान् और धनवान् बन जाता है । शोषक वर्ग अपने प्रभुत्व को अमर बनाए रखने के लिए मिथ्याचेतना का प्रचार और प्रसार करता है और सत्य को छिपाने का भरसक प्रयत्न भी करता है । मार्क्स की इस अवधारणा का समर्थन करते हुए हावर्डफास्ट ने भी कहा था कि हर सत्य वर्गीय होता है । वर्गविभक्त समाज में शोषक वर्गों की विचारधारा का आधार भाववाद होता है । उनकी यह विचारधारा जीवन जगत् के सत्यों का उद्घाटन नहीं कर सकती । शोषक वर्ग अपने हितसाधन के लिए अज्ञान को बढ़ावा देकर हमेशा सत्य को छिपाये रखना चाहता है ।[18]

सौन्दर्य चेतना समाज वर्ग विभक्त होता है तो चेतना भी वर्गीय होती है । इस प्रकार सौन्दर्यचेतना का चरित्र भी वर्गीय होता है । सौन्दर्यचेतना, दरअसल, मनुष्य की समग्रचेतना का ही एक अंग है । चेतना, एंगेल्स के शब्दों में " सदैव सचेतन अस्तित्व " होती है । यह सचेतन अस्तित्व हवा में नहीं होता, बल्कि मनुष्य समाज में होता है ।[19] वर्गविभक्त समाज में सौन्दर्याभिरुचि और विचार भी वर्गसापेक्ष होते हैं । याने भौतिक वस्तुओं से लेकर भाव एवं विचार तक वर्गीय होते हैं ।

मार्क्स मनुष्य को प्रकृति का अंग मानते हैं, जहां सौन्दर्यबोध उपलब्ध है । किन्तु मानव का सौन्दर्यबोध अन्य प्राणियों की तुलना में विकसित और विशिष्ट होता है ।

कलावाद और मधुमक्षिका की तुलना करते हुए मार्क्स ने बताया है कि मधुमक्खी प्रवृत्तिवश मधु का छत्ता बनाती है जबकि स्थापत्य कलाकार, भवन का मानचित्र पहले से ही अपनी कल्पना में बना लेता है और उस मानसिक मानचित्रानुसार भवन, मूर्ति आदि बनाता है और इस रचना प्रक्रिया में वह संचेतना से संशोधनपरिवर्द्धन भी करता है । अतः कलाकार की प्रवृत्ति अपनी सहजता का संचेतना और कल्पना से अतिक्रमण करती है और यह पशुपक्षियों तथा अन्य जीवों की रचनात्मकता से अधिक स्वतन्त्र और स्तरीय होती है ।[20]

मार्क्स यह भी कहते हैं कि मानवचेतना ही मानव-गतिविधियों का स्रोत है बल्कि वह चेतना किसी अलौकिक स्रोत से नहीं आती और सामाजिक विकासक्रम के साथ इन्द्रियबोध और चेतना में भी परिष्कार होता जाता है । दरअसल मनुष्य के इन्द्रियबोध का निर्माण व्यक्ति का नहीं, निरपेक्ष चेतना का नहीं, अमूर्त दैवी वरदान का नहीं, बल्कि अब तक के समूचे विश्व समाज के इतिहास का काम है ।[21]

सामाजिक मनुष्य कलाकार तथा सहृदय मानवीय ऐन्द्रिकताओं की समृद्धि भी करते हैं । वे केवल मांसी इंद्रियों का ही नहीं, बौद्धिक तथा व्यावहारिक चेतना को भी क्रमशः विकसित करते हैं अपनी बर्बर और वन्य प्रवृत्तियों का भी अतिक्रमण कर देते हैं चाहे वह रति, घृणा या भय हो ।

परिवेश पर भी सौन्दर्य बोध का प्रभाव पडता है इसका परिणाम यही होता है कि केवल सामाजिक जिन्दगी तथा उपयोगी वस्तुएं ही नहीं प्रकृति भी मानवीय बोध को ग्रहण करके मानवीकृत (ह्यूमानाइज) हो जाती है । अतः सौन्दर्यबोध, वस्तुओं तथा प्रकृति दोनों को मानवीय बना देता है ।

बूर्ज्वा समाजशास्त्र बूर्ज्वा सौन्दर्य तथा समाजशास्त्र के विरुद्ध ही मार्क्सवादी सौन्दर्य तथा समाजशास्त्र का उदय हुआ है ।[22] मार्क्सवादी समाजशास्त्र तथा अन्य बूर्ज्वा समाजशास्त्रों में अन्तर यह है कि मार्क्सवादी प्रगतिशील रचना में संभावित परिवर्तन की चेतना को खोजता है जबकि बूर्ज्वासमाजशास्त्री सुधारों तक सीमित रह जाते हैं । मार्क्सवाद परिवर्तन पर बल देता है और उन रचनाओं को महत्व देता है, जिनमें परिवर्तन का चित्रण होता है । मार्क्सवाद, सर्वहारा को ही नवीन, प्रगतिशील संस्कृति का सर्जक मानता है ।[23] क्योंकि सर्वहारा पदार्थीकृत समाज से बाहर रहता है । मार्क्स के चिन्तन पर जोर देकर गाल्डमॅन लिखते हैं बूर्ज्वासमाज व्यवस्था और बूर्ज्वाविचारधारा में कुछ भी पवित्र नहीं रह जाता, न उसमें आध्यात्मिक धार्मिक पवित्रता रहती है और न ऐतिहासिक भविष्य की पावनता । अतः बूर्ज्वाज़ी ने ही सर्वप्रथम असुन्दर चेतना का प्रसार किया है । वह मिथ्या तर्कबुद्धि द्वारा कला और साहित्य को हीनज्ञान सिद्ध करता है ।[24]" स्पष्ट है कि बूर्ज्वा व्यापारी या उद्योगपति ऐसी किताब या कलाकृति को कभी महत्व न देगा जो पूँजीवाद की जड़ पर चोट करती हो । इतना ही नहीं वे उसका सख्त विरोध भी करेंगे । वे सस्ते साहित्य और कला को ही बढ़ावा देते हैं, जिनमें यौन और हिंसा की भरमार हो । पूँजीवाद में उन्हीं लेखकों और कलाकारों का आदर होता है जो यौनप्रसंगों और हिंसा का आकर्षक वर्णन कर भीड़ की वासना को भड़काते हैं ।[25] समूह की सहज वृत्ति को तृप्त करने वाले सृजन की बिक्री खूब होती है और पूँजीपति प्रकाशक को बिक्री से मतलब है, समाजोत्थान से नहीं ।

मार्क्स के अनुसार बूर्ज्वा समाजव्यवस्था में यथार्थ सौन्दर्यबोध का आनन्द असंभव है । क्योंकि श्रमिकों का अधिकतर समय अपनी अनिवार्य जरूरतों की पूर्ति में ही चला जाता है । मार्क्स ने 'गेटे और 'शेक्सपियर' को उद्धृत करते हुए मनुष्य पर मुद्रा के शासन का विरोध किया है और कहा है कि चिन्ताग्रस्त मनुष्य सौन्दर्य का आनन्द नहीं ले सकता ।[26] अतः बूर्ज्वा समाज में शोषित जनता सर्वदा अस्तित्व निर्वाह

की चिन्ता से मुक्त नहीं हो पाती । अतएव वर्गशोषण विमुक्त समाज में ही सौन्दर्य की सार्वजनिकता सम्भव है ।

श्रमविभाजन तथा स्वतंत्रता कार्लमार्क्स ने श्रमविभाजन जन्य जड़ता, अवसाद, ऊब, अकेलापन और उचाटपन से बचाव तथा व्यक्तित्व के अन्य आयामों के विकास के लिए श्रमविभाजन में स्वातंत्र्य की संभावना की बात कही है । श्रमविभजित समाज में साहित्य और कला के क्षेत्र में भी श्रमविभाजन हो जाता है । वहां भी मुक्तता की जगह यह मांग होती है कि कोई लेखक एक विधा में ही जुड़ा रहे या कलाकार कला के किसी विशिष्ट प्रकार से बँधा रहे । मार्क्स इस सत्य से अवगत थे कि अतिविशेषीकरण अन्य संभावनाओं को समाप्त कर देता है ।

'जर्मनविचारधारा (1846) में मार्क्स ने साम्यवाद की परिकल्पना इस प्रकार की है कि वर्गमुक्त समाज में श्रमविभाजन न रहेगा और उस समाज में प्रत्येक व्यक्ति कर्मी भी होगा और कलाकार भी । वह एकायामी न होकर, बहुआयामी मनुष्य हो सकेगा । मार्क्स आत्मनिर्वासन और ऊब को मिटाकर व्यक्तित्व के असीम विकास की संभावना के लिए ही साम्यवादी व्यवस्था का समर्थन करते हैं । साम्यवादी समाज सहकारिता के आधार पर होगा । इसमें अधिकारी और कर्मचारी या मालिक और मज़दूर न होंगे । सब कार्यकर्ता साथी होंगे, हमसफ़र होंगे । यह स्वतः संचालित तथा स्वतः नियंत्रित समाज की परिकल्पना है । और इस समाज में दक्षता के कारण मूलतः श्रमविभाजन होने पर भी, कार्यपरिवर्तन की काफी स्वतंत्रता रहेगी । साम्यवादी व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति एक कार्य करते करते न ऊब जाएगा । वह स्वेच्छा से कोई अन्य कार्य सीखकर पेशा या रुचि बदल सकेगा । ऐसे समाज में सृजन स्वाभाविक और व्यापक होगा, मात्र कुछ विशिष्ट व्यक्तियों या प्रतिभाओं तक सीमित नहीं रहेगा ।

आत्मनिर्वासन की समस्या कला और साहित्य के सन्दर्भ में आत्मनिर्वासन केन्द्रीय प्रश्न रहा है । कलाकार और लेखक अपनी रचना में आत्मनिर्वासन और उससे मुक्ति की बातों का अनेक प्रकार वर्णन करता है क्योंकि वह मानवसमाज और अपने जीवन में इसका तीव्र अनुभव करता है । वर्गग्रस्त समाज में आत्मनिर्वासन अनिवार्य है, इसलिए क्रान्ति भी अनिवार्य हो जाती है और वर्गमुक्त समाज की संरचना भी । इस अर्थ में आत्मपराएपन मात्र वर्णन का विषय नहीं, बल्कि क्रान्ति के लिए एक अपील भी है ।

वास्तव में सृजन को भी आत्मनिर्वासन का प्रमाण माना जा सकता है । कलाकार कला या साहित्य में या तो अपनी अपूर्णता, अतृप्ति या असंतोष व्यक्त करता है या पूर्णता की कल्पना या इच्छा जाहिर करता है जो वास्तविक संसार में नहीं है, कला और साहित्य में उसी को प्राप्त करने की कोशिश होती है । अतः इस अर्थ में कला और साहित्य

कृतिकार के आत्मनिर्वासन का ही प्रमाण है । सचमुच मनुष्य का अपने और दूसरों से, आन्तरिक और बाह्यतः अलगाव महसूस करना, किसी से संलग्न न रहना ही आत्मनिर्वासन है । मानवीयता से ही न जुड पाने के कारण आत्मनिर्वासित व्यक्ति अमानवीय हो जाता है । इसका तात्पर्य यह है कि वर्गविभजित समाज में जो भी रचा गया है, धर्म या मिथक, दर्शन, कला और साहित्य, उस सब में मनुष्य का आत्मनिर्वासन ही व्यक्त हुआ है और यह स्थिति पूँजीवादी समाज में चरमसीमा को पहुँचती है क्योंकि उसमें मनुष्य स्वयं बिका हुआ महसूसता है ।[27] उदाहरणतः उत्पादक के रूप में श्रमिक का उत्पादित वस्तुओं पर कोई अधिकार नहीं होता । वह स्वेच्छा से उन्हें बनाता नहीं है । मजबूरन हीं उसे काम करना पड़ता है । पूँजीवादी समाज में कलाकार और साहित्यकार का श्रम आत्मनिर्वासित श्रम है । कला क्रय-विक्रय का माल बन जाती है । कलाकार शोषित-श्रमिक बन जाता है जो अन्य श्रमिकों की भांति, शोषक वर्ग के लिए ' अतिरिक्त मूल्य ' उपजाता है ।[28] पूँजीवादी समाज में कलाकार, कलाकृतियों के विक्रेता का और लेखक, प्रकाशक का क्रीतदास बनने के लिए विवश हो जाता है । कार्लमार्क्स का इस सम्बन्ध में एक उद्धरण ध्यानपूर्वक है मिल्टन एक अनुत्पादक श्रमिक था, क्योंकि उसने पाँच पाउण्ड के लिए पैराडायज़ लास्ट बिकना पड़ा । इसके विपरीत जो कारखाने के श्रमिक की तरह, अपने मालिक या प्रकाशक के लिए (बाज़ार की मांग पर) लेखन कार्य करता है वह उत्पादक श्रमिक है. .क्योंकि (ऐसे पेशेवर) लेखक का उत्पादन पूँजी कोटि के अन्तर्गत आएगा और ऐसे उत्पादन का उद्देश्य (प्रकाशक) पूँजी की वृद्धि होता है । एक गीत गायक जो अपने लिए गीत बेचता है, वह अनुत्पादक श्रमिक है परन्तु वही गीत गायक यदि किसी उद्योगपति की कम्पनी के लिए गाता है ताकि उसे बाजार में बेचा जा सके, तो वह उत्पादक श्रमिक बन जाता है । '[29] प्राचीन युग की कला और साहित्य अनुत्पादक, अव्यावसायिक सृजन था, यह तथ्य भी मार्क्स को मोहता था । उन्होंने लिखा है कि " पूँजीवाद में लेखक, प्रकाशकपूँजीपति का श्रमिक है । "[30] यही कारण है कि पूँजीवादी व्यवस्था में अलगाव मानसिक व्याधि के रूप में परिणत हो जाता है । अतः बूर्ज़्वा समाज में कला और साहित्य में आत्मनिर्वासन की सर्वाधिक अभिव्यक्ति होती है । आत्मनिर्वासित व्यक्ति अपने आत्मनिर्वासन से तभी मुक्त हो सकता है जब वह मानवीय व्यवस्था बनाने के लिए क्रान्ति में भाग ले ।[31] आत्मनिर्वासन के उन्मूलन के बिना न तो मनुष्य की स्वतंत्रता और न ही एक मानवीय समाज की सृष्टि संभव है । अतः समाजवाद का सबसे बुनियादी ऐतिहासिक मिशन यह है कि वह आत्मनिर्वासन का उन्मूलन करे । और यह ऐतिहासिक कृत्य केवल समाजवादी क्रान्ति तथा निजी संपत्ति की परिसमाप्ति से ही संभव है ।[32]

निजी संपत्ति की परिसमाप्ति कार्लमार्क्स निजी संपत्ति और वर्गपरक संरचना ही आत्मनिर्वासन के मूलाधार मानते हैं । उनके इस चिन्तन पर जोर देकर अलथूसर ने स्पष्ट किया है कि आत्मनिर्वासन का निर्मूलन वैयक्तिक सम्पत्ति और पूँजीवाद की परिसमाप्ति पर निर्भर है । यही कला व साहित्य का विषय होना चाहिए ।[33] जब तक समाज में शोषक और शोषित का सम्बन्ध बना रहेगा तब तक सच्चे अर्थों में समाजवाद व साम्यवाद की स्थापना नहीं हो सकती । इस तथ्य की पहचान साहित्यकार के लिए बहुत जरूरी है । शोषक और शोषित के सम्बन्ध को समाप्त करने के लिए निजी सम्पत्ति की परिसमाप्ति अनिवार्य है, तभी मानव की सर्जनात्मकता और मनुष्य के मौलिक अधिकार सम्पूर्णतः स्वतंत्र हो पायेंगे । वर्गसंघर्ष तथा जनक्रान्ति से ही यह संभव है ।

वर्गसंघर्ष में कला की भूमिका मार्क्सवाद कला की क्रान्तिकारिता पर बल देता है । अभी तक आविर्भूत समस्त समाज का इतिहास वर्गसंघर्ष का इतिहास रहा है ।[34] दो वर्गों का संघर्ष आकस्मिक नहीं, इतिहास सम्मत है । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार विपरीत वर्गों का यह संघर्ष अनिवार्य है । मार्क्स ने कहा है "पिछले प्रत्येक समाज का इतिहास वर्गविरोधों के इतिहास का इतिहास है, उन वर्गविरोधों का जिन्होंने भिन्न युगों में भिन्न रूप धारण किया था ।[35] शोषितों के जागरण के बिना क्रान्ति सफल नहीं होगी । शोषण के विरुद्ध शोषित वर्ग का जागरण होना चाहिए । मार्क्स का कथन इस सन्दर्भ में स्मरणीय है कि पूँजीपति वर्ग के मुकाबले में आज जितने भी वर्ग खडे हैं उन सबमें सर्वहारा ही वास्तव में क्रान्तिकारी वर्ग है ।[36] और सांस्कृतिक क्रान्ति सर्वहारा मजदूरों, किसानों और सैनिकों के प्रयत्न से मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व में ही होती है । सर्वहारा वर्ग का अपना दर्शन है, साहित्य और कला है । ये साहित्य और कला सामाजिक तथा सांस्कृतिक जनक्रान्ति को प्रश्रय देते हैं । साहित्य और कला वर्गसमाज में वर्गशक्तियों के संगठन के काम में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं ।

सामाजिक परिवर्तन के लिए कलाकार को श्रमिक वर्ग के अग्रिम दस्ते में रहना चाहिए और सभी मोर्चे पर संघर्ष चलाता रहना चाहिए । उसे अराजनीतिक कला के मिथक को तोड़ना चाहिए । मार्क्स की दृष्टि में वही साहित्य सच्चा साहित्य है जो वर्ग संघर्ष को प्रश्रय देता है । उनका मत है कि लेखक वह है जो अपने सृजन को किसी का साधन न समझे । इसका अर्थ यह है कि मार्क्स सृजन को अपने में साध्य मानते थे क्योंकि वह मानव की चेतना का रंजक और उन्नायक होता है ।[37] उन्होंने लिखा है कि कलम तभी उठाओ जब कविता के सिवा कहने का अन्य कोई विकल्प न हो । जब तुम सामाजिक प्रेरणा महसूस करोगे तभी सृजन में संलग्न रहो । .यदि तुम मनुष्य को मनुष्य और संसार से उसके सम्बन्धों को मानवीय सम्बन्ध मानते हो तो प्रेम के बदले प्रेम,

विश्वास के बदले विश्वास की आशा कर सकते हो । यदि तुम कला का आनन्द लेना चाहते हो तो तुम्हें कलात्मक अभीप्सा होनी चाहिए । यदि तुम दूसरों पर प्रभाव डालना चाहते हो, तुम्हें वास्तव में ऐसा व्यक्ति होना पड़ेगा जो प्रभावी ढंग से दूसरों को अनुप्रेरित और प्रोत्साहित करता है ।[38] कवि को इतना ही नहीं, समाज की सभी ज्वलन्त समस्याओं का विश्लेषण एवं विवेचन करके जनता को वर्ग-संघर्ष के लिए तैयार भी करना चाहिए सामाजिक प्रेरणा या निर्देश के अहसास के लिए कवि को चाहिए कि वह घटनाओं के मझधार में रहे । कवि के लिए ज़रूरी है कि वह अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, दैनिक जीवन के यथार्थ आदि से अवश्य अवगत हो जाये । वह इतिहास को समझने की वैज्ञानिक दृष्टि हासिल करें । कवि के लिए विद्वत्तापरक पुरानी पोथियों या प्रत्ययवादियों के ग्रन्थ व्यर्थ हैं क्योंकि वे दकियानूसी याने अतीतोन्मुख होते हैं । कला और साहित्य परंपरा का प्रतिबिंब नहीं है । कलाकार अपने माध्यम से विशिष्ट विचारधारा को ही प्रकट करता है । याने कवि या कलाकार यथार्थ प्रतिबिंबक नहीं, स्रष्टा होता है । संसार को बदलना कलाकार का दायित्व है । क्योंकि उनकी चेतना समाज-सापेक्ष होती है ।[39]

प्रतिबद्धता तथा कला सम्बन्धी लेनिन की स्थापना :- लेनिन का निबन्ध 'पार्टी संगठन तथा पार्टी साहित्य' का प्रकाशन 1905 नवम्बर में, बोल्षेविक समाचारपत्र 'नॉवयषिसिन्' में हुआ था । साहित्य और कला पर' शीर्षक ग्रन्थ में तथा 'संकलित रचनाओं (भाग 12, पृ.99 105) में यह निबन्ध उपलब्ध है । लेनिन की प्रतिबद्धता तथा कला-सम्बन्धी स्थापनाओं की जानकारी इन्हीं रचनाओं से मिलती है ।

लेनिन के अभिमत में " मार्क्सवाद केवल अतीत की ही व्यवस्था नहीं करता, अपितु भविष्य की निर्भयपूर्वक घोषणा भी करता है और उसकी स्थापना के लिए दृढ़ 'व्यावहारिक सक्रियता' की ओर भी संकेत करता है ।[40] दरअसल वे मार्क्सवाद की व्यावहारिक सक्रियता पर ज़ोर देते हैं । 'साहित्य और कला पर' तथा 'पार्टी संगठन तथा पार्टी साहित्य' इसका ज्वलन्त मिसाल है ।

साहित्य का विस्तृत विश्लेषण करते हुए लेनिन ने लिखा : "साहित्य अपने युग और वर्ग के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता ।"[41] उसका मुख्य उद्देश्य जनता के विचार भाव और इच्छा-शक्ति को संगठित कर जीवन को उन्नत करना है । उनकी राय में सच्चा साहित्य असंख्य श्रमिकों के उत्थान में सहायक है । वे साहित्य को श्रमिक वर्ग के एक अविच्छिन्न अंग के रूप में देखना चाहते हैं ।"[42] उनके लिए साहित्य से मतलब जनता के वास्ते जनता की स्थितियों का चित्रण करना है । दुनिया के तमाम महान लेखकों का कहना है कि जो लेखक अपनी जनता की मुसीबतों से दुःखी नहीं है, जिसका दिल जन साभान्य के दुःख-दर्दों

से कराह नहीं उठता उसे सच्चा साहित्यकार नहीं माना जा सकता । आज की स्थिति में लेखन का महत्व ही इस बात में निहित है कि वह व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने में अपनी अहम भूमिका अदा करे । इन्सान व इन्सान के बीच के सचेतन रिश्ते की खुशबू उसमें महके । सतह से ऊपर नहीं, सतह की तली तक वह अपने पाठक को ले जाए ।"[43] आम जनता की मुसीबतों के साथ सक्रिय रचनात्मक हिस्सेदारी भी अनिवार्य है । "टाल्सटाय अपने सम्भ्रान्त परिवार और वर्ग की परंपराओं से नाता तोड़कर गरीब जनता और किसानों की दुनिया में विचरने लगे थे और हर प्रकार के पाखण्ड और जुल्म का विरोध करने लगे थे । उनकी महानता, गहरी मानवीयता तथा सृजनात्मकता में निहित थी ।[44] लेनिन ने लेखक से सिर्फ इस बात की आशा की कि वह समाज से जुड़ा रहे, समाज में होने वाले परिवर्तनों को देखता रहे । इसके अलावा रचनात्मक क्षेत्र में किसी संकीर्णवाद या सिद्धान्त के अनुरूप लिखने की कोई जरूरत नहीं है ।

लेनिन ने साहित्य की सोद्देश्यता पर बल देते हुए कहा था कि साहित्य को पार्टीजन होना चाहिए[45] एवनर जिस ने भी इसका समर्थन किया है ।[46] लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह साहित्य में पार्टी के नियमों को प्रस्तुत करने के लिए यों कह रहे हैं । क्या प्रतिबद्ध होने के लिए किसी दल का अंकुश अनिवार्य है ? लेनिन ने ही यह सवाल उठाया था । उन्होंने 'पार्टी संगठन और पार्टी साहित्य' में इसका सही जवाब दिया है ।[47] यह सर्वविदित है कि मक्सिम गोर्की और मायकोफ्सकी पार्टी के सदस्य नहीं थे । फिर भी उनकी रचनायें जनता और जनक्रान्ति के प्रति प्रतिबद्ध थीं । एवनर के मतानुसार कवि को कम्यूनिज्म, कम्यूनिस्ट पार्टी तथा सर्वहारा के प्रति प्रतिश्रुत होना चाहिए ।[48] कान्सस्टान्टिन फेड़िन की यही दृष्टि है, कला और साहित्य समाज और आम जनता पर केन्द्रित रहे ।[49] लेनिन ने स्पष्टतः अभिव्यक्त किया है कि वर्गीय समाज में साहित्य राजनीति से बच नहीं सकता, क्योंकि हर वर्ग-संघर्ष राजनीतिक संघर्ष होता है ।[50] फिर भी प्रत्येक कला का पुजारी तथा कलाविद् पूरी स्वतंत्रता के साथ अपने हृदय की प्रेरणा के अनुसार बिना किसी दबाव के अपनी कला का विकास कर सकता है ।[51] प्रत्येक व्यक्ति का जो अपने को कलाकार मानता है, यह अधिकार है कि वह स्वतंत्र रूप से अपने विचारों-आदर्शों के अनुरूप अपनी रचनायें रचे । उनका मत यह है कि लेखक को कभी अपने विचारों को पाठकों पर थोपना नहीं चाहिए उन्हें साहित्य में नारेबाजी और साहित्य का प्रचारात्मक होना पसन्द नहीं था । उन्होंने साहित्य से नारेबाजी के बजाय, 'उत्कृष्ट कलात्मक गुणों की मांग की है ।'[52] लेनिन यथार्थ चित्रण, साहित्य का उत्कृष्ट गुण मानते हैं, पर साथ ही उसका सामाजिक प्रतिबद्धता से समन्वय भी चाहते हैं । अतः श्रेष्ठ कला और साहित्य

पार्टी नीति तथा पार्टी कार्यक्रम के बजाय मार्क्सवादी चेतना और सर्वहारा का अधिनायकत्व ग्रहण करते हैं ।

'साहित्य और कला पर' शीर्षक ग्रन्थ की भूमिका में लेनिन सवाल करते हैं कि क्या साहित्यकार सामाजिक, राजनीतिक परिस्थिति से असम्पृक्त होकर लेखन कार्य कर सकते हैं ? क्या अपने युग की जीवन्त समस्याओं से मुँह मोड़कर कलाकार सृजन कर सकते हैं ?"[53] लेनिन ने इसका जवाब यों दिया "कलाकार को जनता का सहयात्री बनकर उनकी साहित्यिक तथा कलात्मक संवेदन क्षमता के स्तर को उठाना चाहिए ।"[54] साहित्य और कला को जनता तक पहुँचाना साहित्यकार और कलाकार की जिम्मेदारी है ।

साहित्य का उद्देश्य सांस्कृतिक और मानसिक परिष्कार है । महान क्रान्तिकारी और महान साहित्यकार दोनों समाज के अन्तर्विरोधों को तीव्रता से महसूस करते हैं । दोनों मानवजाति के साथ असंख्य तन्तुओं से गहरे जुड़े होते हैं । दोनों का दृष्टि-क्षेत्र संकुचित न होकर विशाल और व्यापक होता है । दोनों के लिए अन्याय, झूठ, अत्याचार असह्य होते हैं । जीवन-व्यवस्था को नये आयाम तथा नये मोड़ देते हैं । दोनों समाज की व्यवस्था को बदलना भी चाहते हैं । लेकिन साहित्यकार उन्हें सिर्फ अभिव्यक्त ही करता है जबकि क्रान्तिकारी समाज के निजाम को बदलने की भरसक कोशिश करता है ।

क्रान्तिकारी की नज़र में सबसे पहले समाज के उस वर्ग का ही हित होगा जिसके लिए वह लड़ रहा है, जिसके लिए वह समाज की व्यवस्था को बदलना चाहता है । जिस समाजवादी समाज की स्थापना लेनिन के क्रान्तिकारी जीवन का ध्येय रही, उसमें रूस की विशाल गरीब जनता, निरक्षर, भूखी-नंगी जनता का ही सुख अपेक्षित था । वह चाहते थे कि समाज की ऐसी व्यवस्था बने जिसमें विशाल जनसमूहों का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा हो, साहित्य के खजाने उस गरीब जनता तक पहुँचे, निरक्षर लोग साक्षर बनें, साहित्य की निधि समाज के धनिक वर्ग को प्राप्त है, वह समस्त जनता तक पहुँचे । कला और संस्कृति के खजानों को लेनिन समस्त मानवजाति की विरासत मानते थे ।[55]

मानवीय श्रम में कलात्मक सृजन का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । विश्व को रूपान्तरित करने की क्रिया में साहित्यिक रचनाओं का योगदान उल्लंघनीय है । सृजनकार्य सक्रिय जीवन है । सृजन मानवजीवन से सहभागिकता की मांग करता है । लेनिन ने लेखक के लिए जनता के साथ रहना अनिवार्य माना है । इस सम्पर्क को वह ऐसी लौ मानते थे जो लेखक का पथ प्रशस्त करती है । वह लेखक से जनता के साथ रागात्मक सम्बन्ध की अपेक्षा भी करते हैं । उनकी नज़र में जनवादी लेखक के लिए अपने वतन की हवा में सांस लेना और दिल की प्रत्येक

धड़कन से अपने देश के जीवन को महसूस करना, अपनी आँखों से उनकी गतिविधि को देखना बहुत ज़रूरी है ।

लेनिन साहित्य एवं कला को महान समाजवादी क्रान्ति के आदर्शों के अनुरूप विकास करने का आकांक्षी थे । वे साहित्य एवं कला के जनवादी रूप का हिमायती थे ।[56] उन्होंने उन समस्त काव्यान्दोलनों एवं प्रवृत्तियों पर कड़ा प्रहार किया है, जो आधुनिकता के नाम पर उदीयमान रचनाकारों एवं कलाकारों को अपनी ओर आकर्षित कर क्रान्ति के उद्देश्यों पर स्याही पोतने का प्रयास कर रही थीं । ऐसी भ्रष्ट आधुनिकता से लेनिन क्षुब्ध थे ।[57] उनकी दृष्टि में साहित्य एवं कला विचारधारा का ही एक रूप है । वे मूलतः समाज के आर्थिकभौतिक जीवन पर आधारित हैं । आर्थिकभौतिक धरातल पर परिवर्तन होने के साथ ही साहित्य, कला अथवा विचाराधारा के अन्य रूपों में भी कमोबेश उसी तेज़ी के साथ परिवर्तन हो जाता है । वर्गविभक्त समाज की कला वर्गविशेष के हितों को प्रतिबिम्बित करती है । इसलिए लेनिन ने श्रमिकों के साहित्य की वर्ग पक्षधरता के औचित्य का समर्थन किया है ।[58]

श्रमसंगठनों पर विचार करते हुए लेनिन ने कुछ महत्वपूर्ण बातें कहीं है जनता को सही सामाजिक लक्ष्य के लिए प्रशिक्षित करना है । जनता जानें, कि लड़ाई अधिकारों की है, सुविधाओं की नहीं । सही नेतृत्व श्रमिकों से जनमता है । सच्ची सर्वहारा क्रान्ति उनके ही नेतृत्व में संभव है ।

लेनिन ने सर्वहारा की विचार पद्धति को मानते हुए भी बूर्ज्वा युग की बहुमूल्य उपलब्धियों को रद्द नहीं किया, मानवचिन्तन और संस्कृति के पिछले दो हज़ार साल से जो कुछ भी मूल्यवान था उसे अंगीकार किया है और उसे नया रूप दिया है । भविष्य में इसी दिशा में जो महनीय काम होगा उसे ही सच्ची सर्वहारा क्रान्ति का विकास माना जा सकता है ।[59]

पूँजीवाद सर्वहारा वर्ग का प्रथम शत्रु है । लेकिन उससे भी खतरनाक शत्रु है साम्राज्यवाद । पूँजीवाद अपने विकास की एक निश्चित तथा अत्यन्त ऊंची मंजिल में पहुँचकर ही साम्राज्यवाद का रूप धारण करता है ।[60] पूँजीवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्था में शोषण ही सबसे प्रमुख समस्या है । कोई सन्देह नहीं कि शोषण पूँजीवादी संस्कार है । इसलिए समाज को शोषण विमुक्त करना प्रतिबद्ध साहित्यकार का पहला कर्तव्य बन जाता है । कलाकार के लिए वर्गसंघर्षों में आस्था रखकर विश्वदृष्टि का विकास करने की ज़रूरत है । तभी वह मानवीय चेतना और सर्जनात्मकता का भी विकास कर सकता है । स्वाधीनता का असली अर्थ यह है कि मानव को मानवोचित जीवनयापन की सुविधा प्राप्त हो ।

प्रतिबद्ध कलाकार इस चिन्तन में आस्था रखते हैं । यह व्यक्तिस्वातन्त्र्य को बुलन्द करने वाले व्यक्तिवादियों की समाज से कटने की कृत्रिम कल्पना नहीं है, बल्कि जनजन की सामाजिक और आर्थिक दासता से मुक्ति दिलाने की लोकहितवादी आस्था है ।

लेनिन के, संस्मरणलेखक क्लारा जैटकिन के मतानुसार, लेनिन के समक्ष एक प्रमुख समस्या यह थी कि "पतनशील बूर्ज्वा संस्कृति एवं विचारधारा के प्रचार और प्रसार पर अंकुश लगाकर सोवियत जनता की कलाभिरुचि को कैसे क्रान्तिकारीजनवादी मोड़ दिया जाय ।[61] लेनिन वर्गों में बंटे हुए समाज में वर्गच्युत साहित्य और कला की सत्ता का सपना देख न सकते थे । एवनर जिस ने जोर देकर कहा "साम्राज्यवाद से समाजवाद की ओर अग्रसर होते समय कला की वर्गीयपक्षधरता तेज़ हो जाती है ।[62] लेनिन ने कहा है कि पूँजीवादी समाज में साहित्यकार उच्चवर्ग के लिए लिखते हैं । उनकी रचनाओं का आधार भी अतिदैयक्तिक है । वह उच्चवर्ग से नाभिनालबद्ध है । श्रमिकों को कंगाल और अमीरों को अय्याश बनाने वाले बूर्ज्वा समाज में सच्ची स्वतन्त्रता सम्भव नहीं है । वे सवाल करते हैं कि क्या ऐसे समाज के लेखक अपने पूँजीपति प्रकाशकों से स्वतन्त्र हैं ? क्या वे अश्लीलताकामी पूँजीवादी पाठक वर्ग से स्वतन्त्र हैं ?"[63] लेनिन ने साहित्यकार की स्वाधीनता पर भी ज़ोर दिया है । वास्तव में कलाकार की प्रतिबद्धता सृजनात्मक स्वातन्त्र्य से जुड़ी रहती है । ये दोनों अलग चीज़ नहीं । बूर्ज्वा कलाकार की शिकायत यह है कि प्रतिबद्धता का दावा करने वालों पर पार्टी का अंकुश हमेशा बना रहता है । ये प्रतिश्रुत कलाकार सिर्फ़ पार्टी के प्रचारक हैं । लेकिन लेनिन इसका निषेध करते हैं । उन्होंने स्पष्ट बताया "बूर्ज्वा स्वतन्त्रता घोर चालबाजी है । वहां वास्तविक स्वतंत्रता असम्भव है । जहां पूँजी कायम रहती है वहां स्वातंत्र्य सपना मात्र है । पूँजीवादी समाज में कलाकारों पर मुद्रा का शासन होता है । इस पंजे से साहित्यकार मुक्त न हो सकता है । पूँजीवादी समाज व्यवस्था में कलाकार निरीह तथा परतन्त्र होता है ।"[64] इसी कारण स्वतन्त्र सर्जना के लिए लेनिन इस दासता से कलाकार की मुक्ति का आकांक्षी थे । वे हमेशा स्वतन्त्रता का पाखण्ड फैलाने वाले साहित्य के मुकाबले एक सच्चे अर्थ में स्वतन्त्र और जनता के पक्षधर साहित्य को खड़ा करना चाहते थे । ऐसा पक्षधर साहित्य यश या अर्थ की प्रेरणा से नहीं, श्रमिक वर्ग की मुक्ति से प्रेरित होकर लिखा जाएगा । लेनिन की मान्यता यह है "साहित्य को अनिवार्यतः सर्वहारा के लक्ष्य का अंग होना चाहिए, एक अखण्ड और महान् सामाजिकजनवादी मशीनरी के 'दांते और पेंच' के समान बन जाना चाहिए, जिसका संचालन समूचे मज़दूर वर्ग का राजनीतिक दृष्टि से जागरूक समूचा हिरावल दस्ता करता है ।"[65] 'पार्टी संगठन

और पार्टी साहित्य में लेनिन ने सर्वहारा साहित्य की विशेषताओं का ज़िक्र किया है " समाजवादी विचार और मेहनतकश जनता के प्रति सहानुभूति की वजह और लालच तथा कैरियरवाद के अभाव में, यह स्वतन्त्र साहित्य होगा । इस ढंग से भी वह स्वतन्त्र साहित्य रहेगा कि वह लगातार नई शक्तियों को अपनी पांतों में लाता रहेगा । किसी परितृप्त नायिका, संत्रस्त मानव या चर्बी के बोझ से फूले महाजन की सेवा करने के बजाय वह उन मेहनतकश लोगों की सेवा करेगा जो देश के फूल, शक्ति और भविष्य है । यह इस दृष्टि से भी स्वतन्त्र साहित्य होगा, जो मानव जाति के क्रान्तिकारी विचारों की बेहतरीन सफलताओं को समाजवादी सर्वहारा वर्ग के अनुभवों और सजीव कार्यों के जरिए अलंकृत करेगा, जो अतीत तथा वर्तमान के अनुभवों के बीच एक स्थायी पारस्परिक प्रभाव उत्पन्न कर देगा ।" 66

लेनिन ने ज़ोर देकर कहा था कि कौन कहता है कम्यूनिज़्म की कोई नैतिकता नहीं होती । होती है, जरूर होती है । साम्यवाद की मंजिलें होती हैं और एक बार, क्रान्ति के स्थायी हो जाने पर नेतृत्व का यह दायित्व भी होता है कि जनता का स्तर हर बिन्दु पर बराबर ऊँचा करते रहे । जहाँ तक मूल्यचिन्तन का प्रश्न है, सही रचना और सही राजनीति दोनों मानव कल्याण में शरीक होना चाहते हैं । पर जब राजनीतिक सत्ता केन्द्रित हो जाती है, अन्ध राजनीति सख्त होती है और दांवपेंच को स्वीकृति मिलने लगती है तब रचनाकार की जिम्मेदारी होती है कि सत्ता पर अंकुश लगाये । किसी दल का सदस्य न होते हुए भी यह कार्य सम्भव है ।

प्रतिबन्ध, जनवादी साहित्य की प्रगति संगठित साम्यवादी दल की शक्ति पर आश्रित है । स्वतन्त्रता का पाखण्ड फैलाने वाले बूर्ज़्वा शासन का अनावरण और उसके विरुद्ध आक्रमण करना जनवादी साहित्यकार का दायित्व है । बूर्ज़्वा शासन तथा उनके विशृंखलित साहित्य का पोल खोलना हर समाजवादी कलाकार की जिम्मेदारी है ।

माओ-त्से-तुंग की प्रतिबद्धता तथा कला सम्बन्धी स्थापनाएँ साहित्य एवं कला सम्बन्धी माओ-त्सेतुंग के विचारों का परिचय हमें मई, 1942 में, येनान प्रांत में हुई साहित्य परिचर्चा के माध्यम से ही प्राप्त होता है । माओ-त्सेतुंग के ये विचार साहित्य एवं कला के पथ-दर्शक सिद्धान्तों के रूप में आज भी मान्य है । उन्होंने लेखकों तथा कलाकारों के समक्ष, साहित्य एवं कला-सम्बन्धी अपने विचार सविस्तार प्रस्तुत किए जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

येनान प्रांत में हुई साहित्यिक परिचर्चा का वास्तविक उद्देश्य, माओ-त्सेतुंग के अनुसार बहुमुखी था, अर्थात क्रान्ति की व्यापक मशीन के अन्तर्गत, उसके एक अभिन्न अंग के रूप में, साहित्य एवं कला का स्थान निर्धारित करना, जनता को शिक्षित और एक जुट करने के एक

शक्तिशाली माध्यम के रूप में उन्हें विकसित करना, क्रान्ति के शत्रुओं पर आक्रमण करते हुए उनके उन्मूलन के हेतु एक तेज़ हथियार के रूप में ढ़ालना तथा संघर्षरत जनता को उसके निर्णायक युद्ध में मदद करना आदि....आदि ।[67]

माओ-त्सेतुंग का विचार यह है कि किसी भी युग में कला और साहित्य सांस्कृतिक क्रान्ति का तेज़ औजार है । वे लिखते हैं "चीनी जनता की मुक्ति के लिए किए जाने वाले हमारे संघर्ष में विभिन्न प्रकार के मोर्चे मौजूद है, इनमें कलम का मोर्चा है और बन्दूक का मोर्चा है, यानी सांस्कृतिक मोर्चा है और फौजी मोर्चा है । दुश्मन को शिकस्त देने के लिए हमें मुख्य रूप से बन्दूकधारी सेना पर निर्भर रहना चाहिए । लेकिन मात्र ऐसी सेना का होना ही काफी नहीं है, हमारे पास एक सांस्कृतिक सेना भी होनी चाहिए, जो हमारी अपनी पांतों को एकताबद्ध करने के लिए निहायत ज़रूरी है । 4 मई आन्दोलन से चीन में इस प्रकार की सांस्कृतिक सेना चीन में आ गई है । 4 मई आन्दोलन से कला-साहित्य हमारे सांस्कृतिक मोर्चे का एक महत्वपूर्ण और सफल अंग रहा है ।[68] येनान प्रांत की कला-साहित्य गोष्ठी में भाषण देते हुए माओ ने लेखकों व कलाकारों के वर्ग-दृष्टिबिन्दु की समस्या, उनके रूख की समस्या, उनके पाठकों-दर्शकों की समस्या, उनके कार्य की समस्या और उनके अध्ययन की समस्या पर भी प्रकाश डाला है ।

वर्ग-दृष्टिबिन्दु की समस्या आज की दुनिया में समूची संस्कृति और समस्त कला-साहित्य निश्चित वर्गों के ही होते हैं, तथा उन्हें निश्चित राजनीतिक कार्यदिशाओं के अनुरूप ढ़ाला जाता है । वास्तव में 'कला कला के लिए' के सिद्धान्त को मानने वाली कला, वर्गों से परे रहने वाली कला नाम की कोई चीज़ नहीं होती । सर्वहारा वर्ग का कला-साहित्य समूचे सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्य का एक अंग है ।[69] माओ लेनिन के शब्द उद्धृत करते हुए बताते हैं कि यह समूची क्रान्तिकारी मशीन के दांते और पेंच के समान है । इसलिए कला-साहित्य के क्षेत्र में किए जाने वाले पार्टी के कार्य का पार्टी के समूचे क्रान्तिकारी कार्य में एक निश्चित और सुनिर्धारित स्थान होता है तथा वह किसी विशेष क्रान्तिकारी काल में पार्टी द्वारा निर्धारित किए जाने वाले क्रान्तिकारी कार्यों के ही अधीन होता है । इस व्यवस्था का विरोध करने के परिणामस्वरूप अनिवार्य रूप से 'द्विवाद' या 'बहुवाद' पैदा हो जाएगा तथा सार रूप में इसका मतलब होगा " राजनीति मार्क्सवादी, कला पूँजीवादी , जैसा कि त्रात्स्की ने किया था ।[70] साहित्य और कला राजनीति के मातहत होते हैं, लेकिन वे खुद भी राजनीति पर अपना महान प्रभाव डालते हैं । कला-साहित्य के राजनीति के मातहत होने का मतलब वर्ग-राजनीति से है, आम जनता की राजनीति से है, चन्द तथाकथित राजनीतिज्ञों की राजनीति से नहीं । राजनीति, चाहे वह क्रान्तिकारी हो अथवा

प्रतिक्रान्तिकारी , विभिन्न वर्गों के बीच का संघर्ष है, सिर्फ कुछ व्यक्तियों का कार्यवाही नहीं ।[71]

माओ त्से तुंग मानव-स्वभाव का भी प्रतिपादन करते हैं । मानव-स्वभाव केवल एक मूर्त वस्तु है, वह वाकई अमूर्त नहीं । वर्ग-समाज में मानव-स्वभाव का स्वरूप ही वर्गमूलक होता है ; वर्गों से परे कोई मानव-स्वभाव नहीं होता । जनवादी कलाकार सर्वहारा वर्ग तथा आम जनता के स्वभाव की हिमायत करते हैं, जबकि ज़मींदार और पूँजीपति खुद अपने वर्ग-स्वभाव की हिमायत करते हैं । पूँजीपति वर्ग यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि उन्हीं का स्वभाव एकमात्र मानव-स्वभाव है । निम्न पूँजीपति वर्ग के कुछ बुद्धिजीवी जिस मानव-स्वभाव का गुणगान करते हैं, वह भी आम जनता से अलग होता है अथवा उसके विरुद्ध होता है ; जिसे वे मानव-स्वभाव कहते हैं । वह सार रूप में और कुछ नहीं बल्कि पूँजीवादी व्यक्तिवाद ही होता है, इसलिए उनकी दृष्टि में सर्वहारा वर्ग का मानव-स्वभाव उससे बिल्कुल विपरीत है जिसे अमूमन मानव-स्वभाव कहा जाता है ।

माओ ने यह भी बताया कलासाहित्य के लिए बुनियादी प्रस्थान-बिन्दु प्रेम है ।"[72] प्रेम प्रस्थान-बिन्दु हो सकता है, लेकिन यह तथाकथित बूर्ज़्वा 'प्रेम' नहीं है । प्रेम एक धारणात्मक वस्तु है, वस्तुगत व्यवहार की उपज है । अकारण प्रेम या घृणा जैसी चीज़ दुनिया में कतई नहीं होती । जहां तक तथाकथित "मानव-प्रेम" का सम्बन्ध है, मानव जाति के वर्गों में विभाजित हो जाने के बाद से सर्वव्यापी प्रेम जैसी कोई चीज़ नहीं रही । पिछले सभी शासक वर्गों ने बडे चाव से ' मानव-प्रेम ' की वकालत की थी और इसी तरह बहुत से तथाकथित महात्माओं और ज्ञानियों ने भी की थी, लेकिन इस पर किसी ने भी कभी सचमुच अमल नहीं किया, क्योंकि वर्ग-समाज में ऐसा करना असम्भव है । वर्गों ने समाज को बहुत से ऐसे समूहों में बांट रखा है जो आपस में एक दूसरे के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाते हैं । दरअसल कलाकार और साहित्यकार सामाजिक बुराइयों से प्रेम नहीं कर सकते हैं । सामाजिक बुराइयों को खत्म करना उनका लक्ष्य है । प्रतिबद्ध कलाकार जानते हैं कि एक वर्गविहीन समाज में ही सच्चा मानव प्रेम सम्भव है ।[73]

वर्ग-दृष्टिबिन्दु की समस्या पर ज़ोर देते हुए माओ ने स्पष्ट किया है कि लेखकों व कलाकारों की पक्षधरता सर्वहारा वर्ग तथा आम जनता के प्रति होनी चाहिए । कलाकार के वर्ग-दृष्टिबिन्दु से ही कलाकार के ठोस रूख का जन्म होता है । दुश्मन के प्रति याने साम्राज्यवाद के प्रति और हिरावल दस्ते के तमाम अन्य दुश्मनों के प्रति, क्रान्तिकारी प्रतिश्रुत लेखकों व कलाकारों का कार्य यह है कि वे ऐसे

लोगों के खूंखारपन और उनकी चालबाजी का पर्दाफाश करें ।

साहित्यिक रचनाओं और कलाकृतियों का लक्ष्य क्या है, वह किसके प्रति उन्मुख है ? माओ-त्सेतुंग ने लेनिन का पक्ष समर्थन करते हुए इस प्रश्न का यों हल कर दिया है " हमारे साहित्य और कला का मुख्य लक्ष्य क्रान्तिकारी श्रमिकवर्ग है, और उनके प्रति ही समर्पित है ।[74] क्रान्तिकारी कला-साहित्य शोषकों और उत्पीडकों के लिए नहीं बल्कि विशाल जनता के लिए होता है । इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे कला-साहित्य भी मौजूद है जो शोषकों और उत्पीडकों के लिए है । जो कला-साहित्य जमीन्दार वर्ग के लिए होते हैं, वे सामन्ती कला-साहित्य कहलाते हैं ।[75] चीन के सामन्ती युग में शासक वर्ग के कला-साहित्य ऐसा ही थे । जो कला-साहित्य पूँजीपति वर्ग के लिए होते हैं, वे पूँजीपति वर्ग के कला-साहित्य कहलाते हैं ।[76] ल्याङ श-छ्यू जैसे लोग, जिनकी लू शुन ने आलोचना की थी, कला-साहित्य को वर्गों से परे बताते हैं, वास्तव में वे लोग पूँजीपति वर्ग के कला-साहित्य का पक्षपोषण करते हैं और सर्वहारा कला-साहित्य का विरोध करते हैं ।[77] जो कला-साहित्य साम्राज्यवादियों के लिए होते हैं वे देशद्रोही कला-साहित्य कहलाते हैं । प्रतिबद्ध कला-साहित्य उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के लोगों के लिए नहीं, बल्कि जनता के लिए ही हैं । प्रतिश्रुत जनवादी कला-साहित्य की संस्कृति सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में आम जनता की साम्राज्यवाद-विरोधी संस्कृति है । जो कुछ सर्वहारा-वर्ग के नेतृत्व में होता है, वह आम जनता की मुक्ति के लिए होता है । जो कुछ पूँजीपति वर्ग के नेतृत्व में होता है, वह आम जनता के लिए हरगिज नहीं हो सकता । स्वाभाविक है कि यही बात जनवादी कला-साहित्य पर भी लागू होती है, जो नयी संस्कृति का एक अंग है । माओ के शब्द उद्धृत किये जा सकते हैं " हमें कला-साहित्य की समृद्ध विरासत को, कला-साहित्य की श्रेष्ठ परम्पराओं को, जो चीन में और अन्य देशों में अतीत काल से चली आ रही है, स्वीकार कर लेना चाहिए, लेकिन हमारा उद्देश्य फिर भी आम जनता की सेवा ही है । और न हम अतीत काल के साहित्यिक व कलात्मक रूपों का इस्तेमाल करने से ही इन्कार करते हैं । लेकिन हमारे हाथ में आने के बाद ये पुराने रूप भी, जिनका पुनःसंस्कार करके हम उनमें एक नई विषय-वस्तु भर देते हैं, जनता की सेवा करने वाली एक क्रान्तिकारी वस्तु बन जाते हैं ।"[78]

आम जनता में आखिर कौन लोग शामिल हैं ? व्यापकतम जनता में, मज़दूर, किसान, सैनिक और शहरी निम्न-पूँजीपति वर्ग शामिल हैं । कला-साहित्य सबसे पहले मजदूरों के लिए हैं, एक ऐसे वर्ग के लिए जो क्रान्ति का नेतृत्व करता है । फिर भी कला-साहित्य ऊपर बताये गए

चार प्रकार के लोगों के लिए ही होना चाहिए। उनकी सेवा करने के लिए कलाकार को सर्वहारावर्ग का दृष्टिबिन्दु अपनाना चाहिए, टुटपुँजिया बूर्ज्वा वर्ग तथा मुखौटाधारी, मौकापरस्त बुद्धिजीवियों का दृष्टिबिन्दु नहीं। अधिकांश लेखक व्यक्तिवादी, निम्नपूँजीपति-वर्ग के दृष्टिकोण से चिपके रहते हैं। माओ के अनुसार वे क्रान्तिकारी, मज़दूरों, किसानों और सैनिकों के विशाल जन-समुदाय की सच्ची सेवा नहीं कर सकते। उनकी दिलचस्पी मुख्य रूप से अल्पसंख्यक पूँजीपतियों पर केन्द्रित रहती है। ये कलाकार मज़दूरों, किसानों और सैनिकों के विशाल जन-समुदाय से सम्पर्क न रखते हैं, उनके व्यावहारिक संघर्ष में भाग न लेते हैं, उन्हें शिक्षा न देते हैं और उनका चित्रण भी अपनी रचनाओं में न करते हैं। निम्नपूँजीपति वर्ग में पैदा होने और खुद भी बुद्धिजीवी होने के कारण, बहुत से साथी केवल बुद्धिजीवियों में ही अपने मित्रों की खोज करते हैं तथा उन्हीं का अध्ययन करने और चित्रण करने में अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे टुटपुँजिया बूर्ज्वा वर्ग का दृष्टिबिन्दु अपना लेते हैं तथा ऐसी रचनाओं का सृजन करते हैं जिनमें निम्न-पूँजीपति वर्ग की ही आत्माभिव्यक्ति होती है। वे इस वर्ग के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं, और उनकी कमियों के प्रति भी सहानुभूति प्रकट करते हैं। वे उनकी कमियों की प्रशंसा भी करते हैं।[79] इसी हालत में माओ-त्से तुंग ने लेखकों और कलाकारों से अपना दृष्टिबिन्दु बदल देने के लिए कहा है। उन्होंने लेखकों तथा कलाकारों को पूँजीवादी संस्कृति से विमुक्त होकर सर्वहारा वर्ग के पक्ष में खड़े होने तथा उनकी संस्कृति को अपनाने का आह्वान किया। लेखकों और कलाकारों को चाहिए कि वे उन सर्वहारा वर्ग में शरीक हो और उनके लिए काम करें। क्योंकि उनका शिक्षित होना अत्यन्त ज़रूरी है। लेखकों व कलाकारों को अपना साहित्यिक व कलात्मक सृजन कार्य तो अवश्य करना होगा, लेकिन उनका सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य जनता को समझना और उसका अच्छा परिचय प्राप्त कर लेना है। अतः टुटपुँजिया बूर्ज्वा कलाकार किसान और मज़दूर के सहभागी होकर सही जीवनानुभव हासिल कर सकते हैं। वर्गापसरण और पुनःसंस्कार के बिना वे लोग बिल्कुल नाकाबिल साबित होंगे।[80] अन्तिम समस्या अध्ययन की समस्या है, जिससे माओ का तात्पर्य है मार्क्सवाद-लेनिनवाद और समाज का अध्ययन करना। माओ के शब्दों में

"जो अपने आप को मार्क्सवादी क्रान्तिकारी लेखक कहता है और खास तौर से जो लेखक कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य है, उसे मार्क्सवाद-लेनिनवाद का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।[81] लेखकों व कलाकारों द्वारा साहित्यिक रचनाओं व कला-कृतियों के सृजन का अध्ययन बिल्कुल उचित है, लेकिन मार्क्सवाद-लेनिनवाद एक ऐसा विज्ञान है जिसका सभी क्रान्तिकारियों को अध्ययन करना चाहिए, लेखक व कलाकार इसके अपवाद नहीं है।

लेखकों व कलाकारों को चाहिए कि वे समाज का अध्ययन करें, अर्थात् वे समाज के विभिन्न वर्गों का अध्ययन करें, उनके आपसी सम्बन्धों और उनकी अपनी-अपनी स्थितियों का अध्ययन करें। इस सन्दर्भ में माओ-त्से तुंग ने लेखकों तथा कलाकारों से अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की और उसे सर्वहारा दृष्टिकोण के रूप में विकसित करने की बात भी कही है। यह सर्वहारा दृष्टिकोण लेखकों और कलाकारों के मानस का अंग तभी बन सकता है, जब वह मार्क्सवादी आदर्शों से अनुप्राणित हो, केवल किताबी मार्क्सवाद से नहीं, उस मार्क्सवाद से, जो शब्दों में न जीकर व्यावहारिक जीवन की सक्रियता में जीता है।[82] माओ तसेतुंग ने मार्क्सवाद के सही अध्ययन, उसकी सही समझ और उसे साहित्य एवं कला-रचना तथा चिन्तन पर सही रूप से लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया है। इनके अभाव में मार्क्सवाद नहीं, गैरमार्क्सवाद ही सामने आ सकेगा। उनका विचार यह है कि किसी भी समस्या पर होनेवाली चर्चा वास्तविक तथ्यों को सामने रखकर होनी चाहिए, न कि अमूर्त परिभाषाओं के आधार पर। मार्क्सवाद की यही वैज्ञानिक पद्धति है, और उसका पालन करना, अनिवार्य है। मार्क्सवाद का अध्ययन करने का मतलब यह है कि हम दुनिया को, समाज को और कला-साहित्य को द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी और ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखें; इसका मतलब यह नहीं कि हम अपनी साहित्यिक रचनाओं और कलाकृतियों में दर्शनशास्त्र के लेक्चर झाड़ते फिरें।[83] कोरे, नीरस कठमुल्लावादी फार्मूले सृजनात्मक मूड़ को नष्ट कर देते हैं। कठमुल्लावादी 'मार्कसवाद' मार्क्सवाद नहीं होता, वह मार्क्सवादविरोधी होता है।

माओत्सेतुंग ने साहित्यकार की प्रतिबद्धता का सविस्तार प्रतिपादन किया है। लेखकों तथा कलाकारों का दायित्व है कि वे सर्वहारा वर्ग को पहचानें, उसके संघर्ष का अध्ययन करें तथा उन शक्तियों का समर्थन करते हुए जो सर्वहारा-संघर्ष को गति दे रही हैं, उन अंधकारपूर्ण शक्तियों की भर्त्सना करें जो उसके संघर्ष में रोड़ा बन रही हैं, उसे कमज़ोर कर रही है।[84] साहित्य का लक्ष्य तथा साहित्कार का दायित्व वर्ग-संघर्ष को प्रश्रय देना और वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए प्रयत्न करना है। वही साहित्यकार सच्चा साहित्यकार है जो वर्ग-संघर्ष को बुनियादी स्तर पर स्वीकार कर लेता है। हमारे साहित्य व कला को लाखों-करोड़ों मेहनतकश लोगों की सेवा करनी चाहिए।[85] क्रान्तिकारी प्रतिबद्ध साहित्यकार व कलाकार अपने सृजनात्मक श्रम से जनता के जीवन में मौजूद साहित्यिक और कलात्मक कच्चे माल को विचारधारात्मक रूप में एक ऐसा कला-साहित्य बना देते हैं जो विशाल जन-समुदाय की सेवा करते हैं। माओ के शब्दों में: अगर आप पूंजीपति वर्ग के लेखक या

कलाकार हैं, तो आप सर्वहारा वर्ग का नहीं बल्कि पूंजीपति वर्ग का गुणगान करेंगे, और अगर आप सर्वहारा वर्ग के लेखक या कलाकार हैं, तो आप पूँजीपति वर्ग का नहीं बल्कि सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता का गुणगान करेंगे ।"[86] जनवादी कला-साहित्य बुनियादी तौर पर मज़दूरों, किसानों और सैनिकों के लिए है । उनका स्तर उन्नत करना और कला को लोकप्रचलित करना हर प्रतिबद्ध जनवादी क्रान्तिकारी कलाकार का कर्तव्य है । लोकप्रचलित करने का मतलब होता है मज़दूरों, किसानों सैनिकों तथा आम जनता तक साहित्य और कला को पहुँचाना है,उन्नयन का अर्थ है, जनता की साहित्यिक तथा कलात्मक संवेदन क्षमता के स्तर को ऊपर उठाना ।[87] क्रान्तिकारी साहित्यकार तथा कलाकार को यह भी समझना चाहिए कि मनुष्य के वर्तमान और भविष्य को बदलने और गठने में कला और साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है ।[88] प्रतिबद्ध कलाकार तथा साहित्यकार को कभी भी यह नहीं भूलना चाहिए कि 'दर्शन, कला और साहित्य उत्पादन और वर्ग-संघर्ष पर निर्भर है । ।89 माओ ने ज़ोर देकर कलाकारों तथा साहित्यकारों से बताया :'अनिवार्य ज़रूरतों की पहचानपरख तथा दुनिया को रूपान्तरित करने की कोशिश असली स्वतन्त्रता है ।[90] इस तथ्य से अवगत होकर प्रतिक्रियान्वित और संघर्षरत होना सामाजिक प्रतिबद्धता है । रूस की समाजवादी क्रान्ति तथा चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति से प्रेरणा प्राप्त कर सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में एक वर्गविमुक्त समाज की प्रतिष्ठा तथा श्रमिकों के अधिनायकत्व के लिए पूंजीवादी, साम्राज्यवादी तथा संशोधनवादी के विरूद्ध आक्रमण केन्द्रित रखना भी अनिवार्य है ।[91] निष्कर्षतः माओत्सेतुंग का साहित्य एवं कलासम्बन्धी चिन्तन समग्र है । वह मूलतः राजनीतिक दृष्टि की प्रमुखता, अनिवार्यता तथा निर्णायकता पर बल देता है और यों मार्क्सवादी कला-साहित्य चिन्तन के दायरे को विस्तृत भी करता है । प्रतिबद्धता और कला सम्बन्धी प्लेहानॉव की स्थापना: मार्क्सवादी कला चिंतन के आधार पर रूसी साहित्य को मूल्यांकन करने का काम सब से पहले प्लेहानॉव ने किया । उन्होंने सोवियत रूस की समाजवादी क्रान्ति के पूर्व (1912/13) 'कला और सामाजिक जीवन' नामक ग्रन्थ लिखा था। उन्होंने इस ग्रन्थ में 'कला केलिए सिद्धान्त का खण्डन किया ; सख्त विरोध भी किया ।[92] उनकी मान्यता यह है कि 'कला कला केलिए' सिद्धान्त उस सामाजिक स्थिति में उभरता है जब कलाकार, अपने सामाजिक परिवेश से असंतुष्ट होता है और लोग कला में खूब रूचि लेते हैं ।[93] प्लेहानॉव दो प्रकार की गलत संकल्पनाओं की ओर भी पाठकों का ध्यान खींचते हैं । ज़्यादातर लोग कला के उपयोगवाद पर बल देते हैं । कुछ लोग कला की स्वच्छन्दतावाद पर ज़ोर देते हैं । प्लेहानॉव ने स्पष्ट बताया है कि ये लोग कला की वस्तु पक्ष की परवाह न करते हैं । ये लोग कला के

रूपतत्व का पक्षपोषण ही करते हैं ।

प्लेहानॉव कला और साहित्य को सामाजिक-यथार्थ का दर्पण मानते हैं । इसे व्यापक रूप में ग्रहण करें, तो ठीक है अन्यथा स्थूल रूप में लेने पर इस प्रकार की व्याख्याओं से कला और साहित्य मात्र समाज का प्रतिफलन रह जाता है जब कि कला और साहित्य की भूमिका परिवर्तक की भी होती है । उसमें यथार्थ के सिवा संभावित सत्य भी चित्रित होता है और वह सरल प्रतिबिम्ब नहीं, जटिल व्यंजन या ध्वनन् होता है । प्लेहनॉव यह भी बताते हैं कि 'कुछ लोगों की दृष्टि में समाज कलाकार के लिए नहीं है, बल्कि कलाकार समाज केलिए है । बेहतर सामाजिक व्यवस्था का गठन कला का धर्म है । कतिपय कला को साधन की अपेक्षा साध्य मानते हैं । कला को साधन मानना उनकी दृष्टि में अनुचित है ।[94] समाजवादी यथार्थवाद की सबसे महत्वपूर्ण धारणा है कला की सोद्देश्यता । साहित्य और कला का उद्देश्य मानवीय चेतना का विकास करना और समाजवाद को सुधारना है । यह उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता है जब साहित्यकार श्रमिकवर्ग की उन्नति और उसके द्वारा विश्वपरिवर्तन को प्रेरणा दे, नए समाजवादी विश्व के उदय और समृद्धि को प्रतिबिंबित करे, समाज के बहुसंख्यक क्रान्तिकारियों के संघर्ष में भाग लें ।

'पूंजीवादी समाज में कला, कला केलिए मात्र नहीं है, बल्कि कला धन केलिए भी है ।[95] हर जगह 'व्यापारी रूख जारी रहते समय कला भी माल बन जाती है ।[96] प्लेहानॉव ने स्पष्ट बताया है कि पूँजीवाद पतन के कगार पर पहुँचते समय कला-संस्कृति का पतन भी पराकाष्ठा तक पहुँचता है ।[97] बूर्ज्वा मानसिकता से कलाकार उबर नहीं पाता है ।[98] उस समय प्रतिबद्ध जनवादी कलाकार तथा साहित्यकार को अपना दायित्व निभाना चाहिए । उस पतनकाल में कलाकार को अपने महान् शक्तिशाली विचारों को आन्तरिक अंग बनाकर प्रस्तुत करना चाहिए । तभी वह बूर्ज्वा आधुनिकता के बदले उचित विचारों की स्थापना कर सकते हैं ।

कला और सामाजिक जीवन में प्लेहानाव ने कलाकार की प्रतिबद्धता पर ज़ोर दिया है । उनकी मान्यता यह है कि उत्पीडित और शोषित जनता का पक्षधर होना प्रतिबद्धता है । कलाकार को, अगर वह सचमुच संवेदनशील है, स्वाभाविक रूप से अपने समय की महान् क्रान्तिकारी शक्तियों का साथ देना चाहिए, चाहे वह स्वयं बुर्ज्वा वर्ग से सम्बन्धित हो । अपने समय के क्रान्तिकारी विचार ही कलाकार के रक्त-मांस के अंग बने, तभी वह सच्चे अर्थ में कलाकार होगा ।[99] कलाकार और साहित्यकार की जिम्मेदारी है कि वह सामाजिक व्यवस्था के सुधार तथा मानवीय चेतना के विकास में अनिवार्यतः सक्रिय हो । एक ओर कलाकार समाज केलिए है, दूसरी ओर समाज कलाकार के लिए है ।

कलाकार को समाज से तथा समाज को कलाकार से अलगाना अनुचित है । अतः कलाकार तथा समाज का सम्बन्ध द्वन्द्वात्मक है ।

प्रोलिटकल्ट सोवियत रूस की समाजवादी क्रान्ति के तुरन्त बाद बुद्धिजीवियों ने सहयोग नहीं दिया था । 'प्रोलिटकल्ट' ने इस शून्यता को भरा । क्रान्ति के तुरन्त बाद विभिन्न क्षेत्रों में जो ज़्यादती हुई थी उससे भयभीत और आक्रान्त बुद्धिजीवियों की मनःस्थिति का परिचय पास्तरनाक का उपन्यास,'डॉ.ज़िवागो' में मिलता है । जिसमें सोवियतक्रान्ति को नकारात्मक नज़रिए से आँका गया है । प्रोलिटकल्ट ने इस परिवेश के बदलाव में अहम् भूमिका निभायी । इसके फलस्वरूप सारे देश में सर्जनात्मक लेखन के स्टुडियो बन गए, सर्वहारा श्रमिकों को लेखन के लिए शिक्षित किया गया, उन्हें कलाकार बनाने की कोशिश हुई । क्रान्ति के बाद शिक्षा और सुधारों की, आदर्शपात्रों के सृजन की और बदली परिस्थिति को बरकरार रखने की भी सख्त जरूरत थी । साहित्य और कला को इसके लिए नियोजित किया गया । वर्गप्रचारवादी रूखों का प्रभाव उत्कृष्ट रचनाकारों पर भी पड़ा । उदाहरण केलिए मायकोफ्स्की ने क्रान्ति के बाद प्रचारक रूख अपनाया था । दरअसल उपयोगितावाद से सृजनकार्य में वैविध्य और कलात्मकता गायब होने लगी । [100] निकोलाई बुखारिन (1888-1937) ने पार्टी के साथ लेखकों के सम्बन्ध की घनिष्टता पर बल दिया । वे पार्टी के सिद्धान्तकार और सोवियत संस्कृति के विकास के पक्षधर थे । लेकिन उन्होंने संस्कृति के क्षेत्र में क्रान्तिकारिता का पक्षपोषण नहीं किया । वे बूर्ज्वासंस्कृति के श्रेष्ठ अंशों का ग्रहण वांछनीय मानते थे । बुखारिन का ख्याल था कि कला विज्ञान की तुलना निम्न कोटी की है ।

ए.ए.ज़्दानोव समाजवादी यथार्थवाद का प्रशंसक-आलोचक थे । उनके अनुसार 'साहित्य का कार्य, जनता के मस्तिष्क से पूंजीवादी अवशेषों को मिटाना है । वे साहित्य में समाज के प्रतिबिम्बन का समर्थन करते हैं । लेखक को चाहिए कि वह जीवन के चित्रण के पूर्व जीवन को समझें । उसे विद्वत्ताभार से बोझिल चित्रण व जीवन्त विहीन नहीं करना चाहिए । उसे वास्तविकता की प्रगति पर ध्यान देना चाहिए । प्रतिपादन यथार्थ और ऐतिहासिक हो । चतुर्थ दशक में क्रिस्टोफर कॉडवेल ने 'भ्रम और वास्तविकता' तथा 'ह्रासशील संस्कृति का अध्ययन नामक दो ग्रन्थ लिखे । उन्होंने कविता के स्रोत आदिमयुग में खोजे और जीवन तथा कविता को साथ रखकर देखा । उन्होंने पाया कि कबीलाई आदिम समाज में कविता, जीवन से पूर्णतः सम्बन्धित थी पर बाद में वह दूर होती गयी फिर कवितात्मक भ्रमों की सृष्टि के भीतर वास्तविकता छिप गयी । [101] कॉडवेल ने प्राणिविज्ञान, मनोविज्ञान, प्रकृति-पर्यवेक्षण और समाज-निरीक्षण के बल पर नया मार्क्सवादी काव्यशास्त्र बनाया जो सोवियत काव्यशास्त्र से भिन्न प्रकार का है और कॉडवेल की प्रतिभा का प्रमाण

भी । उनके अनुसार कविता मानवीय सारतत्व की रक्षा करती है ।

कॉडवेल ने कला का पूर्णतः मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार किया और मनुष्य के जीवन में कला की संपृक्तता की खोज की । उन्होंने सूचित किया है कि कला संघर्षमूला है ; क्योंकि समाज में निरन्तर कल्पना और आदर्श के विरूद्ध वास्तविकता का संघर्ष बना रहता है । यह संघर्ष कोई दिमाग फितूर नहीं है, बल्कि समाज की आर्थिक विषमताओं का परिणाम है । कलाकार का सही लक्ष्य होना चाहिए कि वह पूरे समाज के कल्याण के लिए इन विशेषताओं का सही निदान और हल निर्दिष्ट करे ।[102] काडवेल ने स्पष्ट बताया है कि कलाकार के लिए आवश्यक है कि वह आगे बढ़कर सर्वहारा वर्ग का, उसके क्रान्तिकारी अभियान में नेतृत्व करें ।

मक्सिम गोर्की:- गोर्की के अनुसार साहित्यकार का कार्य केवल बदलते हुए मनुष्य की सूचना भर देना नहीं है, उसका दायित्व है कि वह उन संवेगात्मक प्रक्रियाओं को चित्रित करे जो मनुष्य के परिवर्तन को सामने लाती हैं । लेखकों के लिए यह भी अनिवार्य है कि वे सतही जीवन को देखने के बजाय यथार्थ जीवन के प्रति एक गहन अन्तर्दृष्टि विकसित करें, तभी वे यथार्थ को उसकी वास्तविकता में पकड़ सकते हैं । सोवियत लेखकों को सलाह देते हुए गोर्की का कहना है कि उन्हें अपनी कृतियों में श्रम को नायकत्व का पद प्रदान करना चाहिए । श्रम को एक रचनात्मक कार्य समझे बिना जीवन्त कृतियों का सृजन नहीं हो सकता ।[103] इसके साथ-साथ अनुभव तथा ज्ञान के भंडार का संवर्द्धन भी आवश्यक है ।

लूशन:- लूशन चीन के प्रतिबद्ध एवं क्रांतिकारी साहित्यकार थे । वे जनता के सहचर थे । लूशन ने स्पश्ट कहा कि कला और साहित्य जनता की विरासत है । इसको विकसित करना हर ईमानदार कलाकार का दायित्व है । लूशन प्लेटो और हेयने के चिन्तन का सख्त विरोधी है । हेयने की दृष्टि में कवि देवतुल्य है । कलाकार और साहित्यकार दूसरों से श्रेष्ठ हैं । जनता को उनका आदर करना चाहिए । उनका श्रम औसत आदमी के श्रम से महत्वपूर्ण है । इसलिए नृत्युपरान्त कवि को ईश्वर के निकट आसन मिलेगा, भोजन मिलेगा । हेयने की इस प्रतिक्रियावादी विचारधारा का पर्दाफाश कर लूशन ने बताया है कि मज़दूरों का श्रम भी कलात्मक सृजन है । कला का मतलब श्रम है ।

लूशन की राय है कि चहार दीवारी के दमघोट वातावरण में, समाज, और जनता से अलग होकर काव्यशास्त्र के गहनतम और गंभीरतम अध्ययन करते हुए कोई भी व्यक्ति क्रान्तिकारी व वामपंथी साहित्यकार बन सकता है । लेकिन ये कमरे से बाहर सड़क पर खड़े होकर जनजंग में शामिल होने में असमर्थ हो जाते हैं । ये साहित्यकार कमरे के भीतर क्रान्तिकारी हैं । असली जीवन में ये मौकापरस्त तथा मुखौटाधारी हैं ।

इनको 'लूशन 'सलूण समाजवादी' कहते हैं ।[104] 'सलूण' करीने से अलंकृत स्वागत कक्ष है । यहाँ बैठकर लोग विश्वशान्ति, सशस्त्रक्रान्ति तथा असली समाजवाद की बहस करते हैं । ये लूशन की दृष्टि में प्रतिबद्ध नहीं । जो व्यक्ति वर्ग-संघर्ष का मतलब समझता है वही सच्चा कलाकार है । क्रान्ति कटुक निबौरी है । उसमें खून और मिट्टी की सुगन्ध है । यह मनबहलाव की चीज़ नहीं । यह अपनी जनता और धरती पर अड़िग रहने का श्रम है । क्रान्ति रोमान्स नहीं । वह मनुष्य से कुर्बानी माँगती है । लूशन ने स्पष्ट कहा है कि दुनिया भर के कला-साहित्य को प्रगतिशील बनाने में सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी साहित्य का सक्रिय योगदान रहा है ।

नवमार्क्सवादी चिन्तन:- मार्क्सवाद विश्व को बदलने का दर्शन है । अभी तक जितने दर्शन हुए वे सब संसार की व्याख्या करने में लगे हुए थे । लेकिन मार्क्सवादी दर्शन की खासियत यह है कि उसका लक्ष्य संसार का संपूर्ण व नींवाधार परिवर्तन है ।[105] मार्क्सवाद, कार्लमार्क्स और एंगेल्स के सूत्रों का बन्द भंडार नहीं है बल्कि निरन्तर गत्यात्मक और व्याख्यासापेक्ष जीवन दर्शन है । वह दरअसल एक कवचबद्ध, परिसीमित और जकडबन्द विचारप्रवाह नहीं है । उसमें कला और साहित्य को आलोकित करने केलिए, कलाशास्त्र एवं साहित्यालोचन के सिद्धान्तों के प्रत्यय-समूच्चय भी हैं ।

मार्क्सवाद की व्याख्या सापेक्षता इस दृष्टि से है कि मार्क्स-एंगेल्स ने, सामान्यतम रूप में अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है । इन सामान्य सूत्रों की संरचना के समय मार्क्स:एंगेल्स के अवधान में विशिष्ट तथ्य और प्रवृत्तियाँ ही रही हैं । उनके समय जो प्रकृति-विज्ञान, समाज और इतिहास थे, जो द्वन्द्व थे, उनमें बाद में परिवर्तन आना स्वाभाविक है । अत: परवर्ती काल की चिन्ताओं, जिज्ञासाओं और चुनौतियों के सन्दर्भ में मार्क्सवाद की प्रासंगिकता की परख होनी चाहिए । याने मार्क्सवाद जड़वाद नहीं है । वह सतत् विकासशील, खुला हुआ तथा तर्क के बल पर, स्वपक्ष और प्रतिपक्ष की जिज्ञासाओं को सन्तुष्ट करने में संलग्न है । वह न तथ्यवाद तक सीमित है, न प्रत्ययवाद से ग्रस्त ।[106] वह बुद्धि और विज्ञान की सहायता से अव्याख्येय प्रतीत होनेवाले विषयों की भी बुद्धिसंगत व्याख्या करने के प्रति सन्नद्ध और प्रतिबद्ध है । स्वतन्त्र चिन्तन क्षमता के बिना मार्क्सवाद के सारतत्व को न समझा जा सकता है, न उसका अपनी परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है । मार्क्स:एंगेल्स का चिन्तन, तथ्यवादी और प्रत्ययवादी भ्रान्तियों से बचकर, परिघटना और समाज की सही समझ और व्याख्या के लिए जिज्ञासुओं का मूलाधार है । अत: कोई भी यथार्थवादी या भौतिकवादी या सम्यक् दर्शन व्यवस्था, मार्क्स: एंगेल्स को त्याग देने से स्थापित नहीं हो सकती । अतएव मार्क्सवाद को मूलाधार, चिन्तन के पथप्रदर्शक तथा विवेचना की प्रविधि के रूप में मानते

हुए अपने समय के परिवर्तन की चुनौती से भिड़ने की ज़रूरत हमेशा बनी रहेगी। अमृतराय के शब्दों में 'मार्क्सवाद सतत परिवर्तनशील है। इस परिवर्तनशीलता के कारण वह अन्य दर्शनों के समान मृतज्ञानकोष न रहकर क्रान्तिकारी ज्ञानकोष बन जाता है जो क्रान्तिकारियों को राह दिखलाता है और उन्हें क्रान्ति के टेढ़े-मेढ़े रास्ते को सफलतापूर्वक पार करने की दीक्षा देता है।[107]

मार्क्स के मूल सिद्धान्तों को मानते हुए दिक्कालानुसार, अपनी-अपनी स्थितियों दबावों और चुनौतियों के अनुरूप उसकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ हुई हैं। इनसे मार्क्सवाद की अनिश्चयात्मकता, अनेकार्थता या संदेहास्पदता प्रकट नहीं हुई है बल्कि सुखद और आश्चर्यजनक सर्जनात्मकता और विकासशीलता ही प्रमाणित हुई है।[108] पश्चिम में मार्क्सवाद का विकास कुछ स्वतन्त्र सोच के विद्वानों द्वारा हुआ है। एस्.एस्.प्रावेर, पी.दिमेट्स्, डी.मक्लेल्लान, एस.मोराव्स्की, एस्.हूक्, ड्ब्ल्यू.एम्.जॉणस्टन, एर्न्स्टफिशर, एच्.गल्लास, एच.कोह्, मिखॉयल लिफ्शित्स्, रायमोन्ट विल्यम्स, पियरी माषेरी, हरबर्ट मारकूस, एच्.आरवॉण, अडोल्फो सांज्जेस वास्कस्,आर.एस्कार पिट्, लूसिएँ गोल्डमॉन, वाल्टर बन्जमिन, फ्रडरिक् जेमिसण, आदि प्रमुख नवमार्क्सवादी हैं। इसके अतिरिक्त इटली में ग्रामशी, हंगरी में लुकाच, जर्मनी में कोर्स्च आदि ने भी नये रूप में चिन्तन मनन किया। इसके अतिरिक्त फ्रेन्कफर्ट स्कूल ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण सोच-विचार प्रस्तुत किया है। मार्लोपोन्टी तथा लेफ्वे आदि ने मार्क्सवाद पर नया आलोक डाला। लूकाच, और फ्रेन्कफर्ट स्कूल की छत्रछाया में नयी पीढ़ी सामने आयी। आस्ट्रिया का मार्क्सवाद और डचमार्क्सवाद भी इसी प्रवाह की धाराएँ हैं। लूकाच तथा कोर्स्च ने 1923 में जब इतिहास और वर्गचेतना (लुकाच) तथा मार्क्सवाद और दर्शन (कोर्स्च) का प्रकाशन किया था तब वे साम्यवादी दल के वफ़ादार सिद्धान्तकार थे किन्तु 'तृतीय इंटरनेशनल' में इनके विचारों की कठोर आलोचना हुई।[109]

सोवियत रूस के साथी मार्क्सवाद को विज्ञान बताते हैं। उनका अभिमत है कि मार्क्स का दर्शन अन्य दर्शनों की भांति केवल कोरा सिद्धान्त नहीं हैं। उनके दर्शन का एक अनिवार्य व्यावहारिक-पक्ष भी है। बुखारिन मार्क्सवाद को वैज्ञानिक-समाजशास्त्र बना देना चाहते थे। पाश्चात्यों ने मार्क्सवाद को सामान्य विज्ञान के रूप में नहीं, समाज के एक सिद्धान्त के रूप में देखा। पश्चिमी मार्क्सवादियों ने मार्क्स के ग्रन्थों से अवधारणाओं का दोहन किया और उनकी सहायता से सामाजिक चेतना की विकृतियों और सामाजिक संरचनाओं तथा उनके समकालीन परिवर्तनों का विश्लेषण किया। पाश्चात्य मार्क्सवादियों ने नववामपंथ के विषय में भी सोचा है। सोवियत मार्क्सवादी तथा अन्य, पाश्चात्य मार्क्सवाद को 'वामवाद' का शिकार बताते हैं।[110] नववामवाद परिवर्तन की प्रेरणा को

ही पुष्ट नहीं करता अपितु वह परिघटना या विश्वप्रपंच, समाज, इतिहास, कला और साहित्य आदि विषयों में भी नवागंतुकों को संतुष्ट कर सकता है याने उनका दावा है कि उसमें ऐसी संभावनाएँ हैं ।

अन्टोनियो ग्रामशी (1891-1937):- अन्टोनियो ग्रामशी के संस्कृति और कला सम्बन्धी विचार बहुत उपयोगी हैं । ग्रामशी, किशोरावस्था में क्रोचे के प्रत्ययवाद से प्रभावित थे । परन्तु टूरिन (इटली) में समाजवादी आन्दोलन में जुड़ जाने के बाद वे प्रत्ययवाद से मुक्त हो गए । ग्रामशी कृषक पृष्ठभूमि से आये थे अतः उन्होंने समाजवाद की सफलता के लिए आन्दोलन को महत्व दिया था । उन्होंने देखा कि सामंत और पूंजीपति वर्ग, दण्ड से नहीं, संस्कृति और विचारधारा के द्वारा शासन करते हैं, और इस संस्कृति में सनी हुई जनता अपने ऊपर शासक वर्ग का लदाव-दबाव स्वीकारती है अतः शासकीय प्रभुत्व, समाज में वस्तुतः सांस्कृतिक सम्प्रभुता के रूप में राज करता है । इसका सामना करने के लिए श्रमिकवर्ग तथा उसके पक्षधर बुद्धिजीवियों को, संगानान्तर सांस्कृतिक सम्प्रभुता का विकास करना पड़ेगा । ||| इसका अर्थ यह है कि पूँजीवादी समाज में समाजवादी क्रान्ति केलिए कला और साहित्य, विचारणा और आलोचना यदि शोषित वर्ग की सांस्कृतिक सम्प्रभुता का विकास नहीं करती तो वह प्रासंगिक नहीं हो सकती । इस तरह ग्रामशी के चिन्तन में सांस्कृतिक सृजन और चिन्तन का जनवादी निकष भी छुपा हुआ है ।

ग्रामशी ने सभी प्रकार के संघर्षों का अभिनन्दन करते हुए कहा कि बिना पूंजीवाद के विकास के भी क्रान्ति सम्भव है, यह भी कि क्रान्ति के संवाहक समाज के वर्ग होते हैं, मात्र एलीट या प्रबुद्ध समुदाय नहीं । ग्रामशी ने श्रमिकों की परिषदों का आन्दोलन चलाया । क्योंकि साम्यवादी दलों की संरचना में पदसोपानक्रम (हायरैकी) मौजूद था और श्रमिकों पर बौद्धिक पार्टी नेता हावी रहते थे । श्रमिक परिषदों में साम्यवादी सहकारिता का नमूना विकसित हो सकता था, जहाँ समता, स्वतन्त्रता और बंधुत्व हो, जनतान्त्रिकता हो । ये श्रमिक परिषद, श्रमिकों को संगठित कर सकती थीं, सुशिक्षित और सुसंस्कृत भी ।

ग्रामशी, श्रमिक परिषदों में श्रमिकों-कृषकों के सांस्कृतिक प्रभुत्व का स्वप्न देख रहे थे यानी वर्तमान बूर्ज्वा-समाज में सर्वत्र, मानसिकता और व्यवहार में, शिक्षा, कला और साहित्य में, सब जगह सामंती-पूँजीवादी संस्कृति की सम्प्रभुता व्याप्त है, और इसे तोड़कर भविष्य के समाजवादी समाज में, नवीन जनवादी संस्कृति, कला और साहित्य की सम्प्रभुता स्थापित करनी होगी । इसी सांस्कृतिक सम्प्रभुता की महा-अवधारणा के अन्तर्गत, ग्रामशी का कला-साहित्य चिन्तन विकसित हुआ । अपने कारागार की टिप्पणियों में ग्रामशी ने 1926 में कैदखाने के जीवन से अन्त तक विभिन्न विषयों पर लिखा । पारम्परिक साम्यवादी चिन्तन में श्रमिक वर्ग पर ही

सारा बल दिया गया है, बौद्धिक वर्ग की भूमिका उतना आलोकित नहीं है । किन्तु ग्रामशी ने बौद्धकों के योगदान को बहुत महत्व दिया । पूँजीवादी सांस्कृतिक सम्प्रभुता का सामना करने के लिए श्रमिकवर्ग के साथ कलाकारों तथा बुद्धिजीवियों को भी एकजुट होना चाहिए । समग्रतः ग्रामशी जनवादी संस्कृति का पक्षधर हैं ।

ब्रिटेन में रिचर्ड होगार्ट द्वारा स्थापित बर्मिंघम नगर के समकालीन सांस्कृतिक अध्ययन केन्द्र के मार्क्सवादियों ने संस्कृति पर काफी कार्य किया है । रेमंड विलियम्स तथा एडवर्ड थाम्सन विशेष उल्लेखनीय हैं । इनके विचारों की कठोर आलोचना भी हुई । वे मार्क्सवाद के वर्गसंघर्ष पर अधिक ज़ोर न देते हैं । उनकी विचारधारा 'फ्रांकफर्ट स्कूल' के नवमार्क्सवादियों के चिन्तन से जुड़ी रही । एरिक फ्राम, विलहम् रेयह्, लूसिएँ गोलडमन, तियडोर अडर्नो, हरबर्ट मारकूस आदि फ्रांकफर्ट स्कूल के प्रसिद्ध नवमार्क्सवादी साहित्यकार हैं । दरअसल, 'फ्रैंकफर्टस्कूल' के 'सामाजिक-शोध संस्थान' ने आलोचनात्मक सिद्धान्त का विकास किया जो प्रतीकात्मक रूप में मार्क्सवाद से जुड़ा था पर मार्क्सवाद की मुख्यधारा का अंग नहीं था ।[112] इस संस्थान के विवेचकोंका साम्यवादी राजनीति के प्रति आलोचनात्मक रूख था उसमें सक्रिय भागीदारी नहीं थी । इनमें से अधिकांश चिन्तक बाद में मार्क्सवाद के विरूद्ध हो गए ।

हरबर्ट मारकूस का विचार है कि बूर्ज़्वा समाज में स्पिरिच्अल कल्चर को सार्वभौमिक शाश्वत और वांछनीय कहा जाता है । इस आत्मिक संस्कृति को सर्वातीत, और काम्य माना गया है । इस सांस्कृतिक आयाम को, तथ्यों और ज़रूरतों की दुनिया से भिन्न, प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'ध्येय' या 'परमार्थ' रूप में प्रस्तुत किया गया है । यह संस्कृति सिर्फ़ आन्तरिक रूप से ही अनुभूत हो सकती है और इसका बाह्य जीवन संघर्ष से कोई नाता-रिश्ता नहीं है । मारकूस का मत है कि संस्कृति बूर्ज़्वा समाज में अस्पष्ट और सन्देहास्पद अर्थ में प्रयुक्त होती है । बूर्ज़्वा संस्कृति में आनन्द और स्वतन्त्रता की इच्छा प्रधान होती है किन्तु ये सबको सुलभ नहीं हो पातीं । आनन्द और स्वतन्त्रता का भ्रम पैदाकर बूर्ज़्वासमाज, आमूल परिवर्तनकारी समाजवादी शक्तियों का विरोध करता है और विद्रोही तत्वों का दमन कर देता है ।[113] वह समाजवादी व्यवस्था को 'लौह आवरण' और बन्द समाज कहता है और अपने को मुक्त एवं जनतान्त्रिक ।

मरकूस पूँजीवादी उपभोग संस्कृति को उच्चतर मानसिक संस्कृति का विनाशक सिद्ध करता है । उनके अनुसार यह उपभोक्तावाद, आत्मिक संस्कृति को भोगवादी भौतिक संस्कृति में बदल देता है । इस प्रक्रिया में उपभोक्ता, आलोचनात्मक बुद्धि से वंचित होकर चीज़ों के लोभ-लालच में

फंस जाता है और कभी इस प्रलोभन के भँवर से निकल नहीं पाता। यौनसंतुष्टि की तरह पूँजीवाद में संस्कृति का प्रचार-प्रसार तो होता है पर उसका रूप पतनशील होता है।[114] मारकूस की पुस्तक एकायामी व्यक्ति पूँजीवादी समाज की संस्कृति को अनावृत करने में काफ़ी कामयाब हुई है। सर्वसत्तावादी पूँजीवाद विज्ञापनों के ज़रिए, संचार माध्यमों द्वारा व्यक्ति की इच्छाओं को अपने लाभ के लिए प्रयुक्त करता है फ्रडरिक पोलॉक, एरिकफ्राम, एडर्नो, हार्खिमर आदि में भी यही रूख है। फ्रैंकफुर्त स्कूल के एडर्नो की पुस्तक "प्रतिबद्धता की द्वन्द्वात्मकता की ओर' इसका मिसाल है। एडर्नो तथा हार्खिमर ने प्रबुद्धता की द्वन्द्वात्मकता' में पूँजीवादी सांस्कृतिक-व्यापार का विवेचन किया है। इस किताब में 'विक्रय योग्य वस्तु के प्रभाव को सौन्दर्य और व्यक्तित्व के आयामों पर आंका गया है कि किस तरह पूँजीवादी औद्योगिक उपभोग-संस्कृति, आत्मिक संस्कृति को विकृत करती है।

एडर्नो और हार्खिमर ने पाया कि अमरीका में मैनेजरी पूँजीवाद का सम्प्रभुता है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त है। सम्बन्धों और अभिवृत्तियों पर भी पूँजी की पकड़ है अतः वहां मानवीय सम्बन्ध, 'पूँजीसम्बन्धों' में बदल गए हैं। एडर्नो कहते हैं कि सर्वसत्तावादी समाज में कला वह कार्य कर सकती है जो राजनीति नहीं कर सकती।[115] एडर्नो के अनुसार कला अप्रत्यक्ष रूप से सर्वसत्तावाद के विरुद्ध चेतना जगा सकती है।

एडलर ने श्रमिक वर्ग का रूपान्तरण" में कहा है कि स्वयं मार्क्स ने श्रमिक वर्ग के कई स्तर बताये हैं, उत्पादक श्रमिक, बेकार श्रमिक तथा लम्पट श्रमिक (लुम्पेन सर्वहारा) किन्तु विकसित पूँजीवाद में वर्गों का पुराना रूप बहुत बदल गया है। एडलर ने 'रईस श्रमिक' वर्ग में दक्ष श्रमिकों तथा कार्यालय कर्मचारियों को भी गिना है।

फ्रैंकफुर्तस्कूल के विचारकों, एडर्नो, ग्रम्शी, हर्बट मारकूस आदि की तरह लूसिएँ गोल्डमन ने संस्कृति पर खूब सोचा है। बुखारेस्ट, हंगेरी में जन्मे लूसिएँ गोल्डमन (1913-1970) ने फ्रांस और ब्रुसल्स में काम किया। उन्होंने 'उत्पत्तिमूलक संरचनावाद' में परिवार तथा वर्ग के जटिल सम्बन्धों का विश्लेषण किया। उन्होंने कलाकृति के रूप और लेखक की विश्वदृष्टि में सम्बन्ध दिखाया। विश्वदृष्टि किसी वर्ग या समुदाय से सम्बद्ध होती है यानी किसी कृति में लेखक का विश्वबोध व्यक्त होता है जो उसका निजी नहीं होता, वह उसके वर्ग या समुदाय का होता है।[116] गोल्डमन, पास्कल और रेसीन की कृतियों का विश्लेषण करके दिखाता है कि इनकी रचनाओं में उस समय के उच्चवर्ग का विश्वबोध या जीवन दर्शन है। ये लूकाच के 'इतिहास और वर्गचेतना' से प्रभावित हैं।

अर्न्स्ट फिशर का विचार है कि कला, समय से प्रभावित होती है और उसमें अपने वक्त की आशा है: आकांक्षाएँ, आवश्यकताएँ भी व्यक्त होती हैं। उन्होंने अपनी दो पुस्तकों 'कला की आवश्यकता' तथा 'विचारधारा के विरूद्ध कला' में कला की स्वायत्तता का समर्थन तथा कला तथा साहित्य पर विचारधारा के आच्छादन का विरोध किया है।

फिशर कहते हैं कि व्यक्ति, पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों व्यवस्थाओं में पदार्थ में बदल जाता है और यों मानव सम्बन्ध विकृत हो जाता है।[17] वे पूँजीवादी तथा साम्यवादी दोनों शिवरों में अतिवाद पाते हैं। जहाँ साम्यवादी लेखक, कला-साहित्य की जड़ें, समाज और उसके मूलाधार-आर्थिक बुनियाद-में ढूंढते रहते हैं, वहीं बूर्ज्वाविचारक कला का समाज से कोई रिश्ता नही मानते। फिशर का मन्तव्य यह है कि इन दोनों अतिवादों का विरोध होना चाहिए। सत्य कहीं बीच में है। दोनों शिविरों में मिथ्याचेतना का प्रसार हो रहा है। इससे मनुष्य दासता के बक्से में बन्द हो रहा है।

फिशर ने यह भी बताया है कि सोवियत-साम्यवाद और अमरीकी साम्राज्यवाद में गडबड़ियां होती हैं। सोवियत साम्यवाद व्याख्याओं द्वारा अपने अन्तर्विरोध छिपाता है तो अमरीका और पश्चिम जर्मनी ने साम्यवाद के विनाश का संकल्प ले रखा है। स्थिति यह है कि विश्वविनाशक अस्त्रशस्त्रों के कारण प्रत्यक्ष संघर्ष संभव न रहने पर भी भीतरी, सूक्ष्म प्रतिस्पर्धा ही संभव रह गयी है। ख्रुश्चेव ने 1956 की बीसवीं पार्टी कांग्रेस में इसी सूक्ष्म प्रतियोगिता का नारा दिया था। अर्थात् 1956 में ही संशोधनवाद का आरंभ रूस में हुआ बाद में ब्रश्नेव के शासन काल में इसका विस्तार हुआ और मिखायल गोर्बाचेव तक आते आते रूस पूर्णरूप से संशोधनवाद का शिकार हो गया। फिशर मानते हैं कि मार्क्सवाद विचारवाद नहीं है किन्तु साम्यवादी दल ने इसे विचारवाद बना दिया है। मार्क्सवाद की शक्ति यह है कि यह विज्ञान और मनोराज्य को एक करता है। मार्क्सवाद का उद्देश्य पूर्ण मनुष्य का विकास है। वह सर्जनात्मकता का प्रोत्साहक है। वह अलगाव के आधार को हटाकर, लगाव या मानवीय ममता का समाज बनाना चाहता है।[18] इसी उच्च और सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य के साथ मार्क्सवाद का प्रादुर्भाव हुआ था। उसने विकास के इतिहास के नियमों को खोजकर मनोराज्य को वैज्ञानिक आधार दिया। उसने वर्गहीन समाज की वास्तविक संभावना का विकल्प सामने रखा। लेकिन कम्युनिस्ट दलों ने मार्क्सवाद को व्यापक और सम्पूर्ण दर्शन के बजाय, संकीर्णतावादी आकार में पेश किया।

लूकाच ने अपनी किताब 'इतिहास और वर्गचेतना' में बताया है कि पूंजीवादी साहित्य में पदार्थीकृत और विश्रृंखलित मानवचेतना और मानवदशा का ही चित्रण होता है। वह उस साहित्य को श्रेष्ठ मानते हैं जो

व्यवस्था के प्रतीयमान रूप को बेधकर, उसके भीतरी मानव-विरोधी तत्व को उद्घाटित कर देता है और यह वही कर सकता है जो क्षणों या विश्रृंखलित मनोदशाओं को ही बिम्बायित न करता रहे, बल्कि समाज को सम्पूर्णता में देख सके ।

लूकाच ने संस्कृति पर चिन्तन किया था । 1920 में उनका लेख 'प्राचीन तथा नवीन संस्कृति' प्रकाशित हुआ । उनके विचार में संस्कृति सभ्यता से भिन्न होती है । उस में मूल्यवान्-सृजन और योग्यताओं का विधान होता है । संस्कृति में तात्कालिक आवश्यकता के परे जाने की प्रवृत्ति होती है । लूकाच का कथन है, पूँजीवाद सौन्दर्यविनाशक होता है । वह मनुष्य और उसके सृजन को क्रय विक्रय की वस्तु बनाकर, उन्हें साधन या इस्तेमाल का माध्यम बना देता है ।[119] लूकाच पूँजीवाद को कला का शत्रु मानते थे । औद्योगीकरण तथा प्रौद्योगिकीकरण समाजवाद और पूँजीवाद दोनों में है । अतः मानवसभ्यता के सम्मुख कुछ सामान्य संकट हैं । वह पुँजीवादमें वस्तुपूजा (फैटिशिज़्म) की प्रवृत्ति से उत्पन्न संकट या आत्मनिर्वासन को रेखांकित करते हैं । इस में उत्पादन का उपयोग-मूल्य, विनिमय मूल्य से नियमित होने लगता है । इससे आत्मनिर्वासन तथा पदार्थीकरण बढ़ता है । मनुष्य उत्पादित वस्तुओं के साथ रहस्यमय स्थिति में जीने लगता है । और एक दूसरे के प्रति भी रहस्यीकृत हो जाता है । इसके सिवा प्रौद्योगिकी समाज अतिविशेषीकृत हो जाता है अनुभव और विचार खण्डित बनते हैं और पूर्णता का बिम्ब लुप्तमान होता है । पुँजीवाद में पूर्णविश्वबोध की संभावना ही नहीं रहती । प्रत्येक स्थिति व्यक्ति, मनः स्थिति, सम्बन्ध समीकरण की दशा वक्र या विकृत हो जाती है और कहीं असलियत नज़र नहीं आती, सिर्फ मतलब नज़र आता है ।[120]

जिस प्रकार जर्मन प्रत्ययवाद और हीगेल के दर्शन बूर्ज़्वा विश्व के लिए गणनीय रहे हैं, वैसे ही लूकाच का साहित्य सिद्धान्त तथा सांस्कृतिक चिन्तन पूर्वयूरोप के समाजवाद के लिए माननीय रहे हैं ।

समकालीन मार्क्सवाद के चिन्तन में लूईस अल्थूसर का विशेष योगदान है । उसका 1918 में, अल्जीरिया में जन्म हुआ था वे फ्रान्सीसी साम्यवादी और दार्शनिक के रूप में समादृत है । उनकी दो किताबें 'मार्क्स के लिए' तथा 'मार्क्स की पूंजी को पढ़ते हुए' बहुत प्रसिद्ध हुई । उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन को नया आलोक दिया, नयी व्याख्या भी दी । उन्होंने कार्ल मार्क्स के प्रारंभिक लेखन और परवर्ती लेखन में अंतर खोजा । उनके अनुसार युवकमार्क्स,लगभग हीगेल की तरह, प्रारंभिक रचनाओं में आत्मनिर्वासन और आत्मानुभूति की प्रस्तावना द्वारा, मानववादी परम्परा में मानवनियति का साक्षात्कार करता है । उसके बाद परवर्ती लेखन में मार्क्स ऐतिहासिक भौतिकवाद, रूपान्तरण का सिद्धान्त और संरचनात्मक

आधार-आधेय सम्बन्ध प्रदर्शन द्वारा, राज्य, पूंजीसंरचना आदि के ज़रिए वैज्ञानिकता की ओर झुक जाता है। मार्क्स के परवर्ती चिन्तन में 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' और 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' का अंकुरण और पल्लवन साफ-देखा जा सकता है जो प्रारंभिक लेखन में गायब है।

अल्थूसर की दृष्टि में मार्क्स ने एक नया विज्ञान और नया दर्शन दिये हैं। उन्होंने स्पष्ट बताया है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में एक दृष्टि है, एक सिद्धान्त है। [2] उन्होंने सिद्धान्त और व्यवहार में सिद्धान्त पर अधिक बल दिया है, वहाँ अल्थूसर का स्पष्टीकरण यह है कि उसने क्रान्तिकारी व्यवहार के लिए क्रान्तिकारी सिद्धान्त पर बल दिया है और तथ्यवाद को ध्वस्त किया है। अल्थूसर ने मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र एवं साहित्य-सिद्धान्तों से संबन्धित नवीनतम भ्रान्तियों का निराकरण किया है।

यों निष्कर्षतः हम बता सकते हैं कि नवमार्क्सवादियों ने मार्क्स के चिन्तन का पल्लवन करने की कोशिश तो की, लेकिन इस कोशिश में वे मार्क्स से बहुत दूर हो गये, इतना कि मार्क्स की नींवाधार धारणाओं को भी पलट दिया। ग्रामशी ने जैसे कि हमने देखा सर्वहारा सांस्कृतिक सम्प्रभुता को सर्वाधिक महत्व दिया। रेमेंड विल्यम्स और एड़बर्ड थॉसन ने वर्ग संघर्ष पर ज़ोर नहीं दिया। मारकूस की दृष्टि पूँजीवादी समाज की उपभोग संस्कृति की पेचीदी स्थितियों में अटक गयी थी। एडर्नो और हार्खिमिर ने मैनेजरी पूँजीवाद का विश्लेषण करते हुए, सामाजिक परिवर्तन में राजनीति से बढ़कर कला की भूमिका को वरीयता दी। गोल्डमान ने भी संस्कृति पर बल दिया और बताया कि कला में वर्गीय दृष्टि ही उन्मीलित होती है। फिशर ने पूँजीवाद और साम्यवाद को अतिवादी मानते हुए यह आरोप किया, मार्क्सवाद को मार्क्सवादी दलों ने ही ज़्यादा संकीर्ण बनाया। लूकाच ने इसकी ओर संकेत किया कि समाजवादी समाज भी प्रौद्योगिकीकरण की समस्या से पीड़ित है। अलथूसर मार्क्स पर यह आरोप लगाते हैं कि क्रांतिकारी सिद्धान्तों पर बल देते हुए उन्होंने तथ्यवाद को ध्वस्त किया। संक्षेप में इन्होंने आर्थिक आधार से बढ़कर सांस्कृतिक सुपरिगठन को ज़्यादातर महत्व देते हुए दावा किया कि मार्क्सवादी दर्शन को संपूर्ण बनाने का स्तुत्य कार्य संपन्न हुआ है।

हिन्दी सृजनकारों की सामाजिक प्रतिबद्धता सम्बन्धी अवधारणा

साहित्यकार की सामाजिक प्रतिबद्धता पर बीसवीं शताब्दी में, हिन्दी साहित्य जगत् में भी काफ़ी बहस हुई। साहित्य के मूल उत्स एवं सच्चे स्वरूप को समझने के लिए अनेक प्रयत्न हुए। प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द ने कहा था 'साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गयी हो, जिसकी

भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हों । साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की हैं । चाहे वह निबन्ध के रूप में हो, चाहे कहानियों के, या काव्य के उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए ।[122] प्रेमचन्द ने इसका भी जिक्र किया कि निस्सन्देह काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है ; पर मनुष्य का जीवन केवल स्त्री-पुरुष प्रेम का जीवन नहीं है । क्या वह साहित्य, जिसका विषय श्रृंगारिक मनोभावों और उनसे उत्पन्न होनेवाली विरह-व्यथा, निराशा आदि तक ही सीमित हो जिसमें दुनिया और दुनिया की कठिनाइयों से दूर भागना ही जीवन की सार्थकता समझी गयी हो, हमारी विचार और भाव सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है ? श्रृंगारिक मनोभाव मानव-जीवन का एक अंग मात्र है, और जिस साहित्य का अधिकांश इसी से सम्बन्ध रखता हो, वह उस जाति और उस युग के लिए गर्व करने की वस्तु नहीं हो सकता और न उसकी सुरुचि का ही प्रमाण हो सकता है ।[123] साहित्य केवल मन बहलाव की चीज़ नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है । वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, और उनका हल करता है । उसकी उत्कृष्टता की वर्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है जिससे वह पाठकों के भावों और विचारों में गति पैदा करता है । कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दरजे की होती है । जिस साहित्य से पाठकों की सुरुची न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, उनमें शक्ति और गति न पैदा हो, उनका सौन्दर्य-प्रेम न जाग्रत हो, जो उनमें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह पाठकों के लिए बेकार है । उसका साहित्य नाम से अभिहित करना भी बेकार है ।

साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है । अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता । दरअसल उसका लक्ष्य केवल महफ़िल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है । वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है । प्रेमचन्द ने फिर स्पष्ट बताया है कि जिन्हें धन वैभव प्यारा है, साहित्य-मन्दिर में उनके लिए स्थान नहीं है । यहाँ तो उन उपासकों की आवश्यकता है जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान

लिया हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो ।[124] कलाकार तो सचमुच समाज के झण्डा लेकर चलनेवाले सिपाही हैं और सादी जिन्दगी के साथ ऊँची निगाह उनके जीवन का लक्ष्य है । जो आदमी सच्चा कलाकार है, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता ।

जिस ज़माने में साहित्य का काम केवल मनबहलाव का सामान जुटाना, लोरियाँ गा-गाकर सुलाना, आँसू बहाकर जी हल्का करना था, तब साहित्यकार को क्रियान्वित होने की आवश्यकता न थी । वह एक दीवाना था जिसका गम दूसरे खाते थे । मगर प्रेमचन्द युग में साहित्य का माहौल ही बदल गया । प्रेमचन्द जैसे कि हमने देखा, साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते थे । उनकी दृष्टि में सामाजिक कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो । हिन्दी के अनेक आधुनिक साहित्यकारों कमलेश्वर से लेकर दामोदर सदन तक ने प्रतिबद्धता संबन्धी अपने तरोताज़ विचार प्रकट किये हैं ।

कामतानाथ की राय में समकालीन ज़िन्दगी से जोड़कर ही प्रतिबद्धता की चर्चा होनी चाहिए । इस अर्थ में कुछ लोग अप्रतिबद्ध है । उन्होंने जीवन के मूल्यों से अलग लेखकीय मूल्यों को ईजाद कर लिया है । लेखन और जीवन के मूल्यों का एकीकरण हर उस कलाकार के लिए आवश्यक है जो अपने दौर में (काल के साथ) जीवन्त आदमी की तरह शामिल है (जो अपने काल के प्रति प्रतिश्रुत है) । दामोदर सदन की राय में प्रतिबद्धता का अर्थ संकुचित सन्दर्भों में नहीं लिया जाना चाहिए । प्रतिबद्धता बदलती जीवन स्थितियों के साथ संलग्नता है । जीवन स्थितियों के बदलने के साथ प्रतिबद्धता में भी परिवर्तन होने की संभावना है ।[125] कमलेश्वर की मान्यता यह है कि संलग्नता या सम्बद्धता ही कलाकार को वाम बनाती है । मामूली आदमी से हमारे लेखन और जीवन की आकांक्षायें संबद्ध होने से हमारे लिए वाम निरन्तर जीवित रहने वाली एक सहज और अनिवार्य सच्चाई बनता है ।[126]

जिस क्लासिकल अर्थ में प्रतिबद्धता का प्रयोग होता आया है, उसे ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि रचना के केन्द्र में उस मनुष्य की उपस्थिति अनिवार्य है जिसे हम सही मायने में 'सामान्य जन' मानते हैं दलित, पीड़ित, शोषित तथा सर्वहारा । साहित्यकार की सर्जनात्मकता का सीधा सरोकर आदमी से है । मनुष्य की व्यथा को कहना, उसमें व्यापक सहभाग करना, धरती पर मनुष्य का जीवन कल्याणकार हो इसका उपक्रम करना, मनुष्य की अपनी नजर में गरिमा और प्रतिष्ठा बनी रहे इसके लिए मूल्यों की स्थापना और संवर्द्धन करना कलाकार का दायित्व है । प्रतिबद्ध

कलाकार मनुष्य के जीवन को बेहतर बनाने की चिन्ता में तल्लीन है। अतः बेहतर समाज तथा बेहतर उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना ही प्रतिबद्धता है।

गोविन्द मिश्र के शब्दों में मेरी प्रतिबद्धता मनुष्य से है तथा मनुष्य-जीवन से है। मेरी सर्जनात्मकता समर्पित होगी तो प्रकृति को ही, मानव-जाति को ही, उससे नीचे नहीं। रचना मेरा धर्म है; किन्तु मेरी रचना का धर्म? मेरी रचना का धर्म मनोरंजन नहीं है। मैंने लोगों का मनोरंजन अपने जीवन का लक्ष्य नहीं चुना था। मनोरंजन करना चाहता तो लिखने के स्थान पर कुछ और करता जादू सीखता, अभिनय करता या कुछ भी और; किन्तु रचना-कर्म मैंने मनोरंजन के लिए नहीं चुना था। धन-प्राप्ति भी मेरी रचना का धर्म नहीं हो सकता। आजीविका के लिए मैंने नौकरी की है। धनोपार्जन के लिए ही करता तो कोई व्यापार करता रचना कर्म उसके लिए नहीं है। मेरी रचना का धर्म तो एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ना है। मेरी रचना प्रतिबद्ध है; किन्तु प्रतिबद्धता किसके प्रति? रचना यदि प्रतिबद्ध हो सकती है, तो केवल मानवीय संवेदना और मानवीय विवेक के प्रति। वह मानव के भविष्य से निराश नहीं है। रचना व्यक्तिगत मामला नहीं है। वह न किसी देश में बंदी है, न काल में। रचना की आयु तय नहीं है वह किसी सीमित परिवार, समाज या संप्रदाय मात्र के लिए नहीं है। हज़ारों वर्ष पूर्व रचे गए शब्द असंख्य पीढ़ियों से होते हुए संख्यातीत शब्दों में से छन-छन कर आज हम तक पहुँच रहे हैं और आगे की पीढ़ियों तक पहुँचेंगे। रचना दायित्वहीन नहीं हो सकती है।

प्रेमशंकर की मान्यता यह है कि भारतीय सामन्ती समाज में कला-संसार दो विरोधी दिशाओं की ओर गया एक ओर देवत्व को केन्द्र में रखकर, मूर्तियाँ ढली गयी, चित्र बनाए गए देवों का मानुषीकरण किया गया, दूसरी ओर सामन्तों की इच्छापूर्ति के लिए देवी देवताओं को नायिका-नायक रूप दिया गया। दोनों की रचनात्मकता में अन्तर है। एक में सामाजीकरण है, अपनी सीमाओं में नही, पर दूसरा दरबारीकृत है अभिजन समाज की फरमायश की पूर्ति करता। रचनात्मकता अथवा सृजनात्मकता का अर्थ है मनुष्य की केन्द्रीयता, गहरी मूल्य-चिन्ता और मानव की ऊर्ध्वमुखी सामाजिक यात्रा में निरन्तर सहायता। रचना का एक धर्म यह भी कि मनुष्य साधारण पशु होने से बचे कैसे? बेहतर इन्सान किस प्रकार बने, सबका सुख कैसे हो, पृथ्वी पर ही कल्पित स्वर्ग की अवतारणा कैसे सम्भव, कैसे हो सकती है, आदि। यदि रचना का बृहत्तर सामाजिक सांस्कृतिक दायित्व नहीं है तो फिर अकादमिक बहसें हमें किसी सही निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा सकेंगी।[127] रचना विलास अथवा चमत्कार नहीं है, वह दायित्वपूर्ण

मूल्यचिन्ता है जो कलानुशासन से बँधकर और भी ऊर्जावान् बनती है । सच्चा साहित्य मनुष्य को कर्मठ बना देता है । उज्जवल भविष्य के निर्माण में मनुष्य को सुसज्जित बनाता है । सामाजिक रूपान्तरण में कवि की भूमिका होनी चाहिए । वे पलायन नहीं कर सकते हैं । सामाजिक-सांस्कृतिक रूपान्तरण में कला और रचना संसार की अहम भूमिका है ।

समीक्षक डॉ. शिवकुमार मिश्र के मत में " प्रत्येकरचनाकार कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में प्रतिबद्ध है । इसलिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि आप प्रतिबद्ध हैं, प्रतिबद्धता किससे, किस स्तर पर, संवेदना की किन भूमियों पर है, समस्या या प्रश्न का सबसे महत्वपूर्ण तथा ज्वलन्त अंश यही है । लेखक का वास्तविक कमिटमेन्ट किसी विचारधारा से न होकर अपने से, अपने समय से और समय के जीवन से होता है । मनुष्य कटा हुआ व्यक्ति नहीं रह सकता ; उसे न चाहते हुए भी समूह-जीवन में फँसना पड़ता है । मनुष्य परिस्थितियों के भीतर निरंतर अपनी स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्व के साथ संघर्षरत है प्रतिश्रुत है । वे अलबेर कामू को उद्धृत करते हुए बताते हैं कि हम में से प्रत्येक के भीतर जेलखाने हैं, अपराध भाव हैं, हिंसात्मक तत्व हैं, किन्तु इन्हें समाज में उगलना हमारा कर्तव्य नहीं है । हमारा कर्तव्य है, इनके विरुद्ध अपने भीतर और दूसरों के भीतर निरन्तर जूझते रहना । इसी दृष्टि से लेखक का पेशा एक गौरवपूर्ण पेशा है, क्योंकि वह खुद इस पूरा करके अपने कर्तव्य के प्रति कृतज्ञ होता है ।[28]

परिवेश और ज़िन्दगी में कृतिकार किसी-न-किसी स्तर पर जूझते हैं और उसमें से वे नए अन्तर्विरोध की नई अनुगूँजें की तलाश करते हैं । आदमी और उसके परिवेश को व्यक्त करने के लिए कृतिकार को समाज के अन्दर तक जाकर उन्हें समझना होगा । उन्हें वहां की नंगी सच्चाई को देखा-परखना होगा । उन्हें उन लोगों की जुबान सीखनी होगी । इन्सानी उथल-पुथल में शरीक़ होना ही कवि-कर्म है । कला और साहित्य को निश्चित रूप से आम जनता से सम्बद्ध रहना है, उसे पूरी तरह से सड़कों की ज़िन्दगी से सरोकर रखना है और सबसे अधिक प्रकृति से सम्बन्ध रहना है । वास्तविक जीवन का सम्पूर्ण, यथार्थ और मूर्तचित्र अंकित करने के लिए साहित्यकार को यह आवश्यक हैं कि वह जीवन के साथ गहरा तथा सक्रिय सम्पर्क स्थापित करे, केवल उसका तटस्थ एवं निरपेक्ष द्रष्टा न बना रहे । प्रतिबद्ध कवि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की गहरी पहचान रखते हैं । वह समसामयिक यथार्थ, जीवन-मूल्य, युगीन राजनीति एवं तज्जन्य परिणतियों का साक्षात्कार करते हैं । वह अपनी पहचान एवं साक्षात्कार का कविता में सर्जनात्मक उपयोग करते हैं । इसके लिए कठोर आत्मसंघर्ष करना होता है । समाज चेतन

कवि के हर प्रयास का केन्द्रबिन्दु मानवीयता की भावना ही है, यही उसे नितान्त वैयक्तिक अनुभव के दण्डकारण्य से निकालकर, जीते-जागते जन समाज के बीच ले आती है । अर्थात प्रतिबद्धता अपने समाज के कार्यों और उद्देश्यों के साथ अपने को जोड़ना है । ज़्यादा से ज़्यादा आदमियों की लड़ाई में शामिल होना प्रतिबद्धता है । वे जानते हैं कि संघर्ष में ही गति है । प्रकृति भी संघर्ष के मुताबिक गतिशील है । वर्तमान लेखक को सही आदमी की लड़ाई में अवश्य शरीक़ होना है ।

गजानन माधव मुक्तिबोध रचना-प्रक्रिया के सांस्कृतिक महत्व पर बहुत बल देते हैं । उन्होंने इस बात पर विभिन्न लेखों में ज़ोर दिया । उन्होंने इस विषय का प्रतिपादन 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध' पूरा एक अलग निबन्ध 'काव्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया' लिखकर किया है । सांस्कृतिक प्रक्रिया मानने की बात के मूल में मुक्तिबोध की यह केन्द्रीय धारणा काम कर रही है कि रचना का सीधा सम्बन्ध जीवन, समाज और युग से है, उसकी मानसिक निष्ठा का परिचालन भी इसी से होता है । उन्होंने लिखा कोई भी दृष्टिकोण, यानी कोई भी साहित्यिक वाद तभी तक ठीक है जब तक वह जीवन की चेतना से परिपूर्ण है ।"[129]

मुक्तिबोध काव्य-रचना को न तो भावुक उच्छ्वास मात्र मानते हैं और न कल्पना का विस्तार मात्र, बल्कि वे रचनाकार के सतत् प्रवाही जीवन से जुड़े रहने, उसका अनुभव करने और फिर उसे मन के गहरे में अपने संवेदन का एक भाग बना लेने की अपेक्षा करते हैं । कवि केवल रचना-प्रक्रिया में पड़कर ही कवि नहीं होता, वरन् उसे वास्तविक जीवन में अपनी आत्मसमृद्धि को प्राप्त करना पड़ता है और मनुष्यता के प्रधान लक्ष्यों से एकाकार होने की क्षमता को विकसित करते रहना पड़ता है । मुक्तिबोध ने अनेक स्थलों पर स्पष्ट किया है कि कविता का सम्बन्ध मूलतः जीवन से है । जीवन और कविता का सहज सम्बन्ध बना रहता है ।

कविता मुक्तिबोध के लिए हल्के-फुल्के मनोरंजन या विनोद का साधन नहीं है । वे कविता को मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष से जोड़ना जरूरी मानते हैं । कवि कर्म की सफलता वे तभी मानते हैं जबकि काव्य-रचना के द्वारा चेतना का निरन्तर प्रसार और अभिव्यक्ति का विस्तार हो सके या होता रहे । मुक्तिबोध हमेशा मनुष्य सत्य को उसकी मूल्य चेतना और समाज में प्रचलित प्रगतिशील तत्वों को प्रश्रय देना चाहते हैं । वे देश के करोड़ों मेहनतकश जनता के संघर्ष में सहभागी होना चाहते हैं । निष्कर्षतः हम बता सकते हैं कि गजानन माधव मुक्तिबोध जनवादी क्रान्तिकारी प्रतिबद्ध कवि हैं । उनकी प्रतिबद्धता देश के करोड़ों दलित पीड़ित जनता के प्रति हैं । उनकी मुक्ति के लिए कविता को तेज औजार मानते हुए मुक्तिबोध ने कविता की है ।

निष्कर्ष

** ज्याँ पॉल सार्त्र ने (प्रतिबद्धता) को साहित्यिक भूमिका देने का स्तुत्य कार्य किया है ।

** सार्त्र की दृष्टि में प्रतिबद्धता सिर्फ एक शब्द नहीं है कार्रवाई है ।

** प्रतिबद्धता का अर्थ संलग्नता है ।

** संघर्ष जारी रहने के कारण मानव की प्रगति अवरुद्ध नहीं होती ।

** संघर्ष मनुष्य में दायित्व की भावना जगाता है ।

** समूह सर्जकों के बिना जागरूक नहीं हो सकता है ।

** कार्लमार्क्स ने प्रतिबद्धता शब्द कहीं भी प्रयुक्त नहीं किया । फिर भी मार्क्स के चिन्तन में प्रतिबद्धता का निकष छिपा हुआ है ।

** आर्थिक आधार समाज रूपी भवन की नींव है । कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, संस्कृति आदि सुपरिगठन है । 'आधार' बदलने से 'सुपरिगठन' बदल जाता है ।

** मानव-समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है ।

** मार्क्सवाद परिवर्तन पर बल देता है ।

** बूर्ज्वा समाज बौद्धिक उत्पादन के काव्य तथा कला जैसे पहलुओं के प्रतिकूल हैं ।

** वर्ग-मुक्त समाज में श्रमविभाजनग्रस्तता न रहेगी और उस समाज में प्रत्येक व्यक्ति कर्मी भी होगा और कलाकार भी ।

** आत्मनिर्वासन के उन्मूलन के बिना न तो मनुष्य की स्वतन्त्रता, सुसंस्कृत मानवीय समाज की रचना संभव नहीं ।

** निजी सम्पत्ति और वर्गपरक संरचना आत्मनिर्वासन के मूलाधार हैं ।

** प्रत्येक समाज का इतिहास वर्ग-विरोधों के इतिहास का इतिहास है ।

** शोषितों के जागरण के बिना क्रान्ति सफल नहीं होगी ।

** कवि को मात्र वर्ग-संघर्ष को ही नहीं समाज की सभी ज्वलन्त समस्याओं का विश्लेषण एवं विवेचन करके जनता को वर्ग-युद्ध के लिए तैयार करना चाहिए ।

** मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार कवि और कलाकार को जनक्रान्ति से जुड़ा होना चाहिए । उन्हें ऐतिहासिक भौतिकवाद के नज़रिए से जीवन के ऐतिहासिक विकास का दर्शन करना चाहिए ।

** कलाकार को नए समाज के निर्माण के लिए कटिबद्ध होना चाहिए और उन्हें समझौतावादी, तथा संशोधनवादी विचारधाराओं से कभी मेल नहीं करना चाहिए ।

** मार्क्सवादी सौन्दर्य दर्शन साहित्य और कला को विशाल जनता के लिए मानता है । यह दर्शन संशोधनवादी कम्यूनिस्ट विचारधारा का रहस्योद्घाटन करके वर्ग-संघर्ष तथा सांस्कृतिक क्रान्ति के विचारों को मनुष्यता की निधि बनाता है ।

** लेनिन ने मार्क्स के कलाचिन्तन को रूस की समाजवादी क्रान्ति के सन्दर्भ में नूतन रूप दिया है ।

** लेनिन साहित्य और कला के अन्तर्गत जन-सामान्य के हितों को सर्वोपरि महत्व देते थे ।

** लेनिन साहित्य और दल के सहयोग सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए भी साहित्य को अनावश्यक दलीय अंकुशों से मुक्त रखने पर बल देते थे

** सामाजिक विकास में साहित्य के उपयोग को देखकर लेनिन श्रमिकों के पक्षधर साहित्य की अधिकाधिक प्रगति चाहते हैं ।

** पूँजीवाद की ऊँची मंजिल है साम्राज्यवाद । ये दोनों सर्वहारा के शत्रु हैं ।

** सही नेतृत्व श्रमिकों के बीच से होना अनिवार्य है ।

** माओ-त्से-तुंग ने स्पष्ट किया है कि कलाकारों की पक्षधरता सर्वहारा वर्ग तथा आम जनता के प्रति होनी चाहिए ।

** कठ्मुल्लावादी 'मार्क्सवाद' मार्क्सवाद नहीं होता, वह मार्क्सवाद-विरोधी होता है ।

** वही साहित्यकार सच्चा साहित्यकार होता है जो वर्ग-संघर्ष को बुनियादी स्तर पर स्वीकार कर लेता है ।

** सर्वहारा वर्ग का कला-साहित्य समूचे सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्य का एक अंग है ।

** मनुष्य के वर्तमान और भविष्य को बदलने और गठने में क्रान्तिकारी साहित्य की भूमिका है ।

** दर्शन, कला और साहित्य उत्पादन और वर्ग-संघर्ष पर निर्भर है ।

** मार्क्सवाद विश्व को बदलने का दर्शन है । अभी तक जितने दर्शन हुए वे सब संसार की व्याख्या करने में लगे हुए हैं । लेकिन मार्क्सवादी दर्शन की खासियत यह है कि उसने संसार को बदलने में दृष्टि रखी है ।

** मार्क्सवाद कदापि अप्रासंगिक और त्याज्य नहीं है ।

** वर्तमान बूर्ज़्वा समाज में सर्वत्र, मानसिकता और व्यवहार में, शिक्षा कला और साहित्य में, सब जगह सामंती, पूँजीवादी संस्कृति की सम्प्रभुता व्याप्त है ।

** माओ-त्से-तुंग का साहित्य एवं कला सम्बन्धी चिन्तन समग्र है । वह मूलतः राजनीतिक दृष्टि की प्रमुखता, अनिवार्यता तथा निर्णायकता पर बल देते हैं और यों मार्क्सवादी कला-साहित्य चिन्तन के दायरे को विस्तृत भी करते हैं ।

** प्लेहनाव ने कला और सामाजिक जीवन में कलाकार की सामाजिक प्रतिबद्धता पर ज़ोर दिया है ।

** कलाकार और साहित्यकार की जिम्मेदारी है कि वह सामाजिक व्यवस्था के सुधार तथा मानवीय चेतना के विकास में अनिवार्यतः सक्रिय हो ।

** कॉडवेल ने कला का पूर्णतः मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार किया और मनुष्य के जीवन में कला की संपृक्तता की खोज की ।

** कॉडवेल ने स्पष्ट बताया है कि कलाकार के लिए आवश्यक है कि वह आगे बढ़कर सर्वहारा वर्ग का, उसके क्रान्तिकारी अभियान में नेतृत्व करें ।

** गाक्सिम गोर्की के अनुसार साहित्यकार का कार्य केवल बदलते हुए मनुष्य की सूचना भर देना नहीं है, उसका दायित्व है कि वह उन संवेगात्मक प्रक्रियाओं को चित्रित करे जो मनुष्य के परिवर्तन को सामने लाती हैं ।

** चीन के लूशन ने स्पष्ट कहा है कि दुनिया भर के कला-साहित्य को प्रगतिशील बनाने में सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी साहित्यका सक्रिय योगदान रहा है ।

** इटली के अन्टोनियो ग्रामशी ने सर्वहारा सांस्कृतिक सम्प्रभुता को सर्वाधिक महत्व दिया ।

** मार्कूस, एडर्नो, हार्खिमर, गोल्डमान, फिशर, लूकाच, अल्थूसर, टेरी ईगेल्अन आदि नवमार्क्सवादी चिन्तकों ने आर्थिक आधार से बढ़कर सांस्कृतिक सुपरिगठन को ज़्यादातर महत्व दिया है ।

** प्रेमचन्द, कामतानाथ, कमलेश्वर, गोविन्द मिश्र, प्रेमशंकर, शिवकुमार मिश्र, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि सृजनकार कविता को मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष से जोड़ना जरूरी मानते हैं ।

** 'commitment is an act, not a word.

ii

नववामपंथी कविता का समारंभ

कभी भी रचना आवर्तित नहीं होती है । परिवेश तथा परिवेश में आन्दोलित विचारधाराएँ रचना को परिवर्तित करती रहती हैं । कोई भी नया साहित्यिक आन्दोलन उन विशेष देशकालगत परिस्थितियों से पैदा होता है जिन्हें हम सामाजिक विकास की एक महत्वपूर्ण श्रृंखला कह सकते हैं ।[1] 1960 तक आते आते देश की बदली हुई परिस्थितियों ने कुछ युवाकवियों को एक नवीन कविता-प्रयोग की जरूरत का अहसास करा दिया था । फलतः कविता परम्परागत लीक से हटकर चलने लगी । 'साठोत्तरी कविता' में भी आपात्काल के परिवेश के जकड़न की वजह अनेक नींवाधार परिवर्तन हुए थे । याने कविता फिर करवटें बदलने लगी । और फिर सभी पूर्ववर्ती काव्यान्दोलनों जैसे नकेन कविता, अकविता, भूखी पीढ़ी कविता आदि की प्रतिक्रिया के रूप में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र के थपेडें खाकर नववामपंथी याने जनवादी कविता की शुरूआत हुई । इस कविता में अपने समय की जीवन्त परिस्थितियों की तीव्रप्रतिक्रिया की शाब्दिक अभिव्यक्ति हुई है । अतः नववामपंथी कविता की पृष्ठभूमि का सही अध्ययन करने के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन अपेक्षित है ।

1. **सामाजिक परिस्थितिः-** साहित्य और समाज का द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध है । साहित्य समाज से अपनी विषयवस्तु हासिल करता है, साथ ही सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका भी अदा करता है । क्रिस्टफर कॉडवल ने कला और समाज के आपसी सम्बन्ध को यों स्पष्ट किया है: "कला उस मोती के समान है जो समाज रूपी सीपी से उत्पन्न होती है ।"[2] अतः कला समाज प्रदत्त है । दरअसल कला और समाज का बहुत गहरा और अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है । इसलिए कला और साहित्य का गहनतम अध्ययन सामाजिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में होना अपेक्षित है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में गरीबी और बेरोजगारी तीव्र गति से बढ़ने लगीं । दिशाहीन शासन की स्वेच्छाचारिता के फलस्वरूप जनजीवन बुरी तरह सड़ने लगा । देश में पूँजीवादी व्यवस्था से उद्भूत संकट काफी गहरा हो गया । कृषिप्रधान देश होते हुए भी अमेरिका का सड़ा हुआ गेहूँ कीड़ों के साथ जनता को खिलाया गया । सामाजिक जिन्दगी असमानताओं का पिटारा बन गयी । सत्ता हस्तान्तरण के 43 साल बीत जाने के बाद भी भूख, बेकारी, आर्थिक उत्पीडन, भाषा, युद्ध, मन्दिरमस्जिद, मण्डल आदि भारतीय जनता की प्रमुख समस्याएँ हैं ।[3]

समाज के भीतर नीचे से लेकर ऊपर तक, गाँव से लेकर नगर तक, विद्यालय से लेकर सचिवालयों तक, मजदूर संघ से लेकर लोकसभा तक इसकी बहस आज जारी है ।

अखबार खोलने पर कोई दिन शायद ही ऐसा मिलेगा जब कि पुलिस द्वारा हत्या की खबर न हो । पुलिस की हर रपट में यही लिखा रहता है कि वह आत्मरक्षा के लिए गोली चलाती है । दमनचक्र और अधिक तेज हुआ है। इसके साथ-साथ अपना अस्तित्व तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए शासकवर्ग हत्याकांड का त्योहार मनाता है । इसी बुरी हालत में भी भारत के असंख्य मूर्ख लोग सिर झुकाकर राममन्दिर के निर्माण के लिए ईंट जुटाते हैं ।

आज भारत में आम आदमी की जिन्दगी खतरे में है । शासकों की हिंसा, क्रमशः नंगी और तीव्र होती जा रही है । सामाजिक अस्थिरता स्वाभाविक तौर पर ही आदमी के सोचविचार को प्रभावित करती है । महायुद्ध के फलस्वरूप मनुष्य भय, अनास्था और आशंका से कभी विमुक्त न रहे थे । महायुद्ध साम्राज्य वादी शासकों की देन है । अविकसित देश इसका शिकार हो जाते हैं । आज मनुष्य आणविक विस्फोट, न्यूक्लियर और रासायनिक संहारक शक्तियों के घेराव में है । उसमें संत्रास, कुण्ठा, निराशा आदि भावनायें स्वतः जुड़ी हैं । आज की युवापीढ़ी ने अपने चारों ओर भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, महंगाई, अंधकारपूर्ण भविष्य, राजनीतिज्ञों की अनैतिकता, आदर्शहीनता, स्वार्थपरता, भई-भतीजावाद, जातिवाद, जीर्ण शिक्षा-प्रणाली आदि जीवन की सारी विद्रुपताएँ और कुरूपतायें देखीं । उसने जीवन का खण्डित रूप महसूस किया । उसके सामने स्वतन्त्रता का भ्रष्ट रूप मूर्त हो गया था । उसने अपने जीवन में भटकाव, अनिश्चितता और अंधकारपूर्ण भविष्य का अनुभव किया ।

स्वतन्त्रता के पूर्व भारतवासी जिस समाजवादी देश की कल्पना करते थे, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के 43 वर्ष बीत जाने के बाद भी कल्पना ही रह गयी है । नेताओं ने जो आदर्शवादी चित्र जनता के सामने पेश किया था, यथार्थ उससे कहीं भिन्न रहा । आज भारतीय समाज की यह असंगत स्थिति हो गयी है कि अस्सी करोड़ से भी अधिक जनता की संपत्ति का अधिकारी मुट्ठी भर अमीर लोग हैं । ये अमीर पल बीतते-बीतते अधिक धन एकत्रित करते हैं । लाखों गरीब गरीबी की तह की ओर घसीटते जा रहे हैं ।

आज यहाँ जिन्दा रहना बिल्कुल खतरनाक काम हो गया है । चीज़ों की कीमतें बढ़ रही हैं, टेक्स भी बढ़ रहे हैं । इनके बीच दबी आम जनता की जिन्दगी त्रासद हो गयी है । लेकिन दूसरी ओर बड़े बड़े उद्योगपतियों, भूमिपतियों, और व्यापारी वर्गों के पास पूंजी का केन्द्रीकरण हुआ है और ये राजनीति की गतिविधियों का निर्णायक एवं नियामक शक्ति

बन गये हैं । आर्थिक वैषम्य और बेरोज़गारी की वजह आम जनता कुंठा एवं निराशा का शिकार बन गयी हैं । वे उदास, संत्रस्त एवं बेचैन हैं ।

आज भारत में सामाजिक ज़िन्दगी इतनी गंदी और विषैली हो गयी है कि वह ढोंग और ढकोसला के लिए उर्वर बन पड़ी है । समाज की राहें हिपोक्रसी की धुंध से गुमराह हो गयी हैं । सारी संस्थाएँ बेमानी हो गयी हैं । आधुनिक बूर्ज़्वा परिवेश में आदमी की यही मनस्थिति हो गयी है कि औरत केवल एक जिस्म है जिसे हमेशा भोगा जा सकता है । हर बाज़ार 'कन्स्यूमरिज़्म' का अड्डा बन गया है । आज भारत गुण्डागर्दी का केन्द्र है । टी.वी. में लडकियों के नंगे शरीर का अनावरण विज्ञापन के जरिये होता है । इस यन्त्रवत् बूर्ज़्वा समाज में हर रोज़ लडकियाँ लापता हैं । शराब व अन्य नशीली चीज़ें, एक उत्तेजक 'ब्लू फिल्म', अपनी बीवी की निर्विकार नग्नता आदि आज मनोरंजन के रंगीन साधन हैं । जिसके पास पैसे है वह हर दिन एक नयी लड़की को अपने बिस्तर पर बुलाता है । इसी अवसर पर भारत का गरीब भूख मिटाने के लिए उसकी सारी शक्ति बरबाद करता है । इस दारूण स्थिति की आवाज़ राम मनोहर लोहिया ने यों दी है: "भूख की आग कभी सुबह और कभी शाम करोड़ों को झुलसा रही है । कहीं कोई माँ अपने बच्चों को ठीक कपड़ा न पहनाते हुए आँसू बहा रही हैं, कहीं कोई बाप अपने बच्चे को दवा न दे सकने या ठीक पढ़ा न सकने के कारण माथा ठोंक रहा है । ये दुखी हैं ।[4] उच्च वर्ग का शिकार बेशुमार जनता दिनों दिन अभिशाप के गर्त में याने रसातल में गिरने लगी हैं । और इन अमीरों के मनोरंजन के साधन हैं शराब, खुली टांगें और उभरती छातियों से भरपुर कोई उत्तेजक फिल्म और अपनी औरत की निर्विकार नग्नता ।[5] दरअसल सामाजिक जीवन में दरारें पड़ गयी हैं । हमारी 'महान' संस्कृति ज़लील एव ढोंग हो गयी हैं ।

अपमान बोध भारतीय जन-जीवन का, भारतीय मानस का या यों कहे हमारे अस्तित्व का अनिवार्य अंग-सा हो गया है । सड़क पर चलते वक्त, ऑफीस में काम करते वक्त या हर क्षण इस अपमान-बोध से हम पीड़ित हैं । क्योंकि हम हर पल व्यवस्था से प्रताड़ित हैं । यह अपमानबोध हममें हीनता भाव जगाता है । व्यवस्था इतनी क्रूर है कि आदमी अपमानित होने के साथ दमन का शिकार भी होता है । आधुनिक मनुष्य वैयक्तिक रूप में अपमानित और सामूहिक रूप में दमित है । यह वर्तमान सामाजिक जीवन की सच्चाई है ।

2. **आर्थिक परिस्थिति:-** उपर्युक्त विवेचित सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं और विसंगतियों के मूलभूत कारणों को हमें मौजूदा आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्विरोधों में ही ढूँढ़ना चाहिए । क्योंकि सामाजिक जीवन

को रूपायित करनेवाले नियामक तत्व तत्कालीन आर्थिक-व्यवस्था में ही अन्तर्निहित है ।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद योजनाबद्ध आर्थिक विकास की रूपरेखाएँ बनायी गयी थीं । अनेक पंचवर्षीय योजनायें अमल करने की कोशिश की गई लेकिन इन योजनाओ के कार्यकर्ता करोड़ों रूपए वेतन तथा भत्ते के रूप में ले गए । योजनाएँ कागज़ पर सीमित रहीं । सरकारी फाइलों पर खेती होने लगी । वहाँ फसलें उगने लगीं । पिछले 43 वर्षों की राजनीति की नपुंसकता के कारण देश की आर्थिक समस्याएँ सुलझने के बदले काफ़ी उलझ गयी हैं । आज इस देश का काला धन 72,000 करोड़ है । । लाख 63,000 करोड़ रूपए इस गरीब देश को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि को देना है ।[6] 21वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते, 40 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे पहुँच जाएँगे ।[7] याने गरीबी दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है । आर्थिक विषमता की व्याप्ति तथा, हररोज़ बढ़ती कीमतों की वजह से 'निम्नवर्ग' ही नहीं, 'मध्यवर्ग' भी पिस रहा है । पूरा आर्थिक ढ़ाँचा टूट चुका है । लोग कई प्रकार के अभावों से ग्रस्त रहे हैं ।

भारत आर्थिक दृष्टि से आज भी परतन्त्र है । साम्राज्यवादी देशों से वित्तीय सहायता मिलती है, ऋण मिलता है, मशीनें मिलती हैं और साथ ही तकनीकी सहयोग भी मिलता है । न्यूक्लीयर ब्लेकमेल और आटोमेशन ने सभी अविकसित देशों को अमरीकी साम्राज्यवाद के अंगूठे के नीचे कर दिया है ।[8] चुनाव के दिनों में नेतालोग ऐलान करते हैं कि देश को ऋण-जाल से निकालने तथा आर्थिक आज़ादी बरकरार रखने के लिए कठोर आर्थिक नियन्त्रण आवश्यक है । लेकिन चुनाव जीत जाने के बाद नेता लोग चाहे जनतादल के या कांग्रेस के हो विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि से वित्तीय सहायता के लिए भीख माँगते हैं, हाथ पसारते हैं । वे हमेशा घाटा-बजट लोकसभा में पेश करते हैं । ऋणजाल में फंसे हुए तथा आर्थिक रूप से गुलाम देशों के नेताओं को विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रानिधि के संचालक नियन्त्रण में रखते हैं । यह सभी जानते हैं । राजीव सरकार के वित्तमन्त्री के तौर पर 1985 में सरमाएदारों के पक्ष में जो बजट पेश किया गया था, आठवीं पंचवर्षीय योजना के बजट के तौर पर मधुदण्डवते ने बिना किसी बदलाव के उसे ही स्वीकार किया ।[9] राष्ट्रीय मोर्चा सरकार सत्ता में आने के तुरन्त बाद सुखमय चक्रवर्ती की अध्यक्षता में आर्थिक सलाहकार समिति द्वारा मौजूदा आर्थिक परिस्थिति पर तैयार की गयी रपट, जो 16-28 मार्च '90 की 'योजना' में प्रकाशित हुई तथा लोकसभा में 'आर्थिक आलोचना' पेश की गयी, उसमें स्वीकारोक्ति के तर्ज पर यह बार-बार दुहराया गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था गहरे संकट के दौर से गुज़र रही है ।[10] उपरोक्त रपट में दिखाया गया है कि खेतिहर तथा औद्योगिक दोनों ही सेक्टर में लगभग

पूरी तरह गतिरोध आ गया है । बड़े पैमाने पर अन्दरूनी तथा बाहरी ऋण देश को ऋण-जाल में घसीट रहा है । बेकारी, मुद्रास्फीति तथा कालाधन आसमान को छू रहा है । मगर बजट प्रस्ताव प्रमाणित करता है कि ये तमाम 'स्वीकृतियाँ' महज जनता को धोखा देने के लिए थीं । फिलहाल राजीव गाँधी की हत्या के बाद जो नयी कांग्रेस सरकार बनी, उसकी प्रथम महान् नीति बड़ी मात्रा में (करीब इक्कीस प्रतिशत तक) रुपए के मूल्य का अवमूल्यन की रही जिसका असर आनेवाले दिनों में आम जनता पर पड़नेवाला ही हैं । नई सरकार बनने के पहले अंतरिम चन्द्रशेखर सरकार ने 20 लाख टन सोना कर्ज के व्याज चुकाने के लिए गिरवी भी रखा था । कतिपय समाचार पत्र यह आरोप भी लगाते हैं कि उन्होंने अंतराष्ट्रीय बाज़ार में बिक दिया है । दरअसल आज बजट का मतलब व्यापक जनसाधारण से विभिन्न करों के ज़रिए जुटाए गए तथा घाटे के बजट के एक बहुत बड़ी रकम निहित स्वार्थ के हाथों सौंप देने की स्वीकृति पाना है । उसके बाद जो बचता है वह रोज़मर्रे का प्रशासनिक खर्च व तथाकथित विकास के काम में लगता है । हमारे बजट के आधे से अधिक कृषि के लिए है । जिससे मुख्य रूप से धनी किसानों को ही फायदा होता है । 10,000 रुपए तक का कृषि ऋण माफ़ कर देने का कानून गरीब तबकों की मदद के लिए नहीं था । पहली बात यह है कि यह माफी समवाय से ली गयी ऋण की माफी नहीं है । यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि गरीब किसानों का व्यापक हिस्सा समवाय के ऋण से जकड़े हुए हैं । दूसरी बात यह है, जिसका उधार चुकाने का वक्त आ गया है, वह इस छूट में नहीं आते । यह मुख्य रूप से इसलिए किया गया कि गरीब लोगों को माफी न मिल सके । इसके साथ ही धनी किसान तथा बड़े उद्योगपतियों व व्यापारियों को खुश करने की गुंजाइश रखी गयी है व सारा आर्थिक बोझ गरीब जनता के कन्धे पर डाल दिया गया है ।

उपरोक्त अमानवीय आर्थिक दुर्दशा से छुटकारा पाने के लिए नयी पीढ़ी बेबस है । क्योंकि वह भी 'चादर की लम्बाई कम होने के कारण घुटने सिकोड़कर सोने के लिए मजबूर है ।'' आर्थिक स्थिति की मार की ठोस सच्चाइयों ने उसको यथार्थ की सही ज़मीन पर ला खड़ा किया है । यह पीढ़ी इस आर्थिक व्यवस्था से इस कदर नाराज़ है कि स्वीकृत नियमों और कानूनों को चकनाचूर करने के लिए विवश है । तरुण पीढ़ी अर्थ-प्रधान समाज-व्यवस्था के कारण यन्त्रों की जड़ संस्कृति में जड़ता, निराशा, अनास्था आदि मानसिक व्यथाओं के कारण अपना सन्तुलन खो रही है । एक तरफ़ वैभव और विलास का आड़म्बर है दूसरी तरफ़ अन्दर से खोखलापन अधिक उजागर हो रहा है । आजीविका के लिए व्यक्ति

भटक रहा है । धनाभाव के कारण अशान्ति, संघर्ष, बेबसी एवं दूषण बढ़ते जा रहे हैं । जिनके हाथ में उद्योग, व्यापार और पद आ गए हैं वे अधिक धनिक बनने के लिए हर तरह से शोषण करते जा रहे हैं ।

नैतिकता धनान्धता के कारण मात्र शाब्दिक रह गई है । धन को जीवन में इतना अधिक महत्व दे दिया है कि मानवतावादी तत्व बुरी तरह दबते जा रहे हैं । वैभव का बाह्याडम्बर भी इसका दुष्परिणाम है । अर्थलोलुपता, आर्थिक असुरक्षा, शोषण, मूल्य-वृद्धि, जीवननिर्वाह की चिन्ता आदि वर्तमान की नियति बनती जा रही है ।[12]

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की वजह विभिन्न वर्गों के बीच की आर्थिक खाई विस्तृत होती जा रही है । किसानों की आर्थिक विपन्नता इस सीमा तक बढ़ गयी है कि उन्हें पेट भर भोजन मिलना भी असम्भव हो गया है । कृषि प्रधान होने के कारण किसान भारतीय जीवन की आत्मा है । अतः किसानों की दुर्दशा भारत की दुर्दशा ही है । यहाँ दो सभ्यताएँ विकसित हो गयी हैं-गांव की और शहर की । शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान बन गये । गांव गरीब श्रमिकों का कर्मस्थल माने गए । पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के परिणामस्वरूप शहरों का विकास हो रहा है, गांव पिछड़ते रहे । गाँव के पिछड़ने से किसानों के विकास की दिशाएँ अवरुद्ध हो गयीं । परम्परागत रूप से आर्थिक क्षेत्र में कृषि का महत्व रहा है । अनेक सालों से होकर लोग कृषि को दूसरे कार्य-व्यापारों की तुलना में श्रेष्ठ मानते हैं । लेकिन यन्त्र-युग के बढ़ते प्रभाव और शहरी सभ्यता के अनिवार्य विस्तार के कारण किसानों की आर्थिक दुर्दशा बढ़ गयी है ।

भारत विश्व के गरीब देशों में प्रमुख है । भारत की गरीबी के प्रमुख कारणों में एक विदेशियों द्वारा बरसों से लगातार चलनेवाला शोषण है । अंग्रेजों द्वारा प्रत्यक्ष रूप में तीन सौ वर्षों तक यह शोषण जारी रहा था । फिर स्वतन्त्रता नाम से अभिहित होनेवाले सत्ता-हस्तान्तरण के बाद यह शोषण अप्रत्यक्ष रूप में आज भी चल रहा है । गरीबी का दूसरा प्रमुख कारण समाजवाद का नकाब डालकर, पूँजीवादी खूबियों को अपने में समेटती चलती यहाँ की मिश्रित आर्थिक व्यवस्था है । इसके अलावा बढ़ते आयात के कारण देश लगातार आर्थिक गुलामी के शिकंजों में जकड़ता जा रहा है । इस आर्थिक गुलामी के शिकंजों के बढते दबाव में सारे देशवासी सिर कटे मुर्ग की तरह फड़क रहे हैं

3. **राजनीतिक परिस्थिति:-** 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हुआ । 26 जनवरी, 1950 को नए संविधान के साथ भारतीय गणराज्य की स्थापना हुई थी । 1952 में पहला आम चुनाव हुआ था जिसमें कांग्रेस दल की बहुमत से विजय हुई थी । 1957 में दूसरा आम चुनाव हुआ

था। सत्ता कांग्रेस के अधीन में ही रही थी। देश के नेताओं, अफ्सरों और ठेकेदारों को सरकारी संपत्ति मनमाने ढंग से लूटने का मौका मिला था। अयोग्य और कम-से-कम बुरे आदमी चुनाव जीत कर कुर्सी पर चिपक गए थे। डॉ. गोपालराय का कहना है "अयोग्य और चरित्रशून्य व्यक्ति खुशामद और पैसे के बल पर चुनाव जीत कर मन्त्रिमण्डल में स्थान पाने अथवा महत्वपूर्ण स्थानों पर जगने लगे थे।[13] 1962 में तीसरा आम चुनाव हुआ था जिसमें पुनः कांग्रेस की विजय हुई थी। इसी वर्ष भारत-चीन युद्ध हुआ था। भारत की दीन पराजय भी हुई। यों नेहरू और कांग्रेस सरकार की असमर्थता भी प्रकट हुई। 27 मई, 1964 को नेहरू की मृत्यू हुई। लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बन गए। 1965 में भारत-पाकिस्तान युद्ध हुआ। युद्धोपरान्त हुई ताशकन्ट समझौते के दौरान लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु हुई। इन्दिरा गांधी प्रधान मन्त्री के पद पर आसीन हो गयीं। 1967 के आम चुनाव में कई राज्यों में कांग्रेस की हार हुई। कांग्रेस की भ्रष्ट राजनीति का पोल खोल गया था। लेकिन कोई विरोधि पार्टी इतनी शक्तिशाली नहीं थी कि कांग्रेस का स्थान ले सके।

हमेशा कांग्रेस ने समाजवाद को अपना लक्ष्य बताया था। लेकिन 1991 के आम चुनाव के घोषणापत्र में 'समाजवाद' शब्द को छोड़ दिया गया है। याने कांग्रेस के समाजवाद का नारा छलावा है, यह स्पष्ट हो गया है। इस विषय में अधिकांश वामपंथी पार्टियां कम-से-कम भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी सहमत हैं। यह ठीक है कि कांग्रेस ने आबडी में समाजवाद को स्वीकार किया लेकिन उनके दिमाग में जो था वह वास्तविक समाजवाद नहीं था। वस्तुतः एकाधिकार, सामन्तवाद तथा साम्राज्यवाद के कुछ विरोध के साथ वह पूंजीवाद ही है। बी.टी.रणदिवे के शब्दों में: "यह निष्कर्ष बिल्कुल सही है कि कांग्रेस के शासनकाल में समाजवाद के स्थान पर पूंजीवाद का विकास हो रहा है, भूमि सम्बन्ध आज भी सामन्ती है और साम्राज्यवाद का आधिपत्य बढ़ रहा है।[14] मार्क्सवादी कम्युनिस्ट कांग्रेसी शासन में साम्राज्यवाद का आधिपत्य बढ़ने की घोषणा कर रहे हैं। कॉमरेड रणदिवे ने भविष्यवाणी की थी कि भारत को कांग्रेस अमेरीका की तरफ ले जाएगी। कामरेड राजेश्वर राव स्वीकार करते हैं कि कांग्रेस ने कुछ क्षेत्रों में राष्ट्रीयकरण किया है, लेकिन सिर्फ राष्ट्रीयकरण लोकतान्त्रिक कदम है, समाजवादी कदम नहीं।[15] वास्तविक समाजवाद का अर्थ उत्पादन के तमाम साधनों-कारखानों, बैंकों और भूमि इत्यादि को पूर्णरूप से समाज की सम्पदा बना देना है। इसकी पूर्ति के लिए आवश्यक है कि शासन श्रमिक जनता और समाज के उन हिस्सों का हो जो श्रमिकों के नेतृत्व में वास्तविक समाजवाद के हामी हों।[16]

भारत के बहुत से राजनीतिक कार्यकर्ता गांधीवादी रास्ता छोड़कर

स्वाधीनता प्राप्ति के नए रास्ते खोजने लगे थे। कांग्रेस के भीतर सोशलिस्टों का एक दल संगठित भी हुआ था। इस दल ने कांग्रेसी नेताओं के विरोध का सामना करते हुए किसान सभाएँ विशेष रूप से बिहार में संगठित की। अनेक औद्योगिक केन्द्रों में कम्युनिस्टों ने मजदूर सभाएँ बनाई इनमें कानपुर की मज़दूर सभा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। काफ़ी दिन तक सोशिलिस्ट और कम्युनिस्ट मिलकर काम करते रहे।[17]

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में काफी विस्तार से बताया है कि कैसे कांग्रेसी नेता किसानों पर ज़मीन्दारों और उनके सरपरस्त अंग्रेज हाकिमों के अत्याचार को रोकने में असमर्थ थे। कांग्रेस के भीतर बहुत से ज़मीन्दार थे। वामपक्ष के अधिकांश नेता यह बात समझते थे कि किसानों को संगठित किए बिना, उनका सांमतविरोधी संघर्ष चलाए बिना स्वाधीनता आन्दोलन में सफलता नहीं मिल सकती। किसान-संघर्षों के बल पर स्वाधीनता आन्दोलन को सुसंगत रूप से चलाकर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिल तक ले जाना-वामपक्ष की नयी राजनीति का सारतत्व था। उनको मालूम है कि कृषि क्रान्ति के बिना गाँव का विकास सम्भव नहीं।

1946 में कश्मीर की बहुसंख्यक मुस्लिम जमता हिन्दू महाराज के विरूद्ध और हैदराबाद की बहुसंख्यक हिन्दू जनता मुस्लिम नवाब के विरूद्ध आन्दोलन चला रही थी। हैदराबाद में कम्युन्स्टि पार्टी मज़बूत थी। उसने किसानों की हथियारबंद लड़ाई चलाकर भारत के सामन्तविरोधी आन्दोलन को नए स्तर पर विकसित किया था। यदि ये आन्दोलन सुसंगत रूप से चलाए जाते और सफल होते तो भारत-विभाजन की नौबत न आती।[18] भारत का विभाजन अनिवार्य नहीं था। विभाजन के फलस्वरूप साम्राज्यवाद ने भारत की जनवादी क्रान्ति पर सफल आक्रमण ही किया था। भारत के एक हिस्से याने पाकिस्तान में उन्होंने अपना अड्डा कायम किया और यहाँ से वह भारत के भीतर और पड़ोसी देश अफ्गानिस्तान में तोड़फोड़ करते आये हैं।

सन् 1947 में भारत के सत्ता हस्तान्तरण सम्बन्धी कानून भी ब्रिटीश पार्लियमेंट ने बनाया था। इस कानून में यह न कहा गया था कि स्वाधीन भारत के नेता ब्रिटेन के आर्थिक हितों की रक्षा करेंगे। पर भारत के नेताओं ने इसकी भरपूर रक्षा की। सन्1947-'48 में कम्युनिस्ट पार्टी ने इन आर्थिक हितों के बारे में काफी सामग्री प्रकाशित की। दर आसल भारत में ब्रिटेन के आर्थिक हित बरकरार रहा। विदेशी बैंकों से कर्ज लेकर भारत सरकार ने विदेशी पूंजी को बढ़ने दिया। वामपंथी विचारकों के अनुसार भारत राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिटेन से स्वाधीन हुआ, लेकिन आर्थिक स्वाधीनता उसे अभी प्राप्त करनी है। याने सत्ता विदेशी पूंजिपतियों के हाथों से देशी दलाल पूंजीपतियों के हाथ में आयी। देश

औपचारिक रूप में भी स्वाधीन न हो तो इससे साम्राज्यवाद को लाभ है। अपने प्रभावक्षेत्र से प्रतिद्वन्द्वियों को बाहर रखने में सुविधा होती है। भारत ब्रिटेन से ही नहीं, जापान, इटली, अमरीका, जर्मनी आदि देशों से आर्थिक सम्बन्ध रखते हुए कर्ज लेता है। अतः भारत सिर्फ़ ब्रिटेन का ही नहीं अनेक देशों का दास बन गया है। पहले सूचित किया गया है कि भारत का कर्ज 1 लाख 63,000 करोड़ हो गया है।

दूसरे महायुद्ध के बाद जितने राष्ट्र विभाजित हुए उतने पहले कभी न हुए थे। अमेरीका हर तरह की दखलंदाजी के लिए विभाजन का मार्ग अपनाता है। अमेरिका ने कोरिया में घुसपैठ इस विभाजन के बल पर की थी, उत्तरी वियत्नाम के विरूद्ध लडाई दक्षिण वियत्नाम से चलायी थी, चिली के अलन्डे की हत्या की थी, पनामे और निकरगुआ का आक्रमण किया था, पंजाब और कश्मीर की तोड़-फोड़ के लिए पाकिस्तान में आतंकवादियों को प्रशिक्षण दिया था, बेनूसर भूटो को शासन से हटा दिया था, और कुवेट की मुक्ति के नाम पर इराकी जनता की हत्या की थी। 'नवलोकक्रम' के द्वारा आज जॉर्ज बुश सारे अविकसित देशों का शोषण करने का प्रयास करते हैं। वे मार्क्सवाद को बदनाम करने की कोशिश भी कर रहे हैं। सूपर 301 कूटनीति है। अमेरीकी साम्राज्यवाद एक ओर नवस्वाधीन देशों को कर्ज के जाल में फंसा रहा है, दूसरी ओर वह समाजवादी देशों को एटम् बम से डराने की कोशिश कर रहा है। भारत इस भीषण कर्जजाल का शिकार बन गया है

आज साम्राज्यवाद का यथार्थ चेहरा लोग पहचानने लगे हैं। साम्राज्यवादी शासकों के पैर चाटनेवाले यहाँ के इजारेदार शासन बड़े संकट का सामना कर रहा है। संसदीय शासन पर भरोसा उठ गया है। क्योंकि जनता ने जान लिया है कि कुर्सियाँ वही हैं, सिर्फ टोपियाँ बदल रही हैं। उनको मालुम है कि नेता लोग मँच पर खड़े होकर विश्व शान्ति और पंचयोजना की महत्ता पर जोरदार भाषण देने में समर्थ हैं। वे चुनाव के दिनों में ज़्यादा हंसने में होशियार भी हैं। उनकी कहनी और करनी में ज़मीन-आस्मान का अन्तर है। वे कहते कुछ, करते और कुछ, यह उनकी सुरक्षा का आधुनिकतम मुखौटा है। रक्षकों ने भक्षकों का स्थान ले लिया है। कानून बनानेवाले ही कानून के दुभाषिए बन गए हैं। आपस में गाली-गलौज करना, कुर्सियाँ फेंकना नेता लोगों की आदत बन गयी है। आलीशान महलों तथा वातानुकूलित फैक्टर होटलों में बैठकर अकाल पर बहस में ही गरीबों के प्रति उनकी वफ़ादारी प्रकट होती है। मतदान से पूर्व जनता की खुशामद और बाद में उनकी उपेक्षा राजनीतिज्ञों की आदत रही है। याने आज की राजनीति वाकई एक व्यवसाय, एक धंधा हो गयी है। सत्ताधारी दल के साथ जुड़े हुए लोग, याने उद्योगपति ही उसे चला रहे हैं। भारत में केन्द्रीय स्तर पर बड़े

व्यापारी घराने के लोगों के हाथ में लोकतन्त्र के तन्त्र हैं। अतः स्वतन्त्रता के बाद भारत लोकतान्त्रिक देश बना किन्तु यह लोकतन्त्र जनता का नहीं था, पूंजिपतियों-भूस्वामियों- अमीर नेताओं का था।[19] दरअसल असफल होता हुआ जनतन्त्र और व्यवस्था की गिरती दीवारों ने देश की जनता को एक निर्णयात्मक स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है।

नववामपंथी कविता: विकास की रूपरेखा-

अ. नक्सलबाड़ी क्रान्ति का असर:- 1967 के मई महीने में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के क्रान्तिकारियों ने कामरेड चारू मजुमदार के नेतृत्व में पश्चिम बंगाल के तराई इलाके में एक आन्दोलन छेड़ा। नक्सलबाड़ी, खड़िबाड़ी और फाँसीदेवा के लाखों किसान उसमें शामिल हुए। 23 मई को नक्सलबाड़ी में पुलिस के साथ किसानों की एक मुठभेड़ हुई उसमें तीन पुलिसवाले घायल हुए जिनमें से एक पुलिस इन्स्पेक्टर सोनमवांगदी मर गया।[20] उसे बाद में 'मरणोत्तर स्दर्णपदक' दिया गया। दो दिन बाद 25 मई को 'युक्तफ्रंट' (संयुक्त मोर्चा) सरकार की पुलिस नक्सलबाड़ी के विद्रोहियों को सीख देने गयी और 7 महिला एक शिशु सहित 9 लोगों की हत्या करके लौट आयी। बंगाल के संयुक्त मोर्चे की सरकार में मार्क्सिस्ट कम्युनिस्ट पार्टी तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी दोनों शामिल थीं। उन्होंने क्रान्तिकारियों के बलपूर्वक क्षेत्रीय आधार पर सत्ता पर कब्जा करने के इस माओवादी प्रयोग को नकारा तथा आन्दोलनकारियों को आन्दोलन खत्म करने के लिए कहा। नेतृत्व की बात मानकर क्रान्तिकारियों ने इनकार किया। सरकार ने बड़ी तादाद में पुलिस भेजकर सामयिक रूप से आन्दोलन को कुचल दिया। मगर, आन्दोलन नहीं रूका और हथियार के बल पर राजसत्ता पर कब्जा करने का यह आन्दोलन जिस नक्सलबाड़ी में शुरू हुआ था उस गाँव के नाम पर भारत भर में जारी रहा। संयुक्त मोर्चे सरकार खत्म हो गयी लेकिन नक्सलवादी आन्दोलन खत्म नहीं हुआ। कम्युनिस्ट आन्दोलन इतने दिनों में जो कुछ हासिल नहीं कर सका था नक्सलबाड़ी ने वह हासिल कर दिखाया। बंगाल के मार्क्सिस्ट कम्युनिस्ट पार्टी से चारूमजुमदार, सरोजदत्त तथा सुशीतल राय चोधुरी सहित 400 सदस्य पार्टी से निकाले गए। उन लोगों ने 'नक्सलबाड़ी संग्राम सहायक कमेटी' बनायी। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से क्रान्तिकारी लोग बाहर आकर नक्सलबाड़ी के पक्ष में खड़े हो गए। 1968 में उन्होंने मिलकर क्रान्तिकारियों की अखिल भारतीय कोआर्डिनेशन कमेटी बनायी जिसके नेतृत्व में जगह-जगह किसान आन्दोलन शुरू हुए। नवम्बर 1968 में आन्ध्रप्रदेश के 'श्रीकाकुलम' जिले में आन्दोलन फैल गया। बिहार के 'मुसहरी' तथा उत्तरप्रदेश के लखीमपुरखीरी इस आन्दोलन के चपेट में आ गये। पश्चिम बंगाल के मेदिनीपुर जिले के डेबरा तथा गोपीवल्लभपुर में आन्दोलन शुरू हो गया।

हर जगह सी.आर.पी. की टुकड़ियाँ भेजी गयीं। कुम्बिंग ऑपरेशन, मुठभेड़ जैसी शब्दावलियों तथा नक्सलवादियों की लाशों से अखबारें पटने लगीं। क्रान्तिकारी लोग अपनी पार्टी बनाने की दिशा में सक्रिय हो गए। 22 अप्रैल 1969 को कॉ.लेनिन के जन्मदिन पर क्रान्तिकारियों ने अपनी पार्टी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) बनायी। 1970 की 15-16 मई को कलकत्ते में भूमिगत रूप से पहली कांग्रेस हुई। सर्वसम्मति से कामरेड चारू मजुमदार पार्टी के महामन्त्री चुने गए।

एक साल के अन्दर श्रीकाकुलम के 300 गाँवों में से 300 से 400 के बीच छापामार टुकडियाँ बन गयीं। श्रीकाकुलम के नेता बेम्पुतापु सत्यम् तथा आदिभट्टाला कैलाशम् पुलिस के हाथों मारे गए। नक्सलवादियों के खून से धरती लाल हो गयी। इस आन्दोलन के नेता सफेदपोश बुद्धिजीवी नहीं, श्रीकाकुलम के गिरिजन थे, डेबरा के आदिवासी थे जिन्होंने जानें दी मगर लाल झण्डे को गिरने नहीं दिया। मक्सिम गोर्की ने कहा है कि जैसे पुरानी सत्ता ऊपर से सड़ती है वैसे ही नयी सत्ता दिमाग से उपजती है। यह नक्सलवादियों ने प्रमाणित किया।[21] प्रेसीडन्सी कॉलेज, इंजीनियरिंग, आई.आई.टी, मेडिकल कॉलेज तथा अनुसन्धान संस्थाएँ नक्सलवादियों का केन्द्र बन गए। केरल में कॉमरेड अजिता ने थाने पर हमला बोल दिया। जदुगोड़ा में पकडे गए नक्सलवादियों में एक अंग्रेज युवती मेरी टाइलर थीं जिन्होंने बाद में जेल की आपबीती पर संस्मरण लिखा।

हथियारबन्द संघर्ष के जरिए गाँव से किसान-मजदूरों की सत्ता कायम करते हुए भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (एम.एल) ने शहर घेरने को अपना लक्ष्य बनाया था। भूमिक्रान्ति उनका लक्ष्य था। उसे हासिल करने के लिए उसने वर्गदुश्मन को सफाये का रणकौशल अपनाया। पार्टी ने चुनाव का पूरी तरह बहिष्कार कर दिया था। जेल में बन्द क्रान्तिकारियों ने जेल तोड़ना शुरू किया। जेल अधिकारियों ने भी जेल में क्रान्तिकारियों की नृशंस हत्या की। सरकार के खिलाफ़ युद्ध घोषणा की गयी। छात्रों ने चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति की तर्ज पर शिक्षा व्यवस्था पर प्रहार किया। बंगाल के तथाकथित पुनर्जागरण के नेता विद्यासागर और आशुतोष मुखोपाध्याय की मूर्तियाँ तोड़ी गयीं। गाँधी की मूर्ति की रक्षा करने के लिए दिन-रात पुलिस तैनात की गयी। शहर की दीवारें अध्यक्ष माओ की उद्धृतियों से पटी हुई थी। मार्क्स ने कहा है कि व्यक्ति जब सिद्धान्त को पकड़ लेता है तो वह भौतिक ताकत बन जाता है। नक्सलवादियों ने दिखाया है कि वह वाकई वैसा ही है। हजारों लड़के-लड़कियाँ शहर से गाँव गए। 1975 तक क्रान्ति पूरी कर लेने की रूपरेखा बनायी गयी। भूमिहीन किसान को संगठित करना था। किसान-मजदूरों की लाल सेना बनानी थी। हालाँकि यह सपना-सा था,

मगर नक्सलवादियों के लिए वह ऐसा सपना था जिसके लिए जान तक दी जा सकती थी ।[22] बहुत लोगा जैसे डा.भास्कर राव, पंचाड़ि कृष्णमूर्ति, वेम्पुतापु सत्यम्, सुब्बराव पाणिग्रही, वर्गीस आदि मारे गए । 1971, अगस्त 4 को कॉमरेड सरोज दत्त को पुलिस ने पकड़ लिया उसी रात कलकत्ते के मैदान में उनकी हत्या कर दी । 28, जुलाई 1972 को पुलिस ने लाल बाज़ार की पुलिस हिरासत कॉमरेड चारू मजूमदार की हत्या कर डाली । 45,000 हज़ार नक्सलवादी जेल में बन्द हो गए ।[23] इतनी नई पार्टी के इतने अधिक नेता तथा कार्यकर्ता इतने कम समय में कहीं भी मारे नहीं गए । पुलिस तथा गुण्डों ने मिलकर काशीपुर बरानगर में सैकड़ों नक्सलवादी युवकों की हत्या की । सरकारी हिसाब से उस इलाके में 78 तथा गैर सरकारी हिसाब के मुताबिक 500 युवा मारे गए । आपात्काल में केरल के "कक्कयम् पुलिस कॉनसेन्ट्रेशन केम्प" में रीजनल इन्जीनियरिंग कॉलेज का छात्र कॉमरेड राजन की भी हत्या पुलिस ने की ।

आंधी की तरह तेज़ी से आकर इस नक्सलवादी आन्दोलन ने मानो सब कुछ तहस-नहस करने की कोशिश की । इसने पुरानी व्यवस्था के तालमेल बिगाड़ कर संसदीय व्यवस्था की जड़ को ही हिला दिया । 'श्रीकाकुलम' के सशस्त्र किसान संघर्ष से कवियों ने प्रेरणा प्राप्त की । नक्सलबाड़ी आन्दोलन के दिनों बंगाल तथा केरल के मध्यवर्गीय युवकों का एक बड़ा हिस्सा घरबार छोड़ कर क्रान्ति में जुट गया था ।[24] क्रान्तिकारियों ने समझ लिया कि देश के प्रमुख वर्गों का सामाजिक, राजनीतिक और सैनिक एकीकरण अनिवार्य है । 1871 में 'पेरिस कम्यून' में, 1917 में रूस में, 1918 जर्मनी और हंगरी में, 1944-45 में चीन में, 1944-45 में वियत्नाम में 1942-45 में यूगोस्लोविया में यही हुआ था ।[25] वहाँ सामन्तवाद तथा साम्राज्यवाद के विरूद्ध क्रान्तिकारी संगठित हुए थे । वहाँ के बुद्धिजीवियों तथा कलाकारों का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं रहा था ।

दरअसल भारत की नक्सलबाड़ी क्रान्ति जिस राजनीतिक परिवेश की उपज रही थी, इसी परिवेश में पलकर नववामपंथी जनवादी कविता ने क्रान्ति की प्रेरणा को आत्मसात् करते हुए राजनीतिक विड़म्बनाओं व विसगतियों को अभिव्यक्त करने की ज़ोरदार कोशिश की थी ।

साम्राज्यवादी साजिश- तीसरी दुनिया के देशों जिनमें भारत भी शामिल है, के मज़दूर वर्ग के ऊपर शोषणदमन अत्याचार आज अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है । मज़दूर वर्ग ने संघर्ष के ज़रिये जो अधिकार हासिल किया है उसपर साम्राज्यवादियों ने हमला बोल दिया है । आई.एम्.एफ., विश्व बैंक, बहुराष्ट्रीय कम्पनी निगम जैसी साम्राज्यवादी संस्थाओं के निर्देश पर दलाल शासक वर्ग द्वारा विभिन्न मज़दूर विरोधी काले कानूनों के ज़रिये मज़दूरों के राजनीतिक अधिकारों को हड़पने की

घातक साजिशें की जा रही हैं ।[26] इसके साथ साम्राज्यवादी देशों के शासक मार्क्सवाद को बदनाम घोषित करने की साजिश में तल्लीन हैं । वे असलियत को छिपाते हैं ।

रूस में कॉ.स्तालिन तथा चीन में कॉ.माओ त्से तुंग की मृत्यु के बाद संशोधनवादी खुश्चेव तथा डेंग सियाओं पिंग ने समाजवादी नीतियों को त्याग कर पूँजीवादी आर्थिक नीतियों को अपना लिया है । पूर्वी यूरोप के रूसी-खेमे के देश जिन्होंने खुश्चेव का अनुसरण किया था । पूंजीवादी नीतियाँ अपनाने से ये देश आज गंभीर संकट से गुज़र रहे हैं ।[27] इन देशों में पूँजीवाद का जो संकट पैदा हुआ उसे मार्क्सवाद का संकट बताकर साम्राज्यवाद तथा प्रतिक्रियाशील शक्तियाँ कुत्सित प्रचार कर रही हैं । संशोधनवादी सी.पी.आई एवं सी.पी.एम जैसी पार्टियाँ भी साम्राज्यवाद के इस साजिश में शामिल हैं ।[28] पूंजीवादी, साम्राज्यवादी तथा प्रतिक्रियाशील शक्तियों द्वारा समाजवाद को बदनाम करने की साजिश आज से नहीं वरन उसके जन्मकाल से ही जारी है । इन्हीं शक्तियों ने कार्ल मार्क्स द्वारा रचित 'पूंजी' को उटोपिया कहकर प्रचारित किया । इन्होंने 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' को बकवास बताया । लेकिन 'पेरिस कम्युन' की स्थापना ने साम्राज्यवादी व प्रतिक्रियाशील शक्तियों के मुँह को बंद कर दिया । तीन माह के बाद याने 'पेरिस कम्युन' के पतन के बाद इन शक्तियों को एक बार फिर मुँह खोलने का मौका मिला । इन्होंने बड़े ज़ोर-शोर से यह प्रचार किया है कि मज़दूर वर्ग राज्य सत्ता पर कब्जा तो कर सकता है लेकिन उसे चला नहीं सकता । रूस की अक्तूबर क्रान्ति तथा उसके बाद समाजवादी रूस के सफलतापूर्वक संचालन ने उनके इस दुष्प्रचार को भी हवा में उड़ा दिया । उनके दुष्प्रचार के खिलाफ़ कॉ.लेनिन के नेतृत्व में विश्व के सर्वहारा वर्ग ने समाजवाद का नया आयाम रचा । द्वितीय विश्व युद्ध में कॉ.स्तालिन के नेतृत्व में समाजवादी रूसी जनता ने हिटलर के तानाशाही को खत्म कर पूरी दुनियाँ की जनता को फासिस्ट चंगुल से बचाया ।[29]

रूस में कामरेड लेनिन तथा कॉमरेड स्तालिन के रहते मार्क्सवाद को बदनाम करने की साजिश में प्रतिक्रियाशील शक्तियां कभी भी कामयाब नहीं हुए । मार्क्सवादी सिद्धान्त के आगे पूंजीवादी सिद्धान्त तथा व्यवहार खड़ा नहीं हो सकता है । अतः मार्क्सवादी सिद्धान्तों को तोड़ मरोड़ कर पेश किया जाने लगा । कॉ.स्तालिन की मृत्यु के बाद खुश्चेव ने सर्वहारा अधिनायकत्व के स्थान पर केवल अधिनायकत्व के पहलू पर ही ज़ोर दिया । उसने वर्गसंघर्ष' को तिलांजलि देकर 'वर्ग-सहयोग' को प्रधानता दी । पूंजीवादी आर्थिक नीतियों के चलते रूस समाजवाद से साम्राज्यवाद में बदल गया । 'पूंजी' जनवाद नहीं प्रभुत्व की मांग करती है । अतः शासन व्यवस्था भी क्रूर तानाशाही हो जाती है । इस

पूंजीवादी तानाशाही के खिलाफ़ पूर्वी योरोप की जनता उठ खड़ी हुई। लोगों ने तानाशाहों को उखाड़ फेंका। रूस में गोर्बाच्चोव 'ग्लास्तनोस्त' तथा 'पेरिस्त्रोइका' के ज़रिये कम्युनिस्ट पार्टी को खत्म कर पूंजीवादी राजनीतिक पार्टियों को प्रतिष्ठित करने में लगा हुआ है। शान्ति दूत गोर्बाच्चोव को नोबल पुरस्कार भी मिला है। उसने 'सोशिलिस्ट' के स्थान पर सोवरिन नाम रखा जिसका दुनिया के तमाम बूर्ज्वावर्ग तहे दिल से स्वागत किया। आज गोर्बाच्चोव अमेरिका के जोर्ज बुश का ब्लू प्रिन्ट है।

इस तरह से अमेरिकी साम्राज्यवादी, रूसी साम्राज्यवादी, संशोधनवादी तथा अन्य प्रतिक्रियाशील शक्तियाँ मार्क्सवाद तथा समाजवाद को बदनाम करने की साजिश में एक जुट हो गयी हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रांस ने जर्मनी को विभाजित करने के लिए बर्लिन में दिवाल खड़ा करने का प्रस्ताव रखा जिसे कॉ.जोसफ स्तालिन ने दृढ़ता से ठुकरा दिया था जिससे ये अपने मकसद में कामयाब नहीं हो सके। कॉ.स्तालिन की मृत्यु के बाद संशोधनवादी खुश्चेव के शासन काल में बर्लिन की दीवार बनायी गयी थी। 1962-63 में खुश्चेव के इस कार्य के लिए प्रतिक्रियाशील शक्तियों द्वारा उनकी बड़ी तारीफ़ की गयी थी। दोनों जर्मनी की जनता ने बर्लिन की दिवार गिरा दी। साम्राज्यवादी साजिश यह है कि जोसफ़ स्तालिन ने ही बर्लिन की दीवार बनवाई थी। असली बात यह है कि स्तालिन हमेशा बर्लिन में दिवार खड़ा करने का विरोध प्रकट करते थे। वास्तव में स्तालिन की मृत्यु के दस साल बाद ही बर्लिन दिवार का निर्माण हुआ था।[30]

रोमेनिया के राष्ट्रपति षेषस्क्यु अमेरीकी साम्राज्यवाद की तारीफ़ करते थे। वह रीगन का परम मित्र थे। रूसी खेमे द्वारा लॉस एन्जिल्स ओलिम्पिक खेल का बहिष्कार करने के बावजूद षेषस्क्यू ने रीगन की मित्रता के नाम पर रूमेनिया से लॉस एन्जिल्स ओलिम्पिक खेल में टीम भेजा था जबकि रूमेनिया रूसी खेमे का देश था। षेषस्क्यू के तानाशाही एवं विलासी रवैया की वजह से रूमेनिया की जनता ने उसे सत्ता से उखाड़ फेंका तथा उसकी हत्या भी कर दी। सी.पी.एम. ने तेरहवीं पार्टी कांग्रेस में इसी रूमेनियन कम्युनिस्ट पार्टी का खूब स्वागत किया था। अतःयह निर्विवाद है कि सी.पी.एम की संशोधनवादी नीतियाँ षेषस्क्यू की नीतियों से भिन्न नहीं हैं। पूर्णरूप से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तथा मार्क्सिस्ट कम्युनिस्ट पार्टी संशोधनवादी तथा पेट्टि बूर्ज्वापार्टी बन चुकी हैं।[31] आज ये पार्टियाँ अमेरिकी साम्राज्यवाद की तरह षेसस्क्यु को भी कॉ.जोसफ स्तालिन पंथी सिद्ध करने की हरसंभव कोशिश करती हैं। ये पार्टियाँ पूर्वी योरोप तथा रूस की बदली राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, व सांस्कृतिक परिस्थितियों को विश्लेषित करने में असमर्थ सिद्ध हुई हैं।

इन्होंने अपनी गलत संशोधनवादी नीतियाँ साबित करने केलिए हर छोटे-बड़े झूठ का सहारा लिया है । साम्राज्यवादी देशों के शासक अपना संकट छिपाने के लिए मार्क्स, लेनिन तथा माओ के चिन्तन के विरुद्ध आक्रमण करते हैं । संचार माध्यमों की सहायता से वे इसमें सफल भी हुए हैं

खुश्चेव द्वारा रूस में पूंजीवादी आर्थिक नीतियों को लागू करने के लिए जब मार्क्सवादी सिद्धान्तों में फेर बदल किया जा रहा था तब कॉ. माओ-त्से तुंग के नेतृत्व में विश्व के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने खुश्चेव का पर्दाफाश करते हुए कहा था कि रूस संशोधनवादी नेतृत्व के हाथ में चला गया है ।[32] उसके बाद कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने विश्व जनता के सामने उस तथ्य को सामने रखा कि रूस में समाजवादी नीतियों के त्यागने तथा पूंजीवादी नीतियों को अपनाने के कारण उसका चरित्र साम्राज्यवादी हो गया है ।[33] रूसी नीति के अनुसरण करनेवाले देशों का चरित्र पूंजीवादी का हो चुका है । अतः आज इन देशों की समस्या पूंजीवाद की समस्या है न कि समाजवाद की । साम्राज्यवादी प्रतिक्रियाशील शक्तियां विश्व की जनता को गुमराह करने की कितना भी कोशिश करें, खुद उनके भीतर ही एक खलबली मची हुई है । कारण ये खुद भी आज स्वीकार करने के लिए मजबूर हैं कि अब कोई समाजवादी देश नहीं बचा है । अब ये किस तरह से मार्क्सवाद तथा समाजवाद को बदनाम कर पायेंगे । पूंजीवादी अर्थ शास्त्री 'किसिंजर' ने भी पूर्वी योरोप की घटनाओं पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि दरअसल यह साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद के खिलाफ़ तुफान के पहले की शांति है[34]

फिर भी सवाल खड़ा होता है कि समाजवादी क्रान्ति सम्पन्न होने के बावजूद भी इन देशों में पूंजीवाद की पुनः स्थापना कैसे हुई ? आज पूंजीवाद पतनशील होते हुए भी प्रभुत्वकारी व्यवस्था है । जाने-अंजाने लोगों के बीच इसका प्रभाव मौजूद है । संशोधनवादियों, पुनरुत्थानवादियों, धर्माचार्यों, आतंकवादियों फासिस्ट शक्तियों तथा संचार माध्यमों की सहायता से ही पूंजीवाद व साम्राज्यवाद अविकसित देशों पर छायादार रहते हैं । अतः समाजवादी देश को बनाये रखने के लिए सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को दृढ़ता के साथ अमल में रखने की सख्त जरूरत है । वर्ग-संघर्ष को जारी रखना अवश्यंभावी है । विश्व स्तर पर पूंजीवादी प्रभुत्व के खिलाफ़ संघर्ष तथा अपने अन्तिम लक्ष्य साम्यवाद तक पहुंचने के लिए कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए, समाजवाद आधार इलाका है । इस आधार इलाके की कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी तभी रक्षा कर पायेंगे जब वे वर्ग संघर्ष तथा सर्वहारा अधिनायकत्व को दृढ़ता से पकड़े रहेंगे । रूस में समाजवादी क्रान्ति सफल होने के बाद कॉ. लेनिन ने इसे अमल में लाने के लिए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति पर जोर दिया था ।

चीन में कॉ.माओ ने सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शुरूआत की थी तथा इसे अन्त तक चलाने की बात कही थी। रूस में स्तालिन, चीन में माओ की मृत्यु के बाद रूस, चीन तथा पूर्वी योरोप में पूंजीवादी पुनः स्थापना की घटनाओं की यही सीख है।[35]

दरअसल नक्सलबाड़ी क्रान्ति की प्रेरणा को आत्मसात् करते हुए भी साठ् के बाद के कवि मार्क्सवाद को बदनाम करनेवाली साम्राज्यवादी व प्रतिक्रियाशील शक्तियों की साजिश से प्रतिक्रियान्वित हुए। संशोधनवादी सी.पी.एम् तथा सी.पी.ऐ. के संसदीय मोहजाल से भी कविमन विमुक्त हुए। अधिकांश युवा कवियों ने पहचान लिया है कि संकट समाजवाद का नहीं, पूंजीवाद का है। इसलिए साम्राज्यवाद तथा संशोधनवादियों के विरूद्ध आक्रमण कर सर्वहारा और साम्यवाद की सुरक्षा करने की कोशिश हिन्दी कविता में साठ के बाद हुई। इसकी पृष्ठभूमि रूस की सोशिलिस्ट क्रान्ति, चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति, तथा नक्सलबाड़ी व तेलुंगाना की भूमि क्रान्ति याने कृषिक्रान्ति है। मार्क्स, लेनिन और माओ का चिन्तन इसकी अदम्य ऊर्जा भी है।

साहित्यक परिस्थिति सन् 1930 के लगभग ही हिन्दी कविता में एक नवीन सामाजिक चेतना का प्रादुर्भाव होने लगा था। लेकिन इसका स्पष्ट रूप 1936 के 'प्रगतिशील लेखक सम्मेलन' के बाद ही दिखाई पड़ा। 'प्रगतिशील लेखक संघ' की सर्वप्रथम स्थापना 1935 में मुल्कराज आनन्द और सज्जाद ज़हीर के नेतृत्व में लन्दन में हुई। उसी वर्ष प्रसिद्ध उपन्यासकार ई.एम.फॉस्टर की अध्यक्षता में समस्त विश्व के प्रगतिशील लेखकों का सम्मेलन पेरिस में हुआ।[36] इन सम्मेलनों की प्रेरणा से भारत में भी एक प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की गयी, जिसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुआ। 1938 में प्रगतिशील संघ का दूसरा अधिवेशन कलकत्ता के आशुतोष मेम्मोरियल हॉल में संपन्न हुआ। इसके अध्यक्ष रवीन्द्रनाथ टैगोर थे। 1942 में संघ का तीसरा अधिवेशन हुआ। इसमें फासिज़्म के विरूद्ध बहस हुई। साहित्यकार के दायित्व पर विचार विमर्श हुआ। 1943 में चौथा अधिवेशन बम्बई में हुआ।

उपरोक्त सम्मेलन के बाद अप्रत्यक्ष रूप में ही सही, मार्क्सवादी चिन्तन का असर साहित्य पर पड़ा। अनेक भाषाओं में प्रगतिशील साहित्य का समारंभ हुआ। दूसरे महायुद्ध के बाद जन आन्दोलन सारे देश में फूट पड़े, आत्मसमर्पणवादी नीति के बदले प्रगतिशील लेखकों ने जनसंघर्षों के समर्थन की नीति अपनाई। साहित्य में, विशेष रूप से कविता में एक नयी जुझारू धारा का तेज़ी से विकास हुआ। सन् 1936 में प्रारंभ होकर प्रगतिशील आन्दोलन भारतीय साहित्य का सबसे अधिक प्रभावशाली आन्दोलन बन गया था। आज़ादी मिलने के बाद,

प्रतिक्रियावादी ताकतों के बावजूद भी प्रगतिशीलधारा हिन्दी की सबसे अधिक प्रभावशाली धारा बनी रही । कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि विधाओं का नेतृत्व प्रगतिशील लेखक कर रहे थ । 'प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के समूचे इतिहास को ध्यान में रखते हुए 1949 का घोषणा पत्र तैयार किया गया था । उस समय उसका समर्थन करनेवालों में मुल्क राज आनन्द भी थे । मुल्कराज आनन्द, सज्जाद ज़हीर, और अब्दुल अलीम ने 'न्यू इंडियन लिटरेचर' नाम से एक पत्र निकाला था । 1939 में प्रकाशित अंक में मुल्कराज ने प्रगतिशील लेखकों के आन्दोलन पर एक निबन्ध लिखा । इसमें उन्होंने लंदन में अपने तथा कुछ मित्रों के सहयोग से प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना का प्रतिपादन किया । 1936 में जो सम्मेलन प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुआ था, उसके बारे में वे चुप रहे थे ।[37]

कांग्रेस ने जबर्दस्त कम्युनिस्ट विरोधी अभियान चलाया । सुमित्रानन्दन पंत 'ग्राम्या' और 'रूपाभ' की ज़मीन छोड़कर 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' के अरविन्द मार्ग की ओर बढ़े । इस समय अज्ञेय 'प्रयोगवाद' नाम से विख्यात अपना प्रगतिविरोधी आन्दोलन चला रहे थे । प्रगतिशील तथा प्रगतिवाद को संकीर्ण बताकर नेमीचन्द्र जैन जैसे अनेक मार्क्सवादी लेखक इस आन्दोलन में शामिल हुए । 'प्रतीक' के पुराने अंक इस परिवर्तन के साक्षी हैं ।

प्रगतिशील और प्रगतिवादी काव्य-धारा की प्रभावक्षीणता के अनेक कारण होते हैं । प्रगतिवादी कवि लोकसम्पृक्ति से विच्छिन्न रहे थे । वे मजदूरों के प्रति आँसू बहाते रहे । मार्क्सवादी दल तो सत्ता हथियाने की कोशिश कर रहे थे । पार्टी के संशोधनवादी प्रवक्ता वर्गसंघर्ष भूल गए । सृजनशील लेखक भी पार्टी के प्रशासकीय कार्य में सहयोग देते रहे । वे पार्टी कार्यक्रम के प्रचार से स्वतन्त्र रहने में असमर्थ रहे । पार्टी दबाव के कारण ये साहित्यकार सिर्फ़ प्रचारक बन चुके थे । अन्त में उनकी कविता नारे का पोस्टर बन गयी । तात्कालीक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उनको काव्य लिखना पड़ा । दल की नीतियों व स्थितियों के अनुसार कविता ढ़लने लगी । पार्टी वर्ग सहयोग के मार्ग पर चलने लगी । इसके फलस्वरूप प्रगतिवादी कवि भी संकट के कगार पर पहुंच गए ।

रचना जीवन से अपनी विषय वस्तु हासिल करती है, पार्टी से नहीं।कवि जनता को सम्बोधित करते हैं, पार्टी नेता को नहीं । कवि का बड़ा दायित्व जीवन और मनुष्य के प्रति होना चाहिए । प्रगतिवादी कवि इसमें असफल रहे । अन्त में वे गैरजिम्मेदार हो गए । अभिव्यक्ति स्वतन्त्रता के नाम पर वे व्यक्तिवादी बन गए । दरअसल प्रगतिवाद मूलतः एक दृष्टिकोण है; चिन्तन का एक आयाम है ।[38] अधिकांश

कवि इस सत्य से विच्छिन्न रहे ।

प्रगतिवादी कविता शिल्प की उपेक्षा करने लगी और धीरे-धीरे रूढ़ होकर एक फॉर्मुला बन गयी । कालान्तर में उसमें जीवन की बुनियादी सच्चाई तो एक निर्जीव आकार के रूप में रह गयी । उसमें जीवन के स्पन्दन और ऊष्मा का निरन्तर अभाव होता गया । कवि अपनी संवेदना और शिल्प का संस्कार नहीं कर सके । शिल्प विधान के दुर्बल-पक्ष के कारण उसकी प्रवाहमान् धारा पथ के मरूस्थल में ही कहीं खो गयी ।

प्रगतिवादी आन्दोलन ने अपने को लोक-जीवन और लोक-संस्कृति से जोड़ने का प्रयत्न किया । किन्तु उसके इस प्रयत्न में एक दर्शन के तहत मात्र एक ललक थी, गहरी अनुभूति नहीं थी । इसलिए वह लोक-जीवन और संस्कृति को स्थूल या एकांगी रूप में ही देख सका, उसके साथ गहरा तादात्म्य स्थापित नहीं कर सका । यही वजह है कि उसने एक अच्छे प्रयत्न की शुरूआत तो की किन्तु उससे वह स्वयं कोई उपलब्धि नहीं प्राप्त कर सकी [39] अतः प्रगतिवादी कविता अधिक समय तक टिक न पायी ।

प्रगतिवादी कविता की परिसमाप्ति के तदुपरान्त हिन्दी में आकर्षक व कला-मंडित पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ आ गयी । 'प्रतीक', 'निकष', 'ज्ञानोदय', 'नयी कविता', 'कल्पना' आदि का प्रकाशन हुआ । इन्हीं पत्रिकाओं में समाज निरपेक्ष और व्यक्ति सापेक्ष अनुभूतियों और अनुभूति की अद्वितीयता की महिमा गायी गयी । इनमें क्षणवाद को कविता का 'फेटिश' बना दिया गया । 'रूपाभ' बन्द हो चुका था । 'हँस', 'नया पथ' जैसी पत्रिकाएं भी एकदम बन्द हो गयी थीं । कुछ दिनों के बाद 'आलोचना' भी शिवदान सिंह चौहान के हाथों से छिनकर परिमल मंडल के पास पहुँच गयी । इसके साथ इन पत्रिकाओं के तत्वावधान में अनेक काव्य आन्दोलन भी जैसे प्रयोगवादी नयी कविता, अकविता, भूखी पीढ़ी कविता, सहज कविता, विचार कविता आदि चलाये गए । फलतः प्रगतिवादी कविता का प्रकाशित होना कठिन हो गया । [40]

प्रयोगवाद ने प्रयोग के लिए प्रयोग की भावना से प्रेरित होकर शैली-शिल्प तथा भाषा के नए-नए अस्त व्यस्त प्रयोगों से कविता को दुरूह और प्रभावहीन बना दिया था । विषय की एकरूपता कविता के प्रभाव को क्षीण करती है । एक ही प्रद्धति पर चलते चलते कवियों को रूढ़ मुहावरों का प्रयोग करना पड़ता है । प्रयोगशील कविता में प्रतीकों और बिम्बों की बहुलता के कारण कविता का कोई वैचारिक आधार स्पष्ट नहीं होता है ।

प्रयोगवादी नयी कविता को पूर्ववर्ती प्रगतिवादी काव्यान्दोलन के विशाल फलक से अपने आपको अलगाना था और अपना अलग अस्तित्व

सिद्ध करना था । इसके लिए इन कवियों ने व्यापक ग्रामीण परिवेश से जुड़े हुए गजदूर-किसान जीवन की बजाय नगरीकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया और सामाजिकता के स्थान पर आत्मबद्धता को कविता के केन्द्र में रखा ।[41] उन्होंने समूहबद्धता से अलग हटकर व्यक्तिगत सुख-दुःख को कविता का विषय बनाया । प्रामाणिक अनुभूति के नाम पर व्यक्ति-यथार्थ के महत्व पर बल दिया गया है । 'नयी कविता' पत्रिका के सम्पादक जगदीश गुप्त ने 'अर्थ की लय' स्थापना की तो लक्ष्मीकान्त वर्मा और विजयदेव नारायण साही ने 'विराट ऐतिहासिक मानव' के स्थान पर कविता में 'लघु मानव' के चित्रण की घोषणा की । वस्तुतः यह कविता महानगर और मध्यम वर्ग से जुड़ी हुई कविता है । इस प्रकार अज्ञेय के नेतृत्व में प्रारंभ और 'नयी कविता' पत्रिका के माध्यम से पल्लवित-पुष्पित इस काव्यान्दोलन ने वस्तुतः कविता को किसान-मजदूर के व्यापक ग्रामीण परिवेश से काटकर, महानगरीय परिवेश के मध्यम वर्ग से जोड़ दिया ।[42] दरअसल 'नयी कविता' आत्ममोह और रुग्ण मनःस्थितियों को उभारती हुई अन्ततः शब्द-कौशल और वाक्छल द्वारा चमत्कार उत्पन्न करती थी । 'नयी कविता' का उद्घोष अहंपूर्ण 'मैं' था ।

सहज अनुभूति के अभाव में आरोपित वैचारिकता के आग्रह ने (जिसे कवि अपनी नवीन उपलब्धि मानकर चलते हैं) नयी कविता को एक ऐसे अनदेखे विराम-स्थल पर छोड़ दिया है, जहाँ से आगे प्रशस्त होने की कोई राह अब नए कवियों को नही सूझ रही है ।[43] रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है "जहाँ तक नयी कविता का सम्बन्ध है, उसका विकास तो एक स्थिति तक आकर फिर रुक-सा गया है ।"[44] भाषा तथा शिल्प के बने-बनाए साँचे में नयी कविता 'फिट' हो गयी । कविता का शिल्प विशिष्ट तरह के प्रतीकों और दार्शनिक प्रपत्तियों के कारण बोझिल होने लगा था ।[45] इसमें उपमानों, प्रतीकों तथा बिम्बों की पुनरावृत्ति होने लगी थी ।

प्रयोगवादी नयी कविता के दूसरे दौर में अनेक काव्य-आन्दोलन उभरकर आए जिनमें भूखी पीढ़ी श्मशानी पीढ़ी, सनातन सूर्योदयी कविता, अकविता, सहज कविता आदि का नाम गिनाया जा सकता है । किन्तु इन सबमें से 'अकविता' का आन्दोलन सबसे अधिक जीवन्त सिद्ध हुआ । सन् 1963 ई. में जगदीश चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'प्रारम्भ' नाम के संकलन से इस आन्दोलन का प्रारम्भ माना जा सकता है । इसके बाद 'निषेध' का सम्पादन करते हुए जगदीश चतुर्वेदी ने 1972 ई. में अकविता आन्दोलन शुरू किया । 'विजप' नाम से विमल, जगदीश (चतुर्वेदी) तथा (श्याम) परमार का सम्मिलित संकलन आया । जिस प्रकार 'नयी कविता' आन्दोलन की प्रतिष्ठा 'नयी कविता' नाम की पत्रिका से हुई, उसी प्रकार 'अकविता'

आन्दोलन भी 'अकविता' पत्रिका से ही स्थापित हुआ ।[46] अकविता का आन्दोलन मूलतः निषेध और नकार का आन्दोलन है । यह एक वैयक्तिक काव्य-प्रक्रिया है । नारी देह को प्रतीक बनाकर सर्वाधिक अर्थ-व्यंजनाएँ की गयीं । नारी देह के प्रति उनकी अत्यधिक रुचि, वितृष्ण, घृणा, कुण्ठा, हताशा आदि ने इनके पूरे कृतित्व को ढंक लिया । इसी एक आरोप के नीचे इनके नकार और निषेध का समस्त सकारात्मक-गुणात्मक कृतित्व छिप-सा गया । अकविता आन्दोलन अब अपनी पूरी शक्ति और सीमाओं के साथ समाप्त हो गया ।

1970 से 1980 के बीच भी अनेक काव्यान्दोलन उभरकर आए जिनमें सहज कविता, विचार कविता आदि का नाम उल्लेखनीय है । किन्तु इनमें से सतत् एवं सार्थक महत्व का आन्दोलन विचार कविता का रहा है । विचार कविता का प्रारम्भ 1973 ई. में 'संचेतना' (सं. महीपसिंह नरेन्द्रमोहन) पत्रिका के 'विचार कवितांक' से हुआ । इसके बाद 'इत्यलम' पत्रिका का 'विचार कवितांक' आया और बलदेव वंशी द्वारा संपादित 'समकालीन कविता विचार कविता' तथा डॉ. नरेन्द्र मोहन द्वारा लिखित 'कविता की वैचारिक भूमिका' नाम से पुस्तकें प्रकाशित हुई । 'कहीं भी कविता खत्म नहीं होती' पुस्तक का प्रकाशन भी उल्लेखनीय है । 'विचार कविता' आन्दोलन के साथ मुख्य रूप से बलदेव वंशी, नरेन्द्र मोहन, विनय, ऋतुराज आदि के नाम उभरकर आए ।[47] इन कवियों की मान्यता यह है कि कविता कभी भी विचारशून्य नहीं रही है ।

वस्तुतः हिन्दी साहित्य के साठोत्तरी वर्षों में जहाँ एक ओर बूर्जुआ ह्रास का प्रभाव राष्ट्रीय जीवन पर पड़ रहा था, वहीं सांस्कृतिक ह्रास भी परिलक्षित हो रहा था । हिन्दी में यह ह्रास अकविता की एब्सर्डिटी के साथ गूँगेपन तथा हकलाहट में बदल गया था । सामाजिकता से कटे प्रयोगवाद की यही परिणति होनी थी । संक्षेप में बूर्जुआ प्रयोग की संभावनाएँ खत्म हो गयी थीं ।[48] अकविता, भूखी पीढ़ी व श्मशानी पीढ़ी की कविता और विचार कविता का अन्त स्वाभाविक था ।

नववामपंथी जनवादी कविता का उदय साठ् के आस-पास नयी कविता की धारा अपने से कुछ अलग होती हुई दीखती है । समसामयिक कविता अस्वीकृति से जन्मी है, इसलिए उसमें नयी कविता से अपने को अलगाने की इच्छा भी प्रबल रही ।[49] राजीव सक्सेना के अनुसार साठ् के बाद 'नयी कविता' की शुद्ध कलावादी स्थापनाएँ असंगत दिखाई देने लगीं और 1963 में प्रकाशित 'प्रारंभ' से विरोध और आक्रोश की कविता शुरू हुई । उसके बाद सातवें दशक में जिस विद्रोही भावना ने जन्म लिया, उसने कविता को एक नया मोड़ दिया है ।[50] रणजीत के शब्दों में 'संवेदना' या अनुभूति की प्रामाणिकता' 'ईमानदारी' 'तटस्थता' 'असम्पृक्तता' जैसे

शब्द मेरे लिए निष्क्रिय भावबोध, परिवेश के प्रति पुंसत्वहीन समर्पण युगचेतना की सतही समझ और छिछली रोमेंटिकता के पर्याय हैं ।[51] राजकमल चौधरी का कथन यहाँ सार्थक लगता है :'साठ् के पहले तक के कवि छायावादी मनोभूमि और शब्दावली में जीते रहे । एक बिन्दु पर आकर तो 'नव्य रोमान्टिकता' की चर्चा भी चल पड़ी । अन्तिम तीसरे सप्तक (1959) तक बहुधा ऐसी ही भीनी-' ' झीली-झीनी कविताएँ लिखी गयीं । साठ् से कविता रूमानियत से विमुक्त हुई थी ।[52] अतः महज फैशन और चौंकानेवाली प्रवृत्ति से जनमे साहित्य का तेज़ी से बासी पड़ना स्वाभाविक है ।

1960 तक आते-आते देश की बदली हुई परिस्थितियों के थपेड़ से कविता परम्परागत लीक से हटकर चलने लगी थी । पूर्ववर्ती काव्यान्दोलनों से असन्तुष्ट होकर तथा भारत की बदली हुई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से मजबूर होकर कुछ युवा कवि प्रतिक्रियान्वित होने लगे थे । साम्राज्यवादी साजिश का पर्दाफाश इन कवियों का मुख्य लक्ष्य रहा । नक्सलबाड़ी क्रान्ति इस कविता की पृष्ठभूमि रही । इस दृष्टि से यह काव्य-आन्दोलन अन्य काव्य-प्रवृत्तियों से एक दम भिन्न भी रही है । जनवादी दृष्टिकोण वाली इस कविता को सामान्यतः नववामपंथी कविता कहा जा सकता है । यहाँ नव शब्द जानबूझकर प्रयोग किया गया है । याने तथाकथित संशोधनवादी राजनीति से (सी.पी.आइ, सी.पी.एम.) प्रभावित कवि और कविता से वाकई भिन्न कविता है नक्सलवाद से प्रभावित कविता । यही नववामपंथी कविता है। कवि भी अपने विचारों से नक्सलवादी हैं अर्थात् वे वर्ग-संघर्ष के जुझारू सिपाही और गुरिल्ला क्रान्तिकारी, छापामार भी हैं ।[53] इतना निर्विवाद है कि 'सामयिक' 'जनशक्ति', 'काम' 'पहल' 'उत्तरार्द्ध', 'प्रारम्भ', 'शुरुआत', 'अप्रस्तुत', 'युग परिबोध', 'भंगिमा' 'लहर', 'अर्थात', 'क्रमशः', 'आवेग', 'सापेक्ष' 'उद्भावना', 'विपक्ष', 'निष्कर्ष', 'नया पथ' जैसी पत्रिकाओं के प्रकाशन से ही इस जनवादी नववामपंथी कविता का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ था ।

जनवादी कविता हालांकि अपने मूल अर्थ में जनवादी कविता से तात्पर्य वर्ग विभजित समाज में जीवित आम जनता के विरुद्ध बनती सभी जन-विरोधी ताकतों के खिलाफ़ उठती बुलन्द कविता से है । जनता के साहित्य से अर्थ है, ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन मूल्यों को, जनता के जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करता हो, उसे अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता हो । इस मुक्तिपथ का अर्थ राजनीतिक मुक्ति से लगाकर अज्ञान से मुक्ति तक है । अतः जनता को क्रान्तिपथ पर मोड़नेवाला साहित्य, मानवीय भावनाओं का उदात्त वातावरण उपस्थित करनेवाला साहित्य, जनता का जीवन-चित्रण करने वाला साहित्य, मन को मानवीय और जन को

जन-जन करनेवाला साहित्य, शोषण और सत्ता के घमंड को चूर करनेवाले स्वातन्त्र्य और मुक्ति के गीतों वाला साहित्य जनवादी साहित्य है ।[54] फिर भी भिन्न भिन्न समयों में, भिन्न भिन्न देशों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों एवं चुनौतियों के अनुरूप इसका स्वरूप परिवर्तित होता गया है । इसलिए कभी यह सामन्तविरोधी, कभी सामन्तवाद-साम्राज्यवाद विरोधी तथा कभी सामन्तवाद, पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी रूप में लक्षित होता रहा है ।

विश्वमभरनाथ उपाध्याय वामपंथी याने जनवादी कविता को समकालीन कविता मानते हैं । उनकी दृष्टि में मौजूदा काल में जीने से कोई व्यक्ति समकालीन नहीं बनता है । जन-संग्राम में शामिल होना याने अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना ही सच्ची समकालीनता है ।[55] अतएव सक्रिय संघर्ष समकालीनता का पर्याय है । अक्षय उपाध्याय वामपंथी कविता को आज की कविता से जोड़ देते हैं, जिसे आज लोग लिख रहे हैं, जिनके पास समझ और साफ़ वैचारिक दृष्टि है । यह नए लोगों द्वारा नहीं, बल्कि नयी समझ द्वारा लिखी जा रही है ।[56] वशिष्ठ अनूप जनवादी कविता का विश्लेषण यों करते हैं "आज की परिस्थितियों में जनवादी काव्य से तात्पर्य व्यवस्था-विरोधी काव्य से है । उस व्यवस्था का विरोधी काव्य जिसमें नब्बे प्रतिशत की कमाई पर दस प्रतिशत लोग मौज कर रहे हैं, जहाँ मेहनत करनेवालों को उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता, जहाँ खून-पसीना, बहाकर उत्पादन करनेवाले लोग भूखों मरते हैं, जहाँ कपड़ा बनानेवाले नंगे रहते हैं, जहाँ मकान बनानेवाले खुद फुटपाथों पर सोते हैं, जहाँ बुढ़ापा बेसहारा रहने और बचपन होटलों की प्लेट धोने तथा भीख मांगने के लिए अभिशप्त है, जहाँ लूट-हत्या और बलात्कार की पूरी स्वतन्त्रता है, जहाँ ऊँची डिग्रियाँ लिये बेरोज़गारों की लम्बी फौज चप्पल चटकाते सड़कों और रोज़गार कार्यालयों में भटकने और परिवार एवं समाज की उपेक्षा झेलने के लिए मज़बूर है, जहाँ लोगों की ज़िन्दगी भेड़ियों की कृपा पर निर्भर है, जहाँ न्याय के मन्दिरों में पूँजी की देवी प्रतिष्ठित है, जहाँ देश के शासक निहित स्वार्थों के चलते देश को बेच देने के लिए आमादा हैं और जहाँ शोषकों को जनता का खून पीने तथा कुछ भी करने की पूरी आज़ादी है ।"[57] उन्होंने जनवादी कविता में जनवादी संस्कृति की प्रतिस्थापना की बात भी की है "दरअसल जनवादी कविता का आधार किसी राष्ट्र या देश की जनता का मुख्य जीवन प्रवाह होता है और इस जनता के अन्तर्गत किसी राष्ट्र या देश के निवासियों का मुख्यांश आता है जो समाज के प्रभुवर्गों के विपरीत अपने श्रम के आधार पर अपनी जीविका का निर्वाह करता है ।"[58]

जनवादी काव्य मुट्ठी भर शोषक-शासकवर्ग के प्रति विशाल शोषित

जन समुदाय की मुक्ति की उद्घोषणा है । जनवादी कविता साधारण जनता की ज़िन्दगी को उसकी समग्रता से प्रस्तुत करती है । अपने इसी व्यापक और पुष्ट जनाधार के कारण किसी भी समय तथा किसी भी युग में शासक व शोषक वर्गों के समक्ष चुनौती के रूप में यह कविता प्रस्तुत होती है । कुंवरपाल सिंह ने स्पष्ट बताया है "साहित्य और कला के क्षेत्र में शोषित, उत्पीडित वर्ग की भावनाओं, संकल्पों, सुख-दुख, जय-पराजय और संघर्षों की यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ बुर्जुआ संस्कृति के स्थान पर जनवादी संस्कृति की स्थापना वामपंथी जनवादी कविता में होती है ।"[59]

जनवादी कविता जनता के जीवन मूल्यों तथा जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित भी करती है । वह जनता को मुक्तिपथ पर अग्रसर कराने में भी समर्थ है ।[60] जो साहित्य शोषित पीड़ित जनता को आगे न बढ़ाये, जो उन्हें जुझारू बनाने के बजाय निराश बनायें, वह जन विरोधी साहित्य ही है । अतः यह निर्विवाद बात है कि जनवादी साहित्य का मूल उद्देश जनता को संघर्षशील चेतना से अभिभूत करना है ।[61] जनवादी कवि वर्गशत्रु की सही पहचान करने और कराने में समर्थ हैं । वे सामाजिक घटनाओं के अन्तर्विरोधों का सही मूल्यांकन करने में भी सक्षम हैं । उन्हें सामाजिक कुरीतियों से संघर्ष करने के साथ शोषण-चक्र के विरोध में संघर्षशील कविता का सृजन करना भी है । निखिल सन्यास ने इस सन्दर्भ में स्पष्ट किया है "जनवादी साहित्य-सर्जन एक आन्दोलन है । विरोधी शक्तियाँ बाधाएँ उत्पन्न करती हैं । कुछ समन्वयवादी गलत 'स्लोगन' देकर जनवादी साहित्य को बदनाम करने का प्रयास भी करते हैं । इस सम्पूर्ण प्रतिक्रिया को नाकाम करने के लिए अपने साहित्य की धार को और तेज़ करना होगा ।"[62] जनवादी कवि कविता को जीवन बदलाव का अस्त्र मानते हैं । संभ्रान्तवर्ग के सीमित दायरे से कविता को खींच लाकर आम जनता तक कविता को पहुँचाना उनका लक्ष्य है ।

जनवादी कवियों ने व्यक्ति की समस्या को सामूहिक परिप्रेक्ष्य में पहचान लिया है । उन्होंने नयी कविता को व्यक्ति केन्द्रित घोषित करते हुए नए सिरे से व्यापक सामाजिक यथार्थ की काव्ययात्रा शुरू की ।[63] इस दौरान उनको भीड़ से गुज़रना पड़ा, जुलूसों में भाग लेना पड़ा । उन्हें छायावादी वायवीय, अतीन्द्रिय अमूर्त चित्र कल्पना की उपेक्षा करते हुए जीवन-सम्पृक्त और मूर्त काव्याभिव्यक्ति की ओर अग्रसर होना भी पड़ा । अतः जनवादी कविता जीवन के नज़दीक आयी है । जनवादी कवि नभचारी नहीं, उनके पांव मिट्टी पर अड़े हैं । उन्होंने ज़िदगी को निकट से पहचान लिया है । जनवादी कविता में वैचारिक स्वर भी मुखर है । वह मस्तिष्क को आन्दोलित करती हुई 'सोचने को

विवश बनाती है । यह कविता वास्तविकता के अनेक पहलुओं को समेटकर चलती है । इसलिए ही पूरे देश-काल की बुनियादी चेतना को गहराई से आत्मसात् करने में यह सफल भी हुई है ।

जनवादी कविता में शोषक-शासक वर्गों की दमनकारी नीतियों का पर्दाफाश हुआ है । इसमें आज की भयावह ज़िन्दगी, खुरदरे यथार्थ, समस्याओं के जाल में चतुर्दिक घिरे मेहनतकश के शोषण तथा उसकी बदहाली का चित्रण हुआ है । इसमें जनता की आशाओं, आकांक्षाओं और वास्तविक आक्रोश की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है । यह कविता शोषकों का मनोबल तोड़ देने में तथा शोषित जनता के मन में विश्वास जगाने में सक्षम है । यह संशोधनवाद के खिलाफ़ मज़दूर-किसान संघर्ष के जीते जागते दस्तावेज़ है । कवियों ने तीखे शब्दों में साम्राज्यवादियों, संशोधन वादियों तथा प्रतिक्रियाशील शक्तियों की निन्दा की । उन्होंने हमेशा संघर्ष की राजनीति को जनता के यथार्थ जीवन के सन्दर्भ में ही मूल्यांकन किया ।

जनवादी कवि कभी भी किताबी मार्क्सवादी नहीं रहे । मध्यवर्गीय परिवार में पैदा होते हुए भी पारिवारिक संस्कारों से जल्दी ही उन्होंने अपने को मुक्त कर लिया था । खुद को बदलने के साथ उन्होंने अपने परिवेश को भी बदलना शुरू किया । वे चिन्तन की गहराई से अछूत तथा यथार्थ की पर्तों में न बैठनेवाले भावुक बुद्धिजीवी नहीं बल्कि सूझ-बूझ के आधार पर शोषित-पीड़ित जनता के पक्ष में खड़े मज़बूत शख्स हैं । वर्तमानकाल में, जनवादी नववामपंथी कविता मूल क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में श्रमिक वर्ग की भूमिका, मार्क्सवादी दलों और समाज़वादी राज्यों की प्रकृति और प्रभावशाली क्रान्तिकारी सिद्धान्त के रूप में मार्क्सवाद के मूल्यांकन पर आधारित है ।[64]

गजानन माधव मुक्तिबोध नववामपंथी कविता के मार्गदर्शक

आलोचकों ने अपनी अपनी निगाह से गजानन माधव मुक्तिबोध की कविताओं को पहचानने तथा परखने की कोशिश की है । इनकी कविता लावा है (प्रभाकर माचवे), यह कल होनेवाली घटनाओं की कविता है (परमानन्द श्रीवास्तव), मुक्तिबोध कवियों का कवि हैं, इसकी कविता अरक्षित जीवन की कविता है (रामविलास शर्मा), इनकी कविता का संसार कुल मिलाकर निषेध का निषेध है (नागवर सिंह), इनकी कविता अद्भुत संकेतों भरी कविता है (शमशेर) और इनकी समस्त कविताएँ एक बड़ी कविता लगती है (विष्णु खरे) आदि ।[65] कुछ आलोचकों की दृष्टि में मुक्तिबोध की कविताओं के चेहरे को पहचानने की कोशिश की है "कभी इसे रहस्यलोक के आधार पर, कभी बिम्ब-प्रतीक विधान की दृष्टि से, कभी आत्म-संशोधन के स्तर पर तो कभी आत्म-निर्वासन के स्तर

पर । इस तरह इनकी कविता को कभी सरल कहा गया है तो कभी जटिल, कभी सपाट तो कभी ठोस । आलोचकों की मान्यता यह है कि इनकी कविताओं के अनेक स्तर हैं दहशत, त्रास, खौफ़, घृणा-स्नेह, अकेलेपन, साथीपन, टूटने और जुड़ने का है । इसी तरह इनकी कविता में मानसिक तड़प, अकुलाहट और छटपटाहट है, सादगी और टेढ़ापन है, सरलता और जटिलता है, आस्था और अनास्था है, शंका और विश्वास भी है ।[66]

रामविलास शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध मूलतः रहस्यवादी और अस्तित्ववादी कवि हैं । रहस्यवादी इसलिए कि उनकी कविताओं में अनेक स्थानों पर भेदभरी अबूझ अनुभूति झलकने लगती है, अस्तित्ववादी इसलिए कि उनकी कविता अस्तित्व की व्यथा से परिपूर्ण है । उनपर मार्क्सवादी प्रभाव भी रामविलास शर्मा ने माना है, किन्तु साथ ही यह भी कहा है कि मुक्तिबोध रहस्यवाद और अस्तित्ववाद से मार्क्सवाद का समन्वय करने में असफल रहे हैं ।[67] शमशेर के शब्दों में "मुक्तिबोध ने छायावाद की सीमाएँ लाँघकर, प्रगतिवाद से मार्क्सी दर्शन लेकर, प्रयोगवाद के अधिकांश हथियार संभाल और उसकी स्वतन्त्रता महसूसकर, स्वतन्त्र कवि-रूप से, सब वादों और पार्टियों से ऊपर उठकर, निराला की सुथरी और खुली मानवतावादी परम्परा को बहुत आगे बढ़ाया ।[68] इन्द्रनाथ मदान के अनुसार निराला और मुक्तिबोध ने अपनी बलि देकर कविता को बचा लिया और पंत तथा अज्ञेय ने अपने को बचा लिया ।[69]

आमतौर पर 'आब्स्कयेर' कहलानेवाले मुक्तिबोध को गन-गाने ढंग से उछालने का प्रयत्न किया गया है । इसलिए सुविधानुसार अस्तित्ववादी, रहस्यवादी, गैर-मार्क्सवादी, भीड़-भाव का विरोधी आदि विशेषणों से अभिहित करने की कोशिश हुई है । वास्तव में ये वरिष्ठ आलोचक भूल जाते हैं कि मुक्तिबोध के कृतित्व की मूलप्रेरणा मार्क्सवाद है । गजानन माधव मुक्तिबोध ने जीवन-मूल्यों का चयन करने के लिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद या मार्क्सवाद की विश्वदृष्टि को स्वीकार किया था । उन्हीं के शब्दों में, मार्क्सवाद यथार्थ विकास का, मानव संज्ञा के विकास का दर्शन है ।[70] अध्यात्मवाद, व्यक्तिवाद, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा अस्तित्ववाद का खण्डन करनेवाली रचनाएँ लिखी गयी हैं । 'एक अरूप शून्य के प्रति' शीर्षक कविता में ईश्वर को असत्य घोषित किया गया है । मुक्तिबोध को जिस मुक्ति की चिन्ता है, वह आध्यात्मिक न होकर पूर्णतः भौतिक है ।[71] उन्होंने अस्तित्ववादियों को बनावटी दार्शनिक कहा है

"मत बनो दार्शनिक बनावटी
तुम क्या हो, कैसे हो, क्यों हो
इसका उत्तर
टीन के कनस्तर ही देंगे ।"[72]

पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी सभ्यता के प्रति मुक्तिबोध का दृष्टिकोण पूर्णतया मार्क्सवादी रहा है। 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' संग्रह की अनेक कविताएँ इस तथ्य का प्रमाण हैं । उनकी विश्वदृष्टि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी है और उनका जीवन आदर्श है जन-क्रान्ति द्वारा सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का आमूलचूल परिवर्तन ।

मुक्तिबोध निम्न-मध्यवर्ग की जीवन दृष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं । वे वर्ग-संघर्ष की आग में पड़कर क्रान्तिकारी अवधारणा को अपना चुके थे । वे सामयिक जीवन में गतिमान द्वन्द्वात्मक विभेदों के चुभते हुए अस्तित्व को सहकर और संघर्षों के आघातों को पूर्णतया झेलकर गठित होनेवाले प्रतिनिधिक व्यक्तित्व का उज्ज्वल नमूना है । मार्क्स और लेनिन की विचारधारा ने उनको प्रभावित किया था । मार्क्सवाद और लेनिनवाद मुक्तिबोध की आस्था है । इस प्रकार वे व्यक्ति की सीमा से निकल समाज के निकट आ गए, कल्पना के रंगीन आकाश से उतर जीवन के खुले विस्तृत आंगन में आ गए ।

मुक्तिबोध बनारस में 1945-46 में लगभग साल भर रहे थे । वहाँ वे कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यालय रोज़ जाते थे, बैठकों में शरीक़ होते थे और लेखकों के सम्मेलन बुलाए जाने पर जाया करते थे । वे कम्युनिस्ट पार्टी के राजनीतिक संगठन के भी सदस्य रहे थे । पार्टी कार्यालय में सैद्धान्तिक, राष्ट्रीय आदि समस्याओं पर जब विचार विमर्श चलता था, वे बराबर उपस्थित रहते थे ।[73] मुक्तिबोध मार्क्स के अध्येता एवं गम्भीर चिन्तक थे । उन्होंने मार्क्स के दर्शन का गहरी रुचि तथा आस्था से अध्ययन किया था । उसकी वैज्ञानिक दृष्टि ने उन्हें बहुत प्रभावित भी किया ।[74] इस प्रकार वे रचना के प्रति तथा आम जनता के प्रति प्रतिबद्ध रहे थे । 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' की भूमिका में शंशेर बहादुर सिंह ने यों लिखा है :"मुक्तिबोध ने साथियों, गरीब फटे-हाल भूखे और मुस्कुराते चेहरों से वास्तविक सम्पर्क स्थापित किया और उनसे घुल-मिलकर रहे ।"[75]

मुक्तिबोध की कविता में प्रतिबद्धता का स्वर मुक्तिबोध ने कविता का नया तेवर स्वीकार तो किया, लेकिन वे कलावाद के दर्शन के समर्थक कभी न बने, बल्कि वे मार्क्सवाद के दर्शन पर विश्वास करते थे और मानते थे कि देश की समस्याओं का हल इसी प्रकार से संभव है ।[76] वे काव्य में दर्शन की आवश्यकता पर बल देते थे । वर्तमान जीवन के वैषम्य और संघर्ष से प्राप्त ज्ञान को ही उन्होंने दर्शन का आधार माना था और जब यह दर्शन काव्य में आएगा वर्तमान का सामना करते हुए ही आएगा ।[77] उनका कहना था कि प्राचीन दर्शनों से हमें अपना मार्ग बनाने में सहायता मिल सकती है, किन्तु वे दर्शन आँख मूँदकर मान लेने

लायक नहीं है । जीवन के साथ जो झूठे आदर्श का रूप धर कर ढोया जा रहा है, वह अपनी मार से किसी की भी गर्दन टेढ़ी कर सकता है वर्तमान सबकी आँखों में प्रत्यक्ष है, लेकिन वर्तमान के ज्ञान का प्रस्थान बिन्दु सामान्य दृष्टि से ओझल है । मुक्तिबोध एक ओर उस विश्वदृष्टि से जुड़े थे, जो वर्गविषमता से उद्भूत सदियों पुराने सामाजिक दुर्गुण को दूर करने में सक्षम है, और दूसरी ओर कला की आन्तरिक आवश्यकताओं के ज्ञान से भी भली-भाँति परिचित थे । उनकी रचनाओं के पीछे भी यह विश्वदृष्टि है । वह मार्क्सवाद की देन ही है । देश व विश्व की शोषित जनता के प्रति मुक्तिबोध प्रतिबद्ध थे । भारत जन और विश्व जन के साथ किस रूप में और कैसे छल हो रहे थे इसका उन्हें ज्ञान था, उसके प्रति वे संवेदनशील थे । यही उनकी विश्वदृष्टि थी । मुक्तिबोध की मान्यता यह भी है कि वैज्ञानिक ज्ञान और संवेदन के संतुलन के बिना जीवन और जगत् को संपूर्णता में नहीं जाना जा सकता और न ही शोषण की परम्परा को खत्म किया जा सकता है ।

मुक्तिबोध-काव्य का केन्द्रीय संवेदन सर्वहारा है । इस सर्वहारा को उन्होंने बाहर भी देखा है और अपने भीतर भी । इसीलिए उनकी रचनाओं को जो नव सत्य सौंपा गया है वह भी उसी ने दिया है । यह सही है कि हमारे देश में मध्यवर्ग एक विशाल जन-समूह है । वह यथास्थिति से असन्तुष्ट भी है किन्तु अपने को सर्वहारा वर्ग के साथ प्रतिबद्ध न करके, खुद की 'भूल-गलती' से फंसा है । वह ऊपर उठ नहीं सकता, लुढ़कने को तैयार नहीं, अतः दिन-ब-दिन जर्जर होता जा रहा है । दिनों-दिन उसके सामने समस्याएँ विकराल रूप धारण करके आती जा रही हैं । यदि वह अपने को वैज्ञानिक चेतना से लैस करके देश के शोषित वर्ग के साथ प्रतिबद्ध कर ले, तो समस्याओं के तर्कसंगत हल ज़रूर निकल आ सकता है । यह सही है कि प्रतिबद्धता और वर्ग चेतना के अर्थों की गहरी ज्वालाएँ मुक्तिबोध की दार्शनिक अवधारणाओं को समझने के लिए सहायक हैं ।

मुक्तिबोध की बहुचर्चित कविता 'अंधेरे में' का प्रारंभ तो अंधेरे से होता है किन्तु उसकी यात्रा प्रकाश की ओर है । इस कविता का वाचक व्यक्तित्वान्तरित होने से पूर्व अंधेरे में है । भीतर और बाहर का अन्धकार उसे सामाजिक दायित्वों से अवगत नहीं होने देता । वह एक मध्यवर्गीय परिवार का संघर्षशील मनुष्य है । वह अपना वर्गापसरण कर सर्वहारा के साथ मिल जाने की प्रक्रिया में अपने को धीरे-धीरे डालता है । उसका व्यक्तित्वान्तर उस 'रहस्यमय व्यक्ति' या सर्वहारा वर्ग को जानने तथा उससे प्रतिबद्ध होने पर ही सम्भव हो सकता है । उस वर्ग की विचारधारा का वाहक उसे उसका सही रूप बताना चाहता है । इस वर्गविचारधारा का स्वरूप मुक्तिबोध के काव्य में 'संवेदनात्मक ज्ञान' और

'आत्मचैतन्य के प्रकाश' आदि के भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त किया गया है ।[78] 'कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध उन लोगों को कड़ा जवाब देते हैं जो सिर्फ सफलता की आँख से दुनिया को निहारते हैं । जो सफलता प्राप्त करने के लिए सियार या भूत बन जाते हैं । इस कविता में मुक्तिबोध तथाकथित सफलता पाने के लिए बेचैन उन बुद्धिजीवियों को ललकारते हैं जो सामाजिक महत्व की गिलैरियाँ खाते हुए, असत्य की कुर्सी पर आराम से बैठे हुए, मनुष्य की त्वचा का ओवरकोट पहने बन्दरों व रीछों के सामने नयी-नयी अदाओं में नाचते हैं

"राजनीति, साहित्य और कला के प्रतिष्ठित महासूर्य
बड़े-बड़े मसीहा
सरकस के जोकर-से रिझाते हैं निरन्तर
नाचते हैं, कूदते हैं
शोषण में सिद्धहस्त स्वामियों के सामने
चुपचाप आदर्शों को बाजू रख या भूलकर अवसरवादी
बुद्धिमत्ता ग्रहण कर
औ, जिन्दगी को भूलकर
बिल्कुल बिक जाते हैं ।"[79]

इन यशलोभी बुद्धिजीवियों को मुक्तिबोध ने 'पूंजीवादी' मध्यवर्गीय बुद्धिशील अवसरवादी केकड़ा आदि कहा है । वे इन्हें वर्गशत्रु भी कहते हैं ।

मुक्तिबोध के काव्य में श्वेत-रंग, शोषण परम्परा से जुड़े सफ़ेदपोश मध्यवर्ग की विचारधारा के अर्थ में कई बार प्रयुक्त हुए हैं । शोषण परम्परा 'टगर' है और उसकी 'एन्टी थीसिस' लालफूलों वाली 'कन्हेर' नयी विचारधारा की प्रतीक है । 'ब्रह्मराक्षस' विचारशील किन्तु अप्रतिबद्ध और सिन्सियर किन्तु अकर्मण्य बुद्धिजीवी है जो गम्भीर आक्रोश से जन, समाज और राजनीति की समस्याओं का अपना गणित करता हुआ मर जाता है । 'ओरांग उटाँग' हिपोक्रसी और व्यक्तिवाद का प्रतीक है । 'ओरांग उटांग' मन के भीतर है 'ब्रह्मदेव' का प्रभुत्व समाज में है । इस ब्रह्मदेव की छत्रछाया में धनवान् अधिक धनवान् होते जाते हैं और 'निर्धन' एक-एक सीढ़ी नीचे गिरते जाते हैं । 'लकड़ी का बना रावण' पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है । मुक्तिबोध ने 'एक साहित्यिक की डायरी' में इस रावण का अर्थ स्पष्ट कर दिया है । पूँजीपति वर्ग को विश्वास है वह 'सर्वतन्त्र' और 'सत्-चित्' है । जब पूँजीवादी व्यवस्था को खतरा पैदा हो जाता है तब वह फासिस्टों जैसा प्रचार करता है कि

"समुदाय, भीड़
डार्क मासेज़ ये मॉब हैं

श्यामवर्ण मूढ़ों के दिमाग
खराब हैं ।"[80]

व्यवस्था का रावण अपनी राज्य-सत्ता की तमाम दमनकारी शक्तियों का आह्वान करता है कि

"प्रहार करो उनपर
कर डालो संहार !!"[81]

किन्तु इस दमन के बावजूद एक समय आता है जब वह रावण सब ओर से घिरा होता है । मुक्तिबोध ने क्रान्ति को 'सूर्यकन्या' माना है । 'ब्रह्मराक्षस' कविता में उन्होंने 'सूर्य' और 'चन्द्र' के प्रतीकों का एक साथ, एक दूसरे के एन्टीथीसिस के रूप में प्रयोग किया है

"रवि निकलता
लाल चिन्ता की रुधिर सरिता
प्रवाहित कर दीवारों पर,
उदित होता चन्द्र
व्रण पर बाँध देता
श्वेत धौली पट्टियाँ
उद्विग्न भालों पर ।"[82]

यहाँ 'सूर्य' समाजीकरण के विचारपुंज का प्रतीक है, जिससे क्रान्ति का चिन्तन 'रुधिर सरिता' बनकर सर्वत्र प्रवाहित हो उठता है । 'चन्द्र' रूपी पूँजीवादी व्यवस्था उस समाजवादी विचारक को तनाव हीन करने के लिए उसे शान्ति पुजारी सफ़ेदपोश मध्यवर्गीय व्यक्ति बनाने की कोशिश करती है । श्वेत धौली पट्टियाँ बाँधने का यही तात्पर्य है । 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता में स्पष्ट तौर पर 'चाँद' का तात्पर्य पूँजीवाद है । बिम्बविधान से ही यह ध्वनि निकलती है

"चाँदनी की फैली हुई सँवलाई झालरें ।
कारखाना अहाते के उस पार
कल-मुँही चिमनियों के मीनार
उद्गार चिह्नाकार ।"[83]

शोषक प्रतिक्रियावादी वर्ग भौतिक उत्पादन-साधनों पर ही नहीं, विचार-उत्पादन के साधनों पर भी प्रभुत्व जमाए रहता है । इस गुलामी से मुक्ति वर्गचेतस् होने से ही सम्भव है । वर्गचेतना शोषित वर्ग को प्रतिबद्ध बनाती है और प्रतिबद्धता ही मिथ्या-चेतना से मुक्ति दिलाती है । मिथ्या-चेतना से मुक्त हुए बिना कविता ही क्या जीवन के किसी भी पक्ष की वैज्ञानिक समीक्षा नहीं हो सकती ; सत्य को नहीं जाना जा सकता। पूरी संकुलता की तो बात छोड़िए, अधूरे सत्य का साक्षात्कार भी नहीं हो सकता ।[84]

पूँजीवादी युग के पहले मानव को शासक वर्ग की मिथ्या-चेतना का शिकार रहना पड़ता था । पूँजीवादी युग में उसके 'एन्टीथीसिस' मार्क्सवाद ने इस मिथ्या-चेतना का अहसास लोगों को करा दिया । इसका फल यह हुआ कि पूँजीवादी युग में रहते हुए भी सचेत कलाकारों ने अपने को विकासशील शक्तियों से जोड़ा, अपनी मध्यवर्गीय अस्मिता का विलय करके वे उस विशाल जन समूह में मिल गए जिसे चन्द लोगों ने अधिकारविहीन करके मात्र श्रम का यन्त्र बना दिया है और जो छल-बल से शोषणविहीन मानव समाज के बनने में रोड़ा अटका रहे हैं ।[85] पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ़ मुक्तिबोध का सारा साहित्य एक हुंकार है । ओमप्रकाश अग्रवाल ने लिखा है कि यदि आधुनिक साहित्य में कोई कवि अपने आस-पास के सामाजिक दबावों से घिरा हुआ रहकर उनकी सम्पूर्ण वास्तविकता को झेलता है तो वह है मुक्तिबोध ।[86] आज के वातावरण में पलनेवाले व्यक्ति के अन्दर कई स्तरों पर चल रहे संघर्ष की तथा इसके साथ ही बाह्यजगत् की द्वन्द्वपूर्ण हालत् की सबसे सघन अभिव्यक्ति संभवतः उनकी 'अन्धेरे में' कविता में हुई है । यहाँ हम देखते हैं कि भीत के फूले हुए पलस्तर गिर पड़ते हैं और एक बड़ा चेहरा बन आता है, तिलस्मी खोह का शिलाद्वार धड़ से खुलता है और 'रक्ता-लोक स्नात पुरुष एक' साक्षात् रहस्य-सा सामने आता है, खोह के भीतर तेजस्क्रिय ।[87] कर्मनिष्ठ जन-जन्या क्रान्ति की आग को भारत में भभकाने के लिए कवि चिन्तित दिखाई देता है

"मेरे सामने है प्रश्न
क्या होगा, कहाँ, किस भाँति
मेरे देश भारत में
पुरानी हाय में से
किस तरह आग भभकेगी
उड़ेंगी किस तरह भक् से
हमारे वक्ष पर लेटी हुई
विकराल चट्टानें ?[88]

मुक्तिबोध क्रान्तिकारी चेतना को निर्णायक स्वर देते हुए सारे पुराने गढ़ों और मठों को तोड़ने के संकल्प को दृढ़ता से दुहराते हुए लिखते हैं

"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको

तीली झील की लहरीली धाहें
जिसमें कि प्रतिपल कांपता रहता अरुण कमल एक ।"[89]

क्रान्ति के लिए सर्वाधिक मूल्यवान् तत्व है बलिदान की भावना । क्रान्तिकारियों को सुविधाएँ त्याग कर खतरे उठाने होंगे । बलिदान जैसी आदर्श एवं स्वार्थ-सुखेच्छा जैसी निम्न-भावनाओं के द्वन्द्व ने मुक्तिबोध की 'मूल गलती' 'एक अन्तर्कथा' 'इस चौडे ऊँचे टीले पर' 'चम्बल की घाटी में' , जैसी अनेक रूपक कन्याओं को जन्म दिया है । 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन' में बलिदान का उच्चादर्श प्रस्तुत किया गया है । 'अन्धेरे में' शीर्षक कविता में भारत की उग्र क्रान्ति का एक लम्बा स्वप्न प्रतिबद्ध कवि मुक्तिबोध ने देखा है । उन्होंने अकेली आग को देखकर खीझ प्रकट की है

"परन्तु, यह भी तो सच है कि ऐसी
समस्त अग्नियाँ, अकेले में जलती हुई
करती हैं अपनी ही
ऐसी की तैसी !!"[90]

उग्र क्रान्ति के स्वप्न में कवि जन-संगठन का चित्र भी देखते हैं:-

"साथ-साथ घूमते हैं, साथ-साथ रहते हैं
साथ-साथ सोते हैं, खाते हैं, पीते हैं
जन-मन उद्देश्य ।"[91]

संगठन के लिए यह आवश्यक है कि क्रान्तिकारी यश-लिप्सा से दूर रहकर अपने-आप को 'एक आयुध' मात्र साधन समझें । मुक्तिबोध स्वप्न में देखते हैं

"आ गए तुम्हारी अनुपस्थिति में लोग
प्रतीक्षा जिनकी थी
ले गए ज्वलत्-द्युति प्रस्तर-धन ;
अब उन रत्नों का अर्थ दीप्त होगा
उनका प्रभाव घर घर में पहुँचेगा फिर से ।"[92]

यह निर्विवाद बात है कि गजानन माधव मुक्तिबोध ने विषय के सही चुनाव में मार्क्सवादी वैज्ञानिक विश्वदृष्टि की सहायता ली है । यही चुनाव उन्हें प्रतिबद्ध कला की उत्तुंगता प्रदान कर सका है । प्रतिबद्धता के संवेदनात्मक उद्देश्य ने उनकी सारी कविताओं को एकसूत्र में बाँध दिया है । वे अलग न होकर अन्तर्सम्बन्धित का रूप धारण करती हैं । 'कांटेण्ट' के स्तर पर उनकी वर्गापसरण की 'थीम' हिन्दी जगत् के लिए ही नहीं, समस्त विश्व साहित्य तक के लिए मौलिक है । उन्होंने इस 'थीम' को विभिन्न आयामों, नाटकीय भंगिमाओं तथा पूरे अन्तर्द्वन्द्व के साथ कलात्मक रूप दिया है । यह थीम मात्र कला के लिए नहीं, जीवन में

उतारने के लिए है । भारत का मध्यवर्गीय पाठक अपने को प्रतिबद्ध बनाकर शोषण विहीन समाज की स्थापना के लिए एक सक्रिय भूमिका अदा कर सकता है । मुक्तिबोध अपने पाठक को सन्देश के रूप में अपनी कला द्वारा यही रत्नराशि दे जाते हैं जिससे मध्यवर्ग अपनी मिथ्याचेतना को त्यागकर उदीयमान् भविष्य की शक्तियों के साथ प्रतिबद्ध हो जाए ।[93]

गंगाप्रसाद विमल के मतानुसार गजानन माधव मुक्तिबोध का सृजन नहीं है अपितु वह एक पीढ़ी का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है । आधुनिक हिन्दी कविता में अपने समय की क्रूरताओं से साक्षात् की कविता सिर्फ़ मुक्तिबोध की कविता है, एक अर्थ में वह विलास की नहीं 'जन-चेतना' की कविता है ।[94] मुक्तिबोध लोकहितवादी चेतना के कवि हैं । उनकी कविताओं का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है । उनकी कविताएँ छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिवाद के सांचों से सर्वथा भिन्न अपना मौलिक व्यक्तित्व रखती हैं । 'अज्ञेय' 'गिरिजाकुमार माथुर' 'शमशेरबहादुर सिंह' 'त्रिलोचन', 'नरेश मेहता' 'माचवे' 'कुंवर नारायण' आदि के कृतित्व का भी व्यक्तित्व है, लेकिन मुक्तिबोध इन सबमें अकेले और अलग नज़र आते हैं । व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की वैज्ञानिक व्याख्या और उनकी काव्यमय अभिव्यक्ति उनकी कविताओं का अन्तर्मन है। वे अपने बाहरी और भीतरी विश्व से पूरी तरह प्रतिबद्ध हैं ।[95] राजनीति और कविता को वे सांस्कृतिक विकास में योगदान के लिए सहगामी मानते थे । कलाकार को मुक्तिबोध एक कार्यकर्ता के रूप में मानते हैं । मुक्तिबोध जानते थे कि आधुनिक जीवन के अभिशापों को मिटाने के लिए सांस्कृतिक स्तर पर कलाकार और कला का भी एक दायित्व है । इसीलिए वे लेखन कार्य को एक नियोजित, सचेत, सप्रयत्न कर्म मानते हैं । उन्होंने हिन्दी के प्रतिबद्ध-साहित्य को जो जीवन और गति दी है, उसे भुलाया नहीं जा सकता । यह निर्विवाद बात है कि गजानन माधव मुक्ति बोध अवश्य जनवादी प्रतिबद्ध नववामपंथी कविता के मार्गदर्शक हैं ।

—

निष्कर्ष

** सभी पूर्ववर्ती काव्यान्दोलनों जैसे प्रगतिवादी, प्रयोगवादी नयी कविता, नकेन कविता, अकविता, भूखी पीढ़ी कविता आदि की प्रतिक्रिया के रूप में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र के थपेड़ें खाकर नववामपंथी याने जनवादी कविता की शुरुआत हुई ।

** गजानन माधव मुक्तिबोध जनवादी प्रतिबद्ध कविता के पथ-प्रदर्शक हैं ।

** नववामपंथी जनवादी कविता की पृष्ठभूमि रूस की समाजवादी क्रान्ति, चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति तथा नक्सलबाड़ी व तेलुंगाना की भूमि क्रान्ति याने कृषिक्रान्ति है ।

** मार्क्स, लेनिन और माओ का चिन्तन प्रतिबद्ध जनवादी कविता का प्रेरणा स्रोत है ।

****
***
**
*

iii

नववामपंथी कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता

मार्क्सवाद के अनुसार भाव समाज के आर्थिक ढांचे का प्रतिबिम्ब है। वह वर्गीय हितों की अभिव्यक्ति भी है। जिस प्रकार श्रम-सभ्यता में मनुष्य भौतिक उत्पादन करता है, उसी प्रकार भाव-संस्कृति में बौद्धिक उत्पादन होता है।[1] मनुष्य वास्तविक और सक्रिय मनुष्य ही अपने भावों, धारणाओं और विचारों इत्यादि के उत्पादक हैं। भौतिक ज़िन्दगी में उत्पादन का ढंग ही साधारणतया मनुष्यों की बौद्धिक ज़िन्दगी को निर्धारित करता है। अतः मनुष्य की चेतना उसकी सत्ता को निर्धारित नहीं करती है, उल्टे उसकी सामाजिक सत्ता ही उसकी चेतना को निर्धारित करती है।[2] वस्तु से चेतना रूपायित हो जाती है और चतना वस्तु को रूपान्तरित करती है।[3] मार्क्सो की दृष्टि में वस्तु ही चेतना है और चेतना ही वस्तु है। वस्तु और चेतना अन्तर्ग्रथित है।[4] दरअसल भौतिक सम्बन्धों और बौद्धिक संबन्धों में द्वन्द्वात्मकता है। मनुष्य को भौतिक सक्रियता तथा भौतिक आदान-प्रदान अर्थात वास्तविक ज़िन्दगी के साथ ही भावों, विचारों और चेतना की सृष्टि अन्तर्ग्रथित रहती है। याने भावों, विचारधाराओं तथा अभिव्यंजनाओं की सीमा भी सामाजिक वातावरण से सीमित होती है और उनकी प्रकृति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वर्गीय प्रवृत्तियों के मुताबिक होती है।[5] समाज का वातावरण वर्गीय अभिरुचियों से ओत-प्रोत होने के कारण तथा कवि का किसी वर्ग का सदस्य होने के कारण तथा कृतियों का किसी विशेष ऐतिहासिक युग में प्रणयन होने के कारण भावों की दिशा भी इनसे संचालित होती है। दरअसल कला की बीज वस्तुओं का प्रधान स्रोत सामाजिक जीवन है। सामाजिक जीवन से कट जाने पर उसे न तो जीवन्त संवेदनायेंही प्राप्त होती हैं, और न अनुभव, भाव या विचार। निष्कर्षतः समाज की अन्तर्वस्तु ही कविता या कला की वस्तु है। उत्पादन तथा पुनरुत्पादन समाज की अन्तर्वस्तु है। अतः कविता की वस्तु उत्पादन सम्बन्ध पर निर्भर है।[6]

किसी भी कलाकृति का निर्णायक व नियामक तत्व वस्तु याने कंटेन्ट है। इस वस्तु तत्व के अनुकूल ही रूप तत्व याने फॉर्म का रूपायन होता है। मार्क्सवादी समीक्षक कलाकृति में निहित सामाजिक सार को विश्लेषित करने के बाद ही रूप तत्व की ओर आते हैं। अब प्रश्न है कि व्यावहारिक विवेचन के अन्तर्गत मार्क्सवादी साहित्य चिन्तक किसे प्राथमिकता देते हैं। इस मुद्दे पर मार्क्सवादी विचारकों की दृष्टि एकदम

साफ़ है । सभी ने कला या साहित्य के अन्तर्गत वस्तु तत्व की प्रमुखता स्वीकार की है । प्लेखनॉव ने वस्तुतत्व को ही कला और साहित्य के नियामक तत्व की संज्ञा दी है । उनका अभिमत है कि वस्तु के अभाव में कला का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है । वस्तु तत्व कला एवं साहित्य का नियामक तत्व है । कला-कृति को उसी के माध्यम से पहचाना जा सकता है । लगभग इसी प्रकार के विचार कॉड़वेल ने भी प्रस्तुत किए हैं । उन्होंने सामूहिक भाव को ही कविता के सत्य के रूप में मान्यता प्रदान की है । वस्तु तत्व की प्रमुखता का सर्वाधिक सशक्त प्रतिपादन हमें लूनाचारस्की के चिन्तन में दिखाई पड़ता है । उन्होंने उसे साहित्य एवं कला का निर्णायक तत्व माना है । इतना ही नहीं वस्तु की नव्यता तथा मौलिकता पर भी खास बल दिया गया है । राल्फ फॉक्स तथा हावर्ड फास्ट ने भी वस्तु तत्व की वरीयता स्वीकार की है । हावर्ड फास्ट के अनुसार वस्तु तत्व के अभाव में साहित्य या कला का जीवित रहना उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार भीतरी मनुष्य के अभाव में उसका बाह्य शरीर का साँस लेना नामुमकिन है । अन्सर्ट फिशर ने वस्तु और रूप तत्व पर विस्तार से विचार किया है, और वस्तुतत्व के निर्णायक तथा प्राथमिक महत्व को स्वीकृति दी है ।

सामाजिक व्यवस्था के बदलने के साथ-साथ वस्तु तत्व में भी परिवर्तन आता है । इसलिए वस्तुतत्व के समुचित अध्ययन के लिए समाज-व्यवस्था का अध्ययन भी अपेक्षित है । दरअसल सामाजिक स्थिति या परिवेश ही भावतत्व है । अतः कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता का विश्लेषण के लिए तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश का आकलन अवश्यंभावी हो जाता है । यह अध्याय वस्तु या भाव सम्बन्धी उपरोक्त मार्क्सीय विचारधाराओं के धरातल पर वामपंथी जनवादी कविता के भावपक्ष विशेषकर कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता का विश्लेषण करने की विनम्र कोशिश है ।

अ) समाज की दुर्दशा का पर्दाफाश:- आधुनिक भारतीय समाज इतना विकराल हो गया है कि उसमें आदिम बर्बर समाज की खासियतें ही नज़र आती हैं । यहाँ ईमानदारी और सच्चाई का कोई मोल नहीं है । असल में ऐसा वक्त आ गया है कि सच को भी सबूत के बिना बचाना मुश्किल है । कवि धूमिल अपने देश की बुरी हालत का यों पर्दाफाश करते हैं:-

हिमालय से लेकर हिन्दमहासागर तक
फैला हुआ
जली हुई मिट्टी का ढेर है
जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब
नफ़रत है
साजिश है

अंधेर है
यह मेरा देश है ।[7]

नफ़रत और साजिश भरे इस देश में कवि वेणुगोपाल ने कमरे की खिड़कियाँ बन्द करके खुद को सनातन कैदी घोषित किया है । कवि के शब्दों में-

'मेरे भीतर मेरे औसत हिन्दुस्तानी
होने ने ज़ोर मारा था
मैं ने अपने ही घर की छत को नकारा था एक
खाली आकाश को स्वीकारा था
कमरे की
खिड़कियाँ बन्द करके खुद को
सनातन कैदी घोषित किया था
माँ के बूढ़े
जिस्म की तुलना भारत माता से
की थी और
दोनों को रद्द कर दिया था ।[8]

भारतीय सामाजिक जीवन की ऐसी अशोभित स्थिति हो गयी है कि स्नानघाट पर जाता हुआ हर रास्ता देह की मंडी से होकर गुज़रता है ।[9] हर ईमान का एक चोर दरवाज़ा होता है जो सण्ड़ास की बगल में खुलता है ।[10] लीलाधर जगुड़ी के अनुसार 'यह कायरों का देश है ।[11] सामाजिक जीवन का विघटन इतना हो चुका है कि साहसिकता, आत्मविश्वास, ईमानदारी और विवेक कहीं खो गए हैं । धूमिल के ही शब्दों में:

'मैं ने अहिंसा को
एक सत्तारूढ़ शब्द का गला काटते हुए देखा
मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेबें
भरते हुए देखा
मैंने विवेक को
चापलूसों के तलवे चाटते हुए देखा ।[12]

भारत के उच्चतर वर्गों के बहुत से कर्णधार ठेठ पश्चिमी साम्राज्यवादी विचारधाराओं को अपनाकर उनका प्रचार करते हैं । उन विचारधाराओं और दृष्टिबिन्दुओं का प्रचार साहित्य में भी होता है, छोटे या मँझोले मध्यवर्ग के महत्त्वाकांक्षी लेखक पद और प्रतिष्ठा के लोभ से उन्हीं के दरवाज़े जाते हैं, उन्हीं से सामंजस्य स्थापित करते हैं और जाने या अनजाने साहित्य में उन्हीं उच्चतर वर्गों की अद्यतन राजनीतिक, सांस्कृतिक मनोवृत्तियों के, उन्हीं के प्रभावों और विचारों के, उन्हीं की दृष्टियों और भावों के संवाहक बन जाते हैं । इस सड़ी गली सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था में आदमी स्वार्थी एवं बेईमान हो जाय तो कोई

अतिरंजित बात नहीं । कवि देखते हैं कि कोई, पराए आदमी का झुलसा हुआ चेहरा नहीं देखता । कोई किसी का खाली पेट नहीं देखता । हर आदमी सिर्फ़ अपना धंधा देखता है । सबने भाईचारा भुला दिया है । सबको अपनी बीवी और बच्चे का ख्याल है । कवि वेणुगोपाल की दृष्टि में सुरक्षा की चिन्ता खतरा है । कमरे में समंदर होता है ।

कमरा
तुम्हारे लिए एक सम्पूर्ण सुरक्षा है ।
सदा सुरक्षित रहने की चिन्ता
तुम्हें असुरक्षित करती है । तुम
अपने से बाहर रहने को अभिशप्त हो
क्योंकि तुम
सदा सर्वदा
अपने कमरे के भीतर रहना चाहते हो
कमरे में बैठे आदमी के लिए
सब बराबर है
फायरिंग-लाठीचार्ज हो या औरतों की आवाज़
ही
× × × × × × ×

सुरक्षा की चिन्ता
आदमी को कैंची बना देती है ।'[13]

जनवादी प्रतिबद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं में सामाजिक ज़िन्दगी की सारी विड़म्बनाओं, विसंगतियों तथा मिथ्याड़म्बरों को बेनकाब किया है । कवि अपने युगीन जीवन की मूल्यहीनता से आक्रान्त हैं । मात्र बाहरी सच्चाई से नहीं बल्कि आन्तरिक तनावग्रस्त ज़िन्दगी से भी वामपंथी कवि अत्यन्त परेशान हैं । उदाहरणार्थ वेणुगोपाल की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:

'तो मैं परेशान इसीलिए हूँ कि लोग
खून और स्याही का फर्क
समझ नहीं पा रहे हैं और मेरी
सर से पांव तक ईमानदार कविता को
बेईमान घोषित कर रहे हैं
मैं परेशान इसीलिए नहीं हूँ कि गलियों में
सन्नाटे की तहें टूटने लगी हैं ।'[14]

सर से पांव तक ईमानदार कविता से प्रेरणा प्राप्त कर सड़ीगली सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध लड़ने के लिए कोई हमदर्दी भी कवि को नहीं मिली । स्वाभाविक नतीजा है कि साहस, क्रान्ति तथा विद्रोह की चमड़ी खुरचने पर अक्सर ही बुज़दिली, खुदगर्जी और टुच्चाई से मुलाकात होती है ।[15] कवि की आवाज़ बौखलाहाट के रूप में परिणमित हो जाती है । कवि

देवेन्द्रकुमार लिखते हैं:

'हर चीज़ को मैंने
एक नए सिरे से टटोला है
किसी ने मेरे लिए कोई सुरक्षित शब्द-भंडार
नहीं खोला है
न जनता, न नेता ।'[16]

यहाँ के लोग भेड़ियों की जुबान पर जीते हैं । धूमिल देश की व्यक्तित्वहीन जनता की ओर इशारा करते हैं:

'जनता क्या है?
एक शब्द. .सिर्फ़ एक शब्द है
कुहरा और कीचड़ और काँच से
बना हुआ
एक भेड़ है
जो दूसरों की ठंड के लिए
अपनी पीठ पर ऊन की फ़सल ढो रही है
एक पेड़ है
जो ढ़लान पर
हर आती जाती हवा की जुबान में
हाँ. .हाँ. .हाँ. हाँ करती है ।[17]

सब ने अपनी असली जीभ का इस्तेमाल बंद कर दिया है । कोई भी कुछ कहकर फंसना नहीं चाहता ।[18] कवि जगूड़ी इसी व्यक्तित्वहीन हालत से उबरने का आह्वान् जनता से करते हैं:

'इसलिए हरेक आदमी के पास
एक स्वतन्त्र जुबान होनी चाहिए
जिससे वह एक स्वतन्त्र बात कह सके ।[19]

जनता के अलावा यहाँ के बुद्धिजीवी भी चेहरेविहीन और आवाज़हीन हैं । बुद्धिजीवी अपनी उदरपूर्ति के सम्बन्ध में ही सोचते रहते हैं । बुद्धिजीवी होने का दावा करनेवाले प्रोफ़सर और विश्वविद्यालय के अध्यक्ष अपनी पदोन्नति और वेतनवृद्धि की सोच में डूबे हुए हैं ।[20] और स्यूडो बुद्धिजीवी समाज को इधर-उधर भटका रहे हैं । वे साम्राज्यवादी देशों के शासकों के एजन्ट भी हैं ।[21] ये सचमुच पूंजीवादी, छल-कपट व दिखाने-बहाने के कमज़ोर पुर्जे हैं । महत्वपूर्ण सामाजिक भूमिका अदा करने में ये कभी सक्षम नहीं होंगे । व्यक्ति से समाज की ओर चलने का संस्कार आज के अधिकांश बुद्धिजीवियों में पनपा ही नहीं ।[22] यही बात धूमिल भी कहते हैं:

'सबसे अधिक हत्याएँ
समन्वयवादियों ने की

दार्शनिकों ने
सबसे अधिक जेवर खरीदा । [23]

ये दार्शनिक लोग दिखावे के लिए बड़ी बड़ी बातें करते हैं । उनके भाषण में जोश है । रामदरश मिश्र ने जीवन की झुलसती सच्चाइयों से दूर हटकर वसन्त की प्रतीक्षा में शीश महलों में गुमसुम बैठे बुद्धिजीवियों की निष्क्रियता पर व्यंग्य करते हुए लिखा है

'बन्द कमरों में बैठकर
कब तक प्रतीक्षा करोगे वसन्त की ?
सुनो
वसन्त लोहे के बन्द दरवाज़ों
पर हाँक नहीं देती
वह शीशे की बन्द खिड़कियों के भी भीतर
नहीं झाँकता
वह सजी हुई सुविधाओं की महफ़िल में
अहिस्ता-अहिस्ता आनेवाला राजपुरूष नहीं है
और न वह रिकार्ड है
जो तुम्हारे हाथ के इशारे पर
तुम्हारे सिरहाने बैठकर गा उठेगा । [24]

कवि ने जान लिया है कि यहाँ कायरता के चेहरे पर सबसे ज़्यादा रक्त है । सबको पूँजीवादी दिमाग ने फेर रखा है । सब के सब मतलब की इबारत से होकर व्यवस्था के पक्ष में चलने के लिए बेबस हैं । इस दुर्दशा से छुटकारा इसलिए नहीं, क्योंकि लोगों के पास, एक पूंजीवादी दिमाग है जो परिवर्तन तो चाहता है मगर अहिस्ता-अहिस्ता । यहाँ के सारे बुद्धिजीवी तिजोरियों के दुभाषिए हो गए हैं । वर्तमान दुर्दशा से पीड़ित होकर धूमिल लिखते हैं:

'हरेक को आवाज़ दी है ।
हरेक का दरवाज़ा खटखटाया है
मगर बेकार
उन्होंने जिसकी पूँछ उठायी है
उनको मादा पाया है ।
सब के सब तिजोरियों के दुभाषिए हैं । [25]

यहाँ के वकील, वैज्ञानिक, अध्यापक, दार्शनिक, नेता आदि कानून की भाषा बोलनेवाले अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है । कवि को कोई हमदर्द चेहरा नहीं मिला है । अन्त में कवि बौखला उठते हैं:

'हर तरफ़
शब्दवेधी सन्नाटा है
दरिद्र की व्यथा की तरह ।

घृणा में
डूबा हुआ सारा का सारा देश
पहले की तरह आज भी मेरा कारागार है । [26]

इस कारागार में सब मौकापरस्त हो गए हैं । सारे के सारे कायर और मुखौटाधारी हैं । विकराल जीवन में वे चुप्पी साधने में मज़बूर हो जाते हैं । लीलाधर जगूडी इसकी ओर संकेत करते हैं:

'हर आदमी कहीं-न-कहीं चोर है
पिछले साल मैंने एक नारा लगाया था
तुरन्त दुकानदार ने मुझे अन्दर बुलाया
और जास्ती राशन देकर एक सिगरेट
पिलाया ।[27]

वर्तमान की भीषण स्थिति का अहसास कवि को कभी कभी होता है । इसलिए ही वह अनुभव करते हैं कि किसी खौफ़नाक घटना की प्रतीक्षा में सब कहीं सन्नाटा छाया हुआ है । वह सन्नाटा चेहरों पर भी उतर आया है । एक पत्ता हिलता नहीं ।

देश की अमानवी-व्यवस्था में चालाक और मज़बूत लोग साजिशों से छायादार आलीशान अट्टालिकाओं में विराजते हैं । गरीब और भूखे लोग उन महलों की आड़ को आसरा समझते हैं । वेणुगोपाल देश के दलित पीड़ित लोगों की बुरी हालत का अनावरण करते हैं:

फ़ैसलों का वक्त आ गया है
और
अगर
अब भी
अपने सपनों को
शब्दों में
बदलते रहोगे तो
पाओगे
एक दिन
कि
तुम्हारी स्वप्नहीन आँखें
पतझर में गिरे पत्तों की तरह
हवा के साथ उड़ रही है । [28]

हर आदमी का भविष्य धुँधला बन जाता है । उसकी इच्छा टूट जाती है । चन्द्रकान्त देवताले के शब्दों में

"बाहर पत्तियाँ टूट रही हैं पतझर के
आकाश में
पत्तियों के साथ इच्छाएँ भी । [29]

ऐसी व्यवस्था में भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क रोटी है । और रोटी के लिए भेड़ियों को भी भाई कहने को वह विवश हो जाता है । एक ओर गोदाम अनाजों से भरे पड़ते हैं और दूसरी ओर लोग भूख से मर रहे हैं । भारत के असफल जनतांत्रिक जंगल में लोगों को दो जून अनाज के लिए अपनी रीढ़ की हड्डी भी तोड़ना पड़ता है । इस दुर्दशा से जनवादी कवि अत्यन्त आक्रान्त है

"सही सलामत जीने के लिए
पहाड़ों नदियों और जंगलों के बीच थे वे
किसी भी हिंस्र पठार पर घूमते हुए
उनकी हड्डियाँ धूप में तपती रही होंगी
उनकी स्मृतियों के बीच रक्त का फौव्वारा फूटता होगा
मनुष्य होने के लिए आकार ढूँढ़ते हुए
वे चकित होकर
आकाश और पेड़ों के बीच देखते होंगे ।[30]

हजारों रोटी के बिना तड़प कर मर रहे हैं, कीड़ों की तरह । तब अमीर लोग राष्ट्रीय भोज में शामिल हैं । चन्द्रकान्त देवताले इसका यथार्थ चित्र यों प्रस्तुत करते हैं

"चमकते हाथी दाँतों के उजाले में
दूसरी ही संस्कृति का सितार बज रहा है
सब बाहर खड़े हैं
जूठी पत्तलों के इन्तजार में
भीतर राष्ट्रीय भोज में शामिल हैं
खून और हड्डियों के व्यापारी"[31]

सूचना-विभाग के हर पोस्टर पर खुशहाली है । लेकिन चारों ओर कंगाली के पास आटा नहीं गाली है ।[32] कहीं कोई माँ अपने बच्चों को ठीक कपड़ा पहनाते हुए आँसू बहा रही हैं । देश की व्यापक भूख व अभावग्रस्त ज़िन्दगी का कवि स्वयं वाकिफ़ हैं । कवि के ही शब्दों में

"एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है ।
× × × × × × × × × ×
जिसके पास थाली है ।

हर भूखा आदमी
उसके लिए, सबसे भद्दी गाली भी है ।"[33]

इस भूखी हालत में भी अमीर लोगों की भलाई के लिए अभावग्रस्त लोग अपने शरीर से खून को पसीने के रूप में बाहर बहाकर भरसक परिश्रम करते हैं । ये निरीह लोग सिर्फ़ मिट्टी का ढ़ेर बन जाते हैं । वेणुगोपाल दलित मज़दूर की बुरी हालत का अनादरण यों करते हैं

"तुम
एक ज़रिया होकर रह गये हो
निजी विस्फोटों की
मनमानी आपाधापी के लिए
नतीजे में
तुम्हारे पैरों के ऐन नीचे की ज़मीन
ऊँची उठती चली गयी है
मीनार बन गयी है ।"[34]

अभावग्रस्त ज़िन्दगी का यथार्थ चित्र धूमिल प्रस्तुत करते हैं

"घर में बीमार बच्चे का
फटे हुए दूध-सा रोना सुनता हूँ
बच्चा क्यों रो रहा है ?
मैं चुपचाप उठकर रसोईघर में जाता हूँ
और पूछता हूँ 'क्या हो रहा है
यह जानते हुए भी कि कई दिनों बाद
भूख का जायका बदलने के लिए
आज कुम्हड़े की सब्जी पक रही है
हर वक्त पत्नी का उदास और पीला चेहरा
आदत-सा उसे आंकता है
उसकी फटी हुई साड़ी से झांकती हुई पीठ पर
खिड़की से बाहर खड़े पेड़ की
बहशत चमक रही है ।"[35]

यह स्थिति सिर्फ़ उस परिवार की नहीं है । सारे मध्यवर्ग की यही स्थिति है । मध्यवर्ग के कपड़े सिर्फ फ़टे हैं, लेकिन निम्न वर्ग तो बिल्कुल नंगे हैं । गांवों और शहरों में इन बेघर, भूखे व नंगे इनसानों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ रही है । धूमिल की कविता उद्धृत की जा सकती है

"लोग घरों के भीतर नंगे हो गए हैं
और बाहर मुर्दे पड़े हैं
विधवाएँ तमगा लूट रही हैं

सभाएँ मंगल गा रही हैं
वनमहोत्सव से लौटी हुई कार्यप्रणालियाँ
अकाल का लंगर चला रही हैं ।" [36]

सचमुच अपने असली देशी सुनार, लुहार, कुम्हार, जुलाहे, रोशनी का दरिया बहानेवाले, आँख की ऐनक तक नहीं खरीद पाते । [37] क्या हमारा यह समाज सभ्यसमाज कहलाने लायक है ? अमीर और गरीब की खाई हमारे समाज में महामारी जैसे फैलती जा रही है । आज के सामाजिक जीवन में जो घोर अमानवीयता व्याप्त है उससे मुक्तिपथ ईसा या बुद्ध का उपदेश नहीं है । इसके लिए सम्पूर्ण क्रान्ति अपेक्षित है । स्वतन्त्र भारत की बोलती तस्वीर वेणुगोपाल यों प्रस्तुत करते हैं

"आप भीतर पहुँचते हैं और पाते हैं कि यह कमरा
तो आपका नहीं है ।
आप हड़बड़ाकर बाहर आते हैं और पाते हैं
कि यह आंगन भी आपका नहीं है
और मोहल्ला, शहर, मुल्क और दुनिया
कुछ भी आपका नहीं रहता
तो आप क्या करते हैं ?" [38]

आज हमारा देश भारत साम्राज्यवादी देशों के पंजे में फंस गया है । यहाँ के नेता लोग इस देश को साम्राज्यवादियों को बिक रहे हैं । स्वतन्त्रतापूर्व हर भारतीय का यही सपना था कि

"अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में
अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा
अब कोई दवा के अभाव में
घुट-घुटकर नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा
अब यह ज़मीन अपनी है
आसमान अपना है ।" [39]

लेकिन आज कवि का सपना सपनामात्र रह गया है । इसका ज्वलन्त मिसाल है चन्द्रकान्त देवताले की 'फ़िलवक्त' कविता की पंक्तियाँ

"वह बच्चा भूखा था और
जन-गण-मन के शब्द टुकड़े अटके रहे थे
उसकी श्वास नली में, जिसके कारण अचेत वह

हो गया था धूप में, जहाँ मन्त्रीजी के इन्तज़ार में
कई घण्टों से खड़े थे सब बालक-वृन्द
वह अटेन्शन खड़ा था और
वैसा ही गिर पड़ा था ।"[40]

स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद देश की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में थोड़ा परिवर्तन तो आया है लेकिन उसका हक़दार संभ्रान्त वर्ग के छन्द आदमी हैं । अब देश के सामने कोई महान आदर्श या लक्ष्य नहीं रह गया है । फ़िलहाल वह भटकाव की स्थिति से होकर गुज़र रहा है ; सड़ी-गली परतों से जकड़ा हुआ है । चन्द्रकान्त देवताले की 'लकड़बग्धा हँस रहा है शीर्षक कविता की पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा सकती हैं । कवि ने स्पष्ट किया है कि आज भी हमारा देश पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद के शिकंजे में पिस रहा है ।

"फिर से तपते हुए दिनों की शुरुआत
हवा में अजीब-सी गन्ध है
और डोमों की चिता
अभी भी दहक रही है
वे कह रहे है । एक माह तक मुफ़्त राशन
मृतकों के परिवार को !
× × × × × × × × ×
देश के नाभि-केन्द्र में
गांवों की सरहदों के पास
बच्चों के सपने को आतंकित करता
लकड़बग्धा हँस रहा हैं. ।"[41]

लकड़बग्धा यहाँ साम्राज्यवाद का प्रतीक है । प्रतिबद्ध जनवादी कवि समसामयिक सामाजिक व आर्थिक समस्याओं से निरन्तर अवगत रहते हैं । उनसे वे अपने को कभी अलग नहीं रखते । उनकी समूची रचनाएँ जीवन की आर्थिक तथा सामाजिक दुर्दशा का आत्मस्वीकार है ।

प्रतिबद्ध नववामपंथी कवियों की मान्यता यह है कि कविता अनुभूत सच्चाइयों के निचोड़ की शाब्दिक अभिव्यक्ति है । उनकी समूची कविताएँ अपने सामाजिक जीवनानुभवों से जुड़ी हैं । उनकी मान्यता है कि नंगापन अन्धे होने के खिलाफ़ एक सख्त कार्यवाही है ।[42] कविताओं में संसद से लेकर सड़क तक व्याप्त सामाजिक जीवन की स्थितियाँ अनावृत हो जाती हैं । अनावरण और आक्रमण उनकी कविता की अपनी खासियत है ।

जैसे कि सूचित किया गया है कि नववामपंथी कवि छायावादी कवियों की तरह नभचारी नहीं हैं । वे जीवन की खुरदरी जमीन पर अड़े खड़े हैं । इसकी वजह से उनकी कविता तीखे यथार्थबोध की कविता

है । रामदरश मिश्र ने इसका समर्थन किया है "मैंने अपने परिवेश जन्य अनुभवों को सदा महत्व दिया है इसलिए न तो मैंने बहुत से आधुनिक कहे जा सकने वाले कलाकारों की तरह विश्व के अनुभवहीन यथार्थ को अपने से पैबन्द की तरह जोड़ा है और न अकवितावादियों की या इसी तरह की अन्य स्वकेन्द्रित अस्वीकृतिमयी, छद्म धाराओं के कवियों की तरह परिवेश को अस्वीकारा ही है ।[43] नववामपंथी कविता में जीवन की असलियतों, स्थितियों, विसंगतियों और विड़म्बनाओं का उद्घाटन भी हुआ है । यह कविता केवल सामाजिक अनुभवों तक सीमित नहीं है बल्कि अनुभवों को सही रूप से जानने पहचानने और उसका साक्ष्य पाने में जुड़ी है । वामपंथी कविता का परिवेश जीवनगत यथार्थ से निर्मित है । भोगे हुए सामाजिक यथार्थ और कविता में प्रस्तुत यथार्थ की प्रामाणिकता इस कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । इन कवियों का रचना संसार आधुनिक जीवन का यथार्थ धरातल है । धूमिल के शब्द इसका ज्वलन्त उदाहरण है

"मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया है
कि मेरी प्रतिमा बने और उसके
उद्घाटन समारोह में
शहर के समझदार लोगों का एक पूरा व्यस्त दिन
खराब हो
मैंने अपनी थाली के एक किनारे बैठकर
बहुत साधारण जीवन जिया है ।
जेल की बगल की नागरिकता
और बूचड़खाने के सामने की सज्जनता
मुझे विरासत में मिली थी
मैंने उन्हें अपनी सहूलियत के साथ जोड़कर
दो कदम आगे बढ़ाया है ।"[44]

ये परिवेश के यथार्थ के प्रति जागरूक हैं । कवि जानते हैं कि गजदन्ती मीनार में बैठकर जीवन की ऊष्मा से सनी कविता लिखना संभव नहीं हैं ।

निष्ठुर सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ़ वामपंथी कवियों की हर आवाज़ ने तोप की भांति गर्जना की है । संसद से सड़क और सड़क से बदनाम बस्तियों तक फैले अत्याचारों से कवि विक्षुब्ध हैं । वे अपने इर्द-गिर्द व्याप्त अमानवीय एवं कुत्सित बीभत्सताओं का अनावरण करते हैं

"मैं उन्हें समझता हूँ
वह कौन-सा प्रजातान्त्रिक नुस्खा है
कि जिस उम्र में मेरी माँ का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है

उस उम्र की मेरी पड़ोसी की
महिला के चेहरे पर
मेरी प्रेमिका के चेहरे-सा लोच है ।" [45]

कैलाश वाजपेयी ने लाशनुमा देश की पतनग्रस्त सामाजिक ज़िन्दगी की सही तस्वीर अपनी कविताओं में खींचा है

"इन तमाम
शवभोगी लोगों के बीच ओ! मेरे मरे हुए देश
आँसू आ जाते हैं यह सोचकर
कल सुबह तेरी लाश तक
न पहिचानी जाएगी ।" [46]

व्यवस्था के परिणाम स्वरूप उत्पन्न पतनशील मूल्यों एवं सामाजिक विकृतियों तथा विद्रूपताओं को कवियों ने अपनी रचनाओं में उभारने की कोशिश की है । चीज़ें किस तरह बदल गयी हैं और किस हद तक अपना अर्थ खो चुकी है, यह देवेन्द्र कुमार की 'पैराशूट' में द्रष्टव्य है ।

"आदमी
मकान से निकलकर सीधे पेड़ों पर
चढ़ जाये
इसकी कोशिश पहले करता है
और काफ़ी तर्क कुतर्क करने के बाद, जैसे ही
किसी घोंसले की तरफ़
हाथ लम्बा करता है
तो सहसा ख्याल हो जाता है
कि घोंसलों में चिड़ियों के बच्चे ही नहीं
कभी-कभी साँप भी मिलता है ।" [47]

देश में हर तरफ़ व्याप्त भ्रष्टाचार गोरख पाण्डेय की रचनाओं में मूर्तिमान हो उठा है । उन्होंने अपनी कविताओं में जीवन की ठोस वास्तविकता को ही उभारा है और समसामयिक परिवेश के यथार्थ को गहराई और ईमानदारी से शब्दबद्ध करने में भी कामयाबी हासिल की है

"नक्कार बांटते हैं प्यार का
इश्तहार
अत्याचारी न्याय का प्रमाणपत्र
संसदभवन और बूचड़खाने में
समान सम्मान से घूमती है
जादू की छड़ी
जो हर कानून से बड़ी है
ज्ञान की मड़ियाँ
चलाते हैं कातिल
दलाल और रंडिया ।" [48]

'बलदेव खटिक' लीलाधर जगूड़ी की एक विशिष्ट लम्बी कविता है । इस में आम आदमी के ठोस वास्तविक चरित्रों के माध्यम से सामाजिक एवं सत्ता सम्बन्धी विसंगतियों को उभारा गया है । दरअसल ये चरित्र नहीं, प्रतिरोध के विचारों के साथ जुड़ी हुई विसंगतियों और त्रासद अनुभवों के बाद लिए जाने वाले निर्णयों के मूर्त रूप हैं । जगूड़ी ने इस कविता में अभावग्रस्त जनता की मुसीबतों का यथार्थ चित्र यों खींचा है । 'नंगी औरत जिसके शरीर से पहनावे की तरह बच्चे चिपके हुए थे ।' [49] ये बच्चे निर्धनता की नंगी तस्वीर है । आम आदमी का दर्द, प्रस्तुत कविता का केन्द्र है । इसी सड़ी-गली व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए कवि क्रान्ति का आह्वान करते हैं । वर्तमान व्यवस्था में आम आदमी के लिए कोई स्थान नहीं है । जगूड़ी के शब्दों में

"दुनिया मेज भर ऊँची
पेट भर गहरी हो गयी
छोटा सिर्फ आदमी हुआ है ।" [50]

आम आदमी गरीबी से भी निम्न स्तर का जीवन जी रहा है । तब

"बन्दरगाह में डूबा हुआ बोर
अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग से गोदाम में आ गया है
फ़सल ठीक हुई है
चूहा चूहे को टेलिफ़ोन से कह गया
मैं ने अखबार से कहा...." [51]

इस व्यवस्था में आम आदमी के लिए सरकार हथकड़ी और सज़ा है । व्यवस्था जनता से विश्वासघात कर रही है । जगूड़ी की 'नाटक जारी है' नामक रचना में संकलित 'इस व्यवस्था में' शीर्षक कविता इसका ज्वलन्त मिसाल है । इस कविता में सामाजिक व आर्थिक दुर्दशा का भीषण स्वर मुखरित है ।

"देखो,
इस देश की हर सड़क तिजोरी तक जाती है
और तुम्हारे लिए पोस्टकार्ड की कीमत
बढ़ जाती है
चीज़ों और नामों से भरी इन चौड़ी जगहों पर
तबीयत अचानक उखड़ने लग जाती है ।" [52]

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की नब्ज को पकड़ने में वामपंथी कवियों की ईमानदारी सफ़ल हो गयी थी । परतन्त्र भारत ने स्वतन्त्र भारत के जो सपने बुने थे, यथार्थ की तीष्णता में उनके टूटने का त्रासद दृश्य वे अपनी आँखों से देखते हैं । अपनी मातृभूमि की बुरी हालत पर उनका कवि-मन एकदम तड़प उठता है । इसलिए अत्यन्त विक्षुब्ध होकर धूमिल लिखते हैं

"धुएँ से ढ़के हुए
आसमान के नीचे

हर चीज झूठ है
आदमी
देश
आज़ादी और प्यार
सिर्फ़ नफ़रत सही है
इस शहर में
या उस शहर में.
यानि कि. मेरे या तुम्हारे शहर में ।" 53

सामूहिक सत्यों को उजागरित करना कविता का परम धर्म है । इसके लिए कवि को बाह्य परिवेश को उसकी सम्पूर्णता में समेटने की क्षमता होनी चाहिए । अनुभव संपर्क से ही प्राप्त होता है । आम आदमी के साथ मानसिक संपर्क रखना, अवश्य एक संकीर्ण प्रक्रिया है । जनवादी कवि 'टोटल इन्वोल्वमेंट' में विश्वास रखते हैं । इसका समर्थन करते हुए लीलाधर जगूड़ी लिखते हैं

"बहुत कुछ करना है अपने स्वागत में
सांकेतिक हड़ताल को दिन में पहनना है
घने अंधेरे में गंदे नलके के नीचे
अपना लोकतन्त्र पछींटना है
कुल मिलाकर मुझे जनता से आना है
और मेल से जाना है ।" 54

आम जनता की तरफ़दारी कर कवि जनता का हमसफ़र होकर जीना चाहते हैं । वे जनता की लड़ाई के अगुआ हो जाते हैं । खुले मन से जगूड़ी अपनी इच्छा यों प्रकट करते हैं

"मैं आपकी भूमिका निभाना चाहता हूँ
भरपूर घृणा में साधकर
एक संकट को
दूसरे संकट से लांघकर
मैं आप तक आना चाहता हूँ ।" 55

जुड़ाव तथा तरफ़दारी का स्वर चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं में मुखरित है

'सिर्फ़ वही जगह छूटती है
जहाँ कुछ हो सकता हूँ,
वैसे फ़ेंकता हूँ अपने को
शहरों के बीच
सड़कों पर
लोगों के भीतर ।" 56

नववामपंथी कवियों का अनुभव जनता का भोगा हुआ सत्य है । अनुभूत

सच्चाइयों से जूझते हुए ही धूमिल लिखते हैं

"मेरे गाँव में
वही आलस्य, वही ऊब
वही कलह, वही तटस्थता
हर जगह और हर रोज़ ।" 57

इन स्थितियों से कवि पलायन नहीं चाहते हैं । वे जानते हैं कि ये सभी हरकतें सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था की मज़बूरियाँ हैं । कवि को मालूम है कि उत्पादन के समस्त साधन (ज़मीन भी) केवल ज़मीन्दारों और पूँजीपतियों के हाथ में हैं । सामाजिक व आर्थिक दुर्दशा का कारण यही है । कवि का मुख्य लक्ष्य सभी प्रकार के दमनचक्र से आम जनता को मुक्त करना है । कवि सबका कायापलट करना चाहते हैं, लेकिन वह अकेले हैं । चाहने पर भी कोई साथ न देता । चन्द्रकान्त देवताले के शब्दों में

"मैं कुछ भी कहूँ कोई सुननेवाला नहीं
गोली दागनेवालों ने गूँग-बहरों की भीड़ को
चुन लिया है ।" 58

सबको पूँजीवादी दिमाग ने फ़ेर रखा है । एक आदमी दूसरे को, अकेले अंधेरे में ले जाता है और उसकी पीठ में छुरा भोंक देता है ।" 59 और यदि इन विवशताओं के खिलाफ़ किसी का मुट्ठी तन जाय तो 'नक्सल' कहकर उसे और उसके परिवार का सत्यनाश कर दिया जाता है । धूमिल घोषणा करते हैं

"एक ही संविधान के नीचे
भूख से रिरियाती हुई फैली हथेली का नाम
'गया' है
और भूख में
तनी हुई मुट्ठी का नाम
'नक्सलबाड़ी' है ।" 60

शहीद होना आसान है लेकिन एक विचार की ख़ातिर निन्दा सहते जीना कहीं ज़्यादा मुश्किल है । इस सत्य को आत्मसात्कर धूमिल सवाल करते हैं

"एक ईमानदार आदमी को
अपनी ईमानदारी का
मलाल क्यों है ?
जिसने सत्य कह दिया है
उसका बुरा हाल क्यों है ?" 61

पुलिस विभाग की क्रूरता और निर्दयता का नग्नरूप जगूड़ी प्रस्तुत करते हैं

"तुम्हारी माँ का
हमारे पास कोई वारण्ट नहीं जो हम गाड़ी भेज दें
आखिर मरने वाले को कौन पकड़ सकता है
अक्सर हमारे पकड़े हुए भी मर जाते हैं ।"[62]

पुलिस गाड़ी अपराधियों को पकड़ने के लिए है । एक माता की मृत्यु अपराध नहीं है । यहाँ पुलिस के अत्याचारों पर जबरदस्त व्यंग्य किया गया है । 'हत्या' शीर्षक कविता में भी इंस्पेक्टर की अमानवीयता का स्वर गुँजित है । लीलाधर जगूड़ी के शब्दों में

"नहीं, नहीं ! इन्स्पेक्टर ने कहा
कोई जनता अन्दर नहीं जा सकती
न बीमार जनता न स्वस्थ जनता
हम नहीं जानते कि जनता रोगी है
नहीं जानते कि जनता बीमार है
हमारे लिए तो जनता ही सबसे बड़ा रोग है ।"[63]

सरकारी अफ़सर अपने कृत्रिम आभिजात्य के नशे में मामूली आदमी की उपेक्षा करते हैं । पूँजीपति वर्ग अफ़सरों तथा नेताओं का संरक्षण प्राप्त कर जनता का शोषण करता है । और देश का आम आदमी स्वतन्त्रता, त्याग, शान्ति, संस्कृति, एकता, अखण्डता, धर्मनिरपेक्षता आदि रंगीन शब्दों से सिर्फ़ सम्मोहित ही होता रहता है । वास्तव में व्यक्ति और समाज की स्थिति 'पैर बंधी गाय' की तरह विवश व लाचार है ।

आ) **अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता** यह सर्वविदित रहस्य है कि दुनिया के सबसे बड़ा महान् प्रजातान्त्रिक देश भारत में 'स्वतन्त्रता' कतिपय अतिविशिष्ट व्यक्तियों का हक है । बाकी सब के सब सिर्फ़ जीने या मरने के लिए स्वतंत्र है । फ़िलहाल भारत सरकार ने 'दि सेटनिक वर्सेस' के लेखक सलमान रुशदी की आयुतुल्ला खुमैनी द्वारा हत्या के फ़तवे जारी करने पर चुप्पी साधकर एकबार फिर साबित किया था कि वह कितना तुष्टीकरण की नीति पर चल रही है । हालाँकि सरकार उक्त पुस्तक पर सर्वप्रथम प्रतिबंध लगाकर दुनिया की पहली सरकार कहलाने का गौरव पहले ही प्राप्त कर चुकी थी । सांप्रदायिक उन्माद भड़कानेवालों के वक्तव्य पर सरकार की चुप्पी निस्सन्देह धार्मिक तत्ववादियों के समक्ष इसका सीधा समर्पण एवं धार्मिक श्रेष्ठता की इसकी स्वीकारोक्ति जो धर्मनिरपेक्ष सरकार के दोगले चरित्र को ही उजागर करती है । सरकार की मंशा को उस समय मूर्त रूप दिया गया जब सफ़दर हाशमी के नेतृत्व में दिल्ली के जननाट्य मंच के साथियों पर, नुक्कड़ नाटक का मंचन दिल्ली के ही निकटस्थ साहिबाबाद में कर रहे थे, काँग्रेसी गुण्डों द्वारा कातिलाना हमला किया गया । घटनास्थल पर ही एक मज़दूर साथी रामबहादुर की मृत्यु हो गयी ओर 2 जनवरी की रात को महान्

रंगकर्मी साथी सफ़दर हाशमी चल बसे ।[64] इस कुकृत्य की देश में ही नहीं विदेशों में भी भरपूर निन्दा की गयी । हाशमी की अघोषित हत्या के विरुद्ध देश के ही नहीं, देश के बाहर के भी तमाम रंगकर्मी, लेखक, कवि, बुद्धिजीवी सबों ने सड़क पर उतरकर इस हत्या की भर्त्सना की । देश में शायद पहली दफ़ा इतने बड़े पैमाने पर सभी वर्गों द्वारा किसी हत्या पर इतना जबर्दस्त विरोध प्रदर्शन हुआ । सारी सीमाएँ तोड़कर पत्रकार, लेखक, बुद्धिजीवी एक स्तर में दहाड़ उठे । दरअसल भारत सरकार और सलमान रुशदी की हत्या का फरमान जारी करने वाले खुमैनी में फ़र्क नहीं है ।[65]

अपने मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए जनता का हर तरह से शोषण और इस शोषण की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए रोज़ नए नए काले कानूनों के ज़रिए जनता के अधिकारों में कटौती, हक और न्याय के लिए आवाज़ उठाने वालों का पुलिस और फौज के द्वारा बर्बर दमन, जुलूसों पर लाठीचार्ज, क्रान्तिकारी रंगकर्मियों की हत्या, फौजी मुठभेड़ों के नाम पर बेकसूर लोगों का एनकाउन्टर इत्यादि समकालीन जीवन्त सच्चाई है । जनवादी रचनाकार इन सारी स्थितियों का न केवल द्रष्टा है, बल्कि वह भोक्ता भी हैं । आन्ध्र प्रदेश के दो नक्सलबन्दी किशनगौड़ और भूमैया जिन्हें आपात्काल के दौरान फांसी दी गयी थी । इसका उल्लेख करते हुए अरुण कमल ने 'खबर' नामक कविता में लिखा है

"अखबारों में खबर थी कैलिफोर्निया की
एक कुत्तिया ने तेरह बच्चे
एक साथ जने
अख़बारों में खबर थी
युवराज ने कंगालों में कम्बल बाँटे
अख़बारों में खबर थी
विश्वसुन्दरी का वजन 39 किलो है
अख़बारों में खबर थी
राजनेता ने दाढी मुड़ाई ।
एक खबर जो कहीं नहीं थी
किश्नगौड को फांसी हो गयी
भूमैया को फांसी हो गयी ।"[66]

बूर्ज़्वा संस्कृति की यह विशेषता है कि वह उत्पादन से अधिक उपभोग प्रधान है और उसकी यह उपभोग प्रकृति साहित्य पर भी हावी है जिसके उदाहरण बड़े पैमाने पर बिकनेवाली रंगीचुंगी पत्रिकाओं में आसानी से मिल जाते हैं । निस्सन्देह इनकी भी अदा साहित्यिक ही होती है, किन्तु इनमें साहित्य विज्ञापन के ज़्यादा अहमियत नहीं रखता और राजनीति भी यहाँ आकर किसी कम्पनी का विज्ञापन या चुटकुला बनकर रह जाती है ।

संचार माध्यमों की सहायता से पूँजीपति, गलत धारणाओं को भी जनता के बीच बोने की कोशिश करते हैं । बूर्ज्वा यह भी साबित करना चाहता है कि वर्तमान क्रांतिकारी आन्दोलन और श्रमिक संगठन पर्याप्त गतिशील है , वे खट्टे और अपभ्रष्ट हो गए हैं उनमें सैद्धान्तिक क्षमता नहीं होती ।

बरसों पहले ही सामंतवादी सनातनी पुरान-पंथियों ने पूर्णशक्ति के साथ जनवाद के बढ़ते चरण पर चतुर्दिक हमला शुरू कर दिया और सामंतवादी छत्रछाया में पलने वाली पूँजीवादी रियासत ने भी उनके प्रतिगामी कदमों का भरपूर साथ दिया था । जनवादी आन्दोलनों से जुड़ी हुई खबरों को दफ़नाना सरकार की खुली नीति है । सरकार की गलत नीतियों से तंग आकर आज बुद्धिजीवियों का बहुत बड़ा हिस्सा अन्ततोगत्वा जनवादोन्मुखी हो चुका है जिससे सरकार का चिन्तातुर होना स्वाभाविक है । दरअसल जनवादी आन्दोलन ने आम जनता को जनवादी मूल्यों के प्रति सजग किया है और प्रतिबद्ध, नववामपंथी जनवादी कवियों ने बेजुबानों को अपने हकों की प्राप्ति के लिए ज़ुबानें भी दी है । साथ साम्प्रदायिक शक्तियों के बढ़ते कदमों को अवरुद्ध करने की कोशिश भी फ़िलहाल जारी है ।

ई) भ्रष्ट राजनीति के विरुद्ध आक्रमण भारतीय समाज वर्गों में बंटा हुआ है । इस वर्ग-विभजित समाज में साहित्य एवं कला किसी न किसी वर्ग से जुड़े रहते हैं । जब तक वर्ग रहेंगे तब तक वर्ग-भेदों से ऊपर उठी हुई कला हो ही नहीं सकती । कोई भी ऐसी कला और साहित्य नहीं है जो वर्ग से जुदा हो, या उससे पूर्णतया असंपृक्त होकर उसके समानांतर चल रहा हो ।

आधुनिक युग में जब वर्ग और उनके राजनीतिक दल, दोनों ही मौजूद हैं तब साहित्य और कला भी राजनीतिशास्त्र से संलग्न होंगी । कला और साहित्य कुछ राजनीतिज्ञों की राजनीति को ग्रहण नहीं करते बल्कि दो विरोधी वर्गों के राजनीतिक दर्शन से ओत-प्रोत रहते हैं । माओ-त्से तुंग ने यह स्पष्ट करते हुए येनान में कहा था "जब हम कहते हैं कि कला और साहित्य राजनीति के अधीन हैं, तब हमारा प्रयोजन वर्ग-राजनीति और जन-राजनीति से है, न कि कुछ राजनीतिज्ञों की तथाकथित राजनीति से । चाहे क्रान्तिकारी राजनीति हो या प्रतिक्रान्तिकारी, दोनों ही विरोधी वर्गों के बीच के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है, न कि अकेले व्यक्तियों के व्यवहारों का ।"[67]

कला तथा साहित्य का प्राणस्रोत, जनता की सामाजिक चेतना है जिसमें राजनीतिक चेतना भी शामिल है । राजनीतिशास्त्र समाज सम्बन्धों और राज्य-धर्म की विवेचना करता है ; कला और साहित्य में भी सामाजिक सम्बन्धों तथा यथार्थ के प्रति कलात्मक विचारों की विवेचना होती है । एक ही सामाजिक चेतना से उद्भूत दर्शन, नैतिकता, कला,

राजनीति आदि भिन्न-भिन्न स्वरूप रखते हुए भी अन्तर्सम्बन्धित हैं । अतः कला और राजनीतिशास्त्र में कई बातों में समरूपता है ।[68] अन्तर्ग्रथित होने के कारण दोनों का समसामयिक विकास भी होता है । कला या साहित्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ढंग से राजनीति को ग्रहण करती है । अतः कला और राजनीति का संबन्ध द्वन्द्ववात्मक है । दरअसल कलाकृतियों में कलात्मक गुणों और राजनीतिक विचारों की संगति होनी चाहिए । अतः हम कला और राजनीति को पृथक नहीं कर सकते । कविता राजनीति से जुड़ी रहने से कभी भी कविता का ह्रास नहीं होता ।[69] राजनीति वर्तमान मानव नियति को नियन्त्रित करने वाली शक्तियों में प्रमुख है, अतः इसे इन्कार करने का अर्थ है सच्चाई को इन्कार करना चाहे वह कविता में ही क्यों न हो ।

सामाजिक सम्बन्धों के बदलने के साथ राज्य के स्वरूप बदलते रहे हैं और उनकी प्रकृति में विकास होता रहा है । इसी प्रकार कला के विचार और स्वरूप भी बदलते तथा विकसित होते रहते हैं । कला के साधनों और राजनीतिक कार्रवाइयों के साधनों में अन्तर होता है । राजनीतिक कार्रवाई में पार्टी-कार्यक्रम, संघर्ष के लिए अपनायी गयी गुट की चालें, शक्ति का प्रदर्शन आदि शामिल है ; पर कला के साधनों में जनता के इन्द्रिय-बोध को जाग्रत करना, वर्गीय समाज की ऐतिहासिक ज़िन्दगी को स्पष्ट करके सच्ची विचारधारा का ज्ञान दिलाना और विशाल जन-समूह से अभिन्न रिश्ते जोड़ना अभीष्ट है । राजनीतिक कार्यों में कर्म (एक्शन) होता है, कला में विचार-इमेजों द्वारा कर्म की विचारधर्मा पृष्ठभूमि पेश की जाती है ; फिर राजनीतिक कार्यों में प्रचार होता है, कला में पूर्ण भावों की प्रतिष्ठा होती है ; राजनीतिक कार्रवाई राज्यसत्ता का परिवर्तन करती है, कलाजनता के सारे भाव-धरातल को बदलती है । अतः यह स्पष्ट है कि कला के उद्देश्यों और राजनीतिक-सामाजिक कार्रवाइयों के उद्देश्यों के बीच सम्बन्ध और पर्याप्त समरूपता है ।

नववामपंथी कविता में उपर्युक्त कला-राजनीति की समरूपता का उज्जवल नमूना सम्पूर्णतः द्रष्टव्य है । याने वर्तमान राजनीति इस कविता का अन्तःस्रोत है । कवि भारत की भ्रष्ट-राजनीति से असन्तुष्ट हैं। उन्होंने भ्रष्टाचार के पंक में डूबे नेताओं की पदलिप्सा और सतत् स्वार्थपरता की कुत्सित मनोवृत्तियों को खूब पहचाना है । जनता को मूर्ख बनाने, अपनी कुर्सी बचाने और चन्दा बटोरने से लेकर उद्घाटन भाषण तक की गतिविधियों की नववामपंथी कविता में अभिव्यक्ति मिलती है ।

भारत में नेहरू के शासन काल में 'भीड़' बढ़ती रही
चौराहे चौड़े होते रहे
लोग अपने-अपने हिस्से का अनाज

खाकर निरापद भाव से बच्चे जनते रहे ।
× × × × × × ×
योजनायें चलती रहीं
बन्दूकों के कारख़ानों में
जूते बनते रहे
सफल जीवन जीने के लिए
कारनेगी किताब छोड़कर
सड़क के यातायात चिह्नों को
समझने की सलाह भी दी गयी है ।[70]

उस लोकनायक के शासनकाल में बंजर मैदान कंकालों की नुमाइश कर रहे थे । गोदाम अनाज से भरे पड़े थे और लोग भूख से मर रहे थे । यहाँ की जनता अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे बार-बार उसी लोकनायक नेहरू को चुनते रही जिसके पास हर शंका और सवाल का एक ही जवाब था याने 'कोट की बटन होल में महकता एक गुलाब का फूल'[71] वे ज़िन्दगी भर विश्वशान्ति की बहस करते रहे थे, पंचशील के सूत्र रटते रहे थे और मृत्युपरान्त सिर्फ़ इतिहास के पन्ने में शान्तिदूत का नाम भी पाए थे ।

शासक वर्ग जब अपने सिंहासन को खतरे में देखता है, तभी वह वस्तुतत्व की उपेक्षा कर रूपतत्व को प्राथमिक बताने लगता है । इसी प्रकार का भ्रम फैलाकर वह अपना सिंहासन सुरक्षित बने रहने का सपना देखता है । पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के समर्थक शोषणमूलक अर्थनीति के सारे दुष्परिणामों से युक्त पूँजीवादी समाज के वस्तुतत्व के प्रति मौन रहते हैं । वे रूपतत्व अर्थात तथाकथित प्रजातन्त्रीय पद्धति की रक्षा का नारा लगाते हैं, और उसे अत्यन्त पवित्र तथा शाश्वत जैसा मानते हुए जनता के गले के नीचे से भी इसी तथ्य को उतारना चाहते हैं । पूँजीवाद तथा समाजवाद के (वस्तुतत्व) वर्तमान युग में चल रहे निर्णायक संघर्ष से जनता का मन फेर कर वे उसे यह समझाने का प्रयास करते हैं, गोया मुख्य संघर्ष यह न होकर प्रजातन्त्र तथा तानाशाही (रूपतत्व) का संघर्ष है, कारण तभी वे अपनी पूँजीवादी वस्तु बरकरार रखने की आशा कर सकते हैं । एक जर्जर और समाप्त हो रहे पूँजीवादी वस्तुतत्व को बचाने के हेतु ही बूर्ज़्वा शासक पुराने रूपों को अपना समर्थन देते हैं, ताकि समाजवाद के नए वस्तुतत्व की उपलब्धि के लिए सक्रिय जनता नए रूप के प्रति आकर्षित न हो सके । नेहरू से लेकर अबतक के सारे शासकों ने इस तथ्य से अवगत होकर भारतीय जनता का शासन किया है ।

नेहरू की मृत्यु के बाद सत्ता की कुर्सी पर उनकी परम्परा की प्रतिष्ठा हुई । यह प्रवृत्ति निरन्तर जारी रहती है

जंगल में उन दिनों
एक आदमखोर सफेद शेरनी
अपने दूध पीते बच्चे को
शिकार करना सिखा रही थी
जंगल के बाहर लगी
तख्ती पर लिखा था
"यह जंगल
सफ़ेद शेरों की
नस्ल बढ़ाने के लिए
खास तौर पर बनाया गया है
इसलिए सफ़ेद शेरनी
और उसके बच्चे को छेड़ना
एक संगीन कानूनी जुर्म
समझा जाएगा ।"[72]

इंदिरा गांधी अपने बच्चों को प्रधानमन्त्री बनाने के लिए निरन्तर प्रशिक्षित करती रही थी । इसी प्रशिक्षण के घेराव में भारत की राजनीति बुरी तरह बिगड़ गया है । उनकी सोच, कथन और कर्म बेमानी हो गए हैं । नेता लोग पुष्ट और मज़बूत बन रहे हैं । वे भाषा को भी औज़ार बनाते हैं, शोषण का

"चन्द चालाक लोगों ने
जिनकी नरभक्षी जीभ ने
पसीने का स्वाद चख लिया है
बहस के लिए
भूख की जगह
भाषा को रख दिया है
उन्हें मालूम है कि भूख से
भागा हुआ आदमी
भाषा की ओर जाएगा
उन्होंने समझ लिया है कि
एक भुक्खड़ जब गुस्सा करेगा
अपनी ही उँगलियाँ चबायेगा ।"[73]

जनता की बिगड़ी हुई हालत पर मज़बूर होकर रसद देनेवाले चालाक नेता लोग गरम कुत्ता खाते हैं और सफ़ेद घोड़ा पीते हैं ।[74] सामाजिक क्षेत्र इतना असंगत है कि अस्सी करोड़ से भी अधिक जनता की संपत्ति के अधिकारी मुट्ठी भर अमीर लोग हैं । साठ प्रतिशत लोगों को पेट भर खाना नहीं मिलता पर पूँजीपति और सेठ-साहूकार जीर्णता से ग्रस्त हैं । टैक्स और कीमत के बढ़ाने से आम आदमी की ज़िन्दगी दूभर हो गयी है । इसी हालत में नेता लोग मूर्ख जनता को गलत रास्ते की ओर खींच लेते

हैं । पृथ्वीपुत्रों ने सबसे पहले एक भाषा तैयार की जो जनता को न्यायालय से लेकर नींद से पहले की प्रार्थना तक गलत रास्तों पर डालती है ।[75] इन अन्न दाताओं ने जनता को समझाया कि भूख का सही इलाज नींद है । इन लोगों की आँखों में चमकता हुआ भाईचारा किसी भी रोज़ जनता के चेहरे की हरियाली बेमुख्त चाटने में भी सक्षम है ।[76] और ये दलाल लोग ठण्डे में ऊँघते हुए खेलते रहते हैं सवाल-जवाब का खेल ।[77] सामाजिक ज़िन्दगी इतनी गंदी और विषैली हो गयी है कि वह ढोंग और ढ़कोसला के लिए उर्वर बन पड़ी है ।

मार्क्स ने पूँजीवाद को अब तक की सबसे ज़्यादा अमानवीय तथा बर्बर व्यवस्था कहा था । पूँजीवादी दिमाग़ परिवर्तनवादी नहीं बल्कि परिवर्तनविरोधी होता है ।[78] असल में पूँजीवाद के तले भारतीय प्रजातन्त्र मेमने के आकार का भेड़िया है । प्रजातन्त्र के नेता का चरित्र बंदरनुमा हो गया है । वेणुगोपाल यों इशारा करते हैं

"मैं उसे देखता हूँ
भारतीय प्रजातन्त्र का हें-हें करता
भारवान, तोंदवान् मन्त्री
कब कौन-सी बेतुकी बात
कहाँ बोल देगा
कोई नहीं जानता ।"[79]

ये मन्त्री लोग कुर्सी में छिपकली की तरह चिपकते रहने के लिए गिरगिट की तरह अपना रंग बदलते रहे हैं । कुर्सीमोह के कारण राजनीतिज्ञों में एक गुणात्मक परिवर्तन आया है । धूमिल के ही शब्दों में

"हाँ, यह सही है कि इन दिनों
मन्त्री जब प्रजा के सामने आता है
जो पहले से
कुछ ज़्यादा मुस्कुराता है
नए नए वादे करता है ।"[80]

देश के नेता सत्ता और कुर्सी की जोड़-तोड़ में डूब जाते हैं । वे योजनाएँ फाइलों में उगाते हैं । भाषण और भोज हर दिन होते रहते हैं । वे सड़कों पर खोखले नारे लगाए जाते हैं । आज हिन्दुस्तान नक्शे में है । और नक्शा फाइलों में है ।[81] जगूडी के अनुसार 'देश' तो तात्कालिक शब्द है, अख़बारी शब्द ।[82]

नववामपंथी कविता भारतीय जनतन्त्र की कटुस्थितियों का बयान करती है । कवि राजनीतिक ढ़ोंग, छल, पाखण्ड और उनकी मानवविरोधी हरकतों पर कड़ा प्रहार करते हैं । उन्होंने भारत भाग्यविधाता राजनेताओं की विविधछली आदतों का साहस के साथ उद्घाटन किया है ।

विरोध का स्वर धूमिल की कविताओं में तीव्रतः मुखरित है । व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति का एक और चित्र देखिए

"हाँ, यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ टोपियाँ बदल गयी हैं ।"[83]

त्रिनेत्री जोशी भी इस कटु राजनीतिक परिस्थिति का अनुभव करते हैं । राजनीतिक भ्रष्टाचार से क्षुब्ध युवामानस की अभिव्यक्ति इस प्रकार है

"मन्त्री
खिलखिलाता है
कर बढ़ाता
पूंछ हिलाता
फिर आ रहा
मतदान पेटी के पास ।"[84]

ये नेता लोग जनता को मूर्ख बनाने में होशियार हैं । भूतपूर्व प्रधानमंत्री नेहरू के विरुद्ध कवि लिखते हैं

"मैं उस आदमी को वर्षों से खोज रहा हूँ
जिसने आजादी का परचम उठाकर
(महज एक गुलाब के लिए)
हमसे हमारा इतिहास चुरा लिया ।"[85]

योजनाओं के कागजीपन, विकास कार्य के नाटक, प्रशासन की अक्षमता, कुर्सी पर चिपके हुए लोगों के भाई भतीजावाद आदि समस्त करतूतों की नववामपंथी कविता में अभिव्यक्ति मिली है । कहा जाता है कि भारत स्वतन्त्र देश है । लेकिन विड़म्बना की बात यह है कि यह स्वतन्त्रता घोड़े और घास को भड़िये और मेमने को ज़िन्दा रहने के लिएएक जैसी छूट देनेवाली स्वतन्त्रता है । सौमित्र मोहन की कविता के नायक 'लुकमन अली' के लिए स्वतन्त्रता उसके कद से तीन इंच बड़ी है । वह बनियान की जगह तिरंगा पहन कर कला बाजियाँ खाता है ।[86] नववामपंथी कवि टूटे हुए पुलों के नीचे, वीरान सड़कों पर, टूटी हुई चीज़ों के ढ़ेर में खोई हुई आज़ादी का अर्थ ढूँढ़ता है । वे आज़ादी की खोज अस्पतालों के बिस्तरों पर, दफ़्तर के फाइलों में, राजपथ पर, गाँवों और जंगलों में करते हैं । वे इस छोर से उस छोर तक घूमते फ़िरते हैं । मगर उनका श्रम बेकार है । इसलिए धूमिल सालों के बाद सुनसान गलियों से गुज़रते हुए आज़ादी की अर्थवत्ता पर स्वयं सवाल करते हैं

"क्या आज़ादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढ़ोता है ।"[87]

आगे वे लिखते हैं

"आज़ादी इस दरिद्र परिवार की बीससाला 'बिटिया'
मासिक-धर्म में डूबे हुए कुंवारेपन की आग से

अंधे अतीत और लंगडे भविष्य की
चिलम भर रही है ।"[88]

इसी आजादी में यहाँ की आँकड़ेवाली जनता, समस्यावाली जनता और स्थानीय जनता अब तो और भी महान् 'भारतीय जनता' हो गयी है ।[89] जगूड़ी के अनुसार यह 'आजाद देश' नक्शे के रंगों में एक ठहरा-हुआ, टूटा हुआ इन्द्रधनुष मात्र है ।[90] पल भर में हज़ार बार सुनाते जाते हैं कि भारत दुनिया का सबसे महानतम प्रजातन्त्र देश है । लेकिन जनतन्त्र तो जनता की भलाई के लिए जनता का शासन है । यहाँ तो जनतन्त्र ताकतवर लोगों का तन्त्र है जो आम जनता का निरन्तर शोषण करते रहते हैं । जनतन्त्र की सहायता से शासक सारी सुख सुविधाओं के साथ आलीशान महलों में निद्रारत रहते हैं । नववामपंथी कवियों को पता है कि भारतीय जनतन्त्र मात्र एक असफल तन्त्र है । इसलिए ही वे जनतन्त्र में उग रहे वनतन्त्र के खिलाफ़ आक्रोश की मुद्रा अपनाते हैं । धूमिल ने इस 'वनतन्त्र' की परिभाषा भी दी है 'रोज सैकड़ों बार हत्या किए जाने पर भी हर बार भेड़ियों की जुबान पर ज़िन्दा रहनेवाला चमकदार गोल शब्द है जनतन्त्र । आज यह जनतन्त्र सिर कटे मुर्ग की तरह फड़क रहा है ।'[91] उसकी आकृति बहुत बिगड़ चुकी है । धूमिल की ही आवाज़ है

"चौराहे पर कवायद करते हुए ट्रेफ़िक पुलिस के
चेहरे पर मुझे हमेशा जनतन्त्र का नक्शा नज़र
आया है ।"[92]

असल में यहाँ 'जनतन्त्र एक ऐसी तमाशा है जिसकी जान मदारी की भाषा है ।[93] व्यवहार में जनतन्त्र का अर्थ है अल्पतन्त्र ।

समाजवाद उत्पादित वस्तुओं पर सामूहिक अधिकार की स्थापना है । साथ ही, उस व्यवस्था में एक नयी आर्थिक व्यवस्था तथा नए उत्पादन सम्बन्ध भी रूपायित होते हैं । उस व्यवस्था में तकनीकी आविष्कारों तथा औद्योगिक उपलब्धियों का जनता की ज़रूरतों के लिए इस्तेमाल किया जाता है । लेकिन भारत के तथाकथित का असली समाजवाद से कोई नाता नहीं है । वह अपना वास्तविक अर्थ खो चुका है । यहाँ समाजवाद कोरा नारा मात्र है । वह सुरक्षा का एक आधुनिक मुहावरा है ।[94] आज़ादी का लक्ष्य इस देश में समाजवाद लाना था । आज़ादी के 43 वर्ष बाद भी इस देश में समाजवाद की हैसियत कोरे नारे से भी बदतर हो गयी है । इस नारे की आड़ में पूँजीपति और राजनीतिज्ञ अपना स्वार्थ साध रहे हैं । समाजवाद जनसाधारण के लिए मृगतृष्णा तक नहीं रह गया है । देश में इसका बुरी तरह गंदी जुबानों द्वारा बलात्कार किया गया है । वह सिर्फ़ बाहर 'फ़ायर' लिखी बाल्टी की तरह हो गया है जो लटकती रहती है । धूमिल घोषणा करते हैं

G 5107-

"मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिसपर 'आग' लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है ।"[95]

इस महान् देश के समाजवाद का ढिंढोरा पीटने वाले महानतम नेता भ्रष्टाचार के दलदल में फँसे हुए हैं । सारे के सारे संस्कारी विभाग भ्रष्टाचार के चकले बन गये हैं । वेणुगोपल नृशंस [illegible] अनादरण तथा आक्रमण यों करते हैं

"इंदिरा गांधी स्त्री भी है [illegible] प्रधानमंत्री भी ।
और इससे सिद्ध होता है [illegible] भारत
इंडिया होते हुए भी भारत [illegible] है ।
'समाजवाद' का मतलब गांधी [illegible] भी होता [illegible] र
नक्सलवाद भी । (पसंद अपनी-अ[illegible]
ख्याल अपना-अपना)
अमुकजीने इस दल से त्याग-पत्र देकर
उस दल का सदस्यता-पत्र भर दिया है
हम इस खेल में बहुत आगे हैं लेकिन
उस खेल में ज़रा पीछे हैं ।"[96]

समाजवाद के नाम पर नेता तरह-तरह की सुविधाएँ भोग रहे हैं । यहाँ समाजवादी वाकई महिमा षड्यन्त्र है । उसके नाम पर लोगों को बेवकूफ़ बनाया जा रहा है । पल भर पच्चीस बार समाजवाद के नारा लगाते राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य करते हुए कवि रघुवीर सहाय लिखते हैं

"बीस बड़े अखबारों के प्रतिनिधियों ने पूछा
पच्चीस बार, क्या हुआ समाजवाद
महासंघपति ने पच्चीस बार, हम करेंगे विचार
आँख मारकर पच्चीस बार वह हँसे
पच्चीस बार हँसे बीस अखबार
एक नयी की तरह की हँसी यह है ।"[97]

भारत में समाजवाद के नाम पर होते निरर्थक कोलाहल से कवि अत्यन्त आक्रान्त हैं । लीलाधर जगूडी के विद्रोही मन से फूटनेवाली आवाज़ है

"सूखा ! बाढ़ और जाड़ा ! इन सबसे ज़्यादा
बीवियों ने इस देश का समाजवाद बिगाड़ा ।"[98]

समाजवाद के नाम पर भ्रष्टाचार के चूहे देश कुतर रहे हैं । समाजवाद के नाम मिलते झूठे अश्वासनों के प्रति कवि कृष्णदत्त पालीवाल की प्रतिक्रिया इस प्रकार है

"समाजवाद का मन्त्र देकर
आज़ाद देश का महान् नेता

मेरी छाती में तेजी से
एक भाला भोंक देता है ।"[99]

समाजवाद का मतलब बराबरी है, लेकिन बराबरी भी कई तरह की होती है । इस मुल्क में सिर्फ़ बराबरी की बातें की जाती है ।[100] समाजवाद में चंद लखपति और नेता आबाद हो रहे हैं ।[101] समाजवाद इन लोगों की बपौती है । 'गरीबी हटाओ', 'हरित क्रान्ति', 'बेकारी हटाओं', 'नेहरू रोज़गार योजना', 'एकता और अखण्डता', 'समाजवाद' आदि सत्ता हथियाने के लिए राजनीतिक स्टंट रहे थे । वास्तव में गरीबी हटाने के लिए और समाजवाद लाने के लिए भ्रष्ट व्यवस्था को हटाना ही एकमात्र विकल्प है । इसके लिए छेनी और हथौडे से गढकर कोई वज़नी बात धोखेबाजों के मुँह पर मारनी चाहिए ।[102]

यहाँ समाजवाद तीन आने से तीन हज़ार तक फैला हुआ है । आर्थिकतन्त्र को लकवा मार गया है

"ये कैसा देश है ?
ये कैसे लोग हैं ?
जहाँ फैला है तीन आने से तीन हज़ार तक
समाजवाद
और गरीबी हटाते हटाते आर्थिक तन्त्र को
मार गया लकवा ।"[103]

इसी हालत में देश के नेता लोग समाजवाद की हत्या में संलग्न हैं । आज भारत का समाजवाद लूला, लंगडा है । समाजवाद आ गया है । सब मिलकर बाँटकर खा रहे हैं । समाजवाद के नाम पर मातृभूमि में लूट चल रही है । समाजवाद मर चुका है और लोग इसके नाम चिट्ठियाँ भेज रहे हैं (सुरेश किसलय हलफ्नामा पृ.43) बाज़ार से सरसों का तेल गायब होने की यात्रा समाजवाद की यात्रा है (ब्रेजेश्वर वामकविता पृ.13 सं.ललित शुक्ल) । समाजवाद चुनावी चर्चा है, पूँजीवाद के वज़न से दबी हुई सरकारी फाइल है । (सोमेशपुरी सन्दर्भ पृ.66 सं.मदनमोहन)

नववामपंथी कवियों ने बहुत सही फरमाया है ; यह जनतन्त्रवादी समाजवाद नहीं है पूँजीवादी समाजवाद है ; चुनावी समाजवाद है । 'गरीबी हटाओ', 'राजीव को बुलाओ, भारत को बचाओ', 'समाजवाद लाओ' सिर्फ नारा है । समाजवाद होली लायेगी (हनुमंत रण्खान लाश पृ.18) । समाजवाद में पूँजीवाद और सामंतवाद की मिलावट है । भारत में यह छलावा है । वह कागज़ पर रचा गया है । यह देश पूँजीवाद और सामंतवाद की बदबू से ग्रस्त है । इस देश के नेता मँजे हुए मदारी है । सुधाकर मिश्रा के शब्दों में

"बातें बड़ी-बड़ी और, बहाने बड़े-बड़े
चालाक मदारी का काम है समाजवाद ।"[104]

समाजवाद नल है, लहर है, कि बाढ़ है । (श्रीराम वर्मा कालपत्र पृ.61) लीलाधर जगूडी असलीसमाजवाद की सुरक्षा करना चाहते हैं । वे पूँजीवाद तथा सामंतवाद की बदबू से ग्रस्त समाजवाद को विनष्ट करना चाहते हैं । उनके ही शब्दों में

"खतरे और कर्तव्य की कचकचाती पेशियों को
धर्मवती के मांस में गड़ाकर
बाहर करना है 'समाजवाद' ।"[105]

व्यवस्था की म्रियमाणता और आक्रामकता से पूर्णतः परिचित आदमी भी चुनाव ही सही इलाज मानता है । आम आदमियों की धारणा यह है कि चुनाव से ही सभी समस्याओं का समाधान संभव है । भ्रष्ट नेताओं की भी यही धारणा है । वे इन्हीं धारणाओं को आम आदमी के बीच पनपाने की मजबूर कोशिश करते हैं । धूमिल की कविता की पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती है

"एक दूसरे से नफ़रत करते हुए वे
इस बात पर सहमत हैं कि इस देश में
असंख्य रोग है
और उनका एकमात्र इलाज
चुनाव है ।"[106]

समझ और सहमति से बाहर औसत आदमी गलत उम्मीदवार का सुरक्षित 'वोट' है ।[107] वास्तव में चुनाव जनता की आँखों में धूल झोंक कर जीनेवाले चन्द टुच्चे नेताओं का पेशा है । नेताओं के भाषणों के पीछे छिपी चालबाजी को न समझकर आम जनता चुनाव में भाग लेती है । जनता को 'बुरे, और बुरे के बीच से किसी हद तक कम-से-कम बुरे को' चुन लेने का मौका भी मिलता है ।[108] चरित्रहीन, सुविधालोलुप तथा भ्रष्ट नेता चुनाव में भाग लेने की प्रेरणा जनता को देते हैं । लेकिन चुनाव का यथार्थ मकसद और भयंकर चित्र धूमिल यों खींचते हैं

"तुम चाहे जिसे चुनो
मगर इसे नहीं
इसे बदलो
मुझे लगा ; आवाज़ जैसे किसी जलते हुए
कुएँ से आ रही है
एक अजीब सी प्यार भरी गुर्राहट
जैसे कोई मादा भेड़िया अपने छौने को दूध पिला
रही है और साथ
मेमने का सिर चबा रही है ।"[109]

चुनाव के बाद भी देश की दुर्दशा का अन्त नहीं होता । लीलाधर जगूडी इसकी ओर संकेत कर लिखते हैं

"यहाँ से वहाँ तक चुनाव के बाद का संकट लेकर
पेट और प्रजातन्त्र के बीच
आदमी दरार की तरह खड़ा है
और बवण्डर । हर दरवाज़े पर
पर्दे की तरह पड़ा है ।"[110]

पूँजीवादी जनतन्त्र में चुनाव से सर्वहारा की स्थिति नहीं बदलती, केवल मालिक बदल जाते हैं । अतः जो सचमुच परिवर्तन चाहते हैं, वे चुनाव को नहीं संगठित क्रान्तिकारी दल के सशस्त्र विद्रोह को सही विकल्प मानते हैं ।[111]

निष्कर्षतः नववामपंथी कवियों ने यह साबित किया है कि राजनीति और कविता का रिश्ता बहुत गहरा है । सामाजिक व्यवस्था में दोनों की भूमिका है । दोनों बहतर सामाजिक संरचना के लिए प्रतिश्रुत हैं । राजनीति कविता की शक्ति और कविता राजनीति की शक्ति बनकर सामाजिक बदलाव में कारगर भूमिका अदा कर सकती है ।

नववामपंथी कविता में राजनीति सबसे अधिक गतिशील एवं क्रूरतम सच्चाई के रूप में अभिव्यक्त भी हुई है । उनकी कविता वाकई राजनीतिक कविता है । राजनीतिक कविता के सम्बन्ध में बॉवरा का कथन नववामपंथी कविता के संदर्भ में सही लगता है । 'राजनीतिक कविता काल्पनिक अतीत का सृजन नहीं करती है । उसकी प्रवृत्ति एक बृहत् वर्तमानता को प्रस्तुत करना है ।[112] नववामपंथी कवियों ने भी वर्तमान की विराटता को ईमानदारी से प्रस्तुत किया है । उनकी कविता की प्रत्येक पंक्ति में वर्तमानता व वर्तमान राजनीति अंकित है । उनकी समूची कविताएँ यहाँ की राजनीतिक मिट्टी की उपज है । पिछले दशक में कविता और राजनीति के सम्बन्धों को लेकर काफ़ी बहसें हुई हैं और माना गया है कि आज की प्रतिबद्ध जनवादी कविता अपने समय की राजनीति से सरोकर रखती है ।

व्यवस्था के प्रति विद्रोह तथा क्रान्ति का आह्वान :- निश्चय ही, एक दल या गुट विशेष के शासन का तख्ता पलटा जाना मात्र, क्रान्ति नहीं है । मध्ययुग में राजाओं या राजवंशों की लड़ाइयाँ होती थीं, किन्तु एक राजवंश को अपदस्थ किए जाने से कोई क्रान्ति नहीं होती थी । सामाजिक सम्बन्ध वही सामन्ती बने रहते थे । क्रान्ति तब हुई जब नवोदित पूँजीवाद ने सामन्ती सत्ता का तख्ता पलट दिया और संसदीय, प्रजातान्त्रिक व्यवस्थाएँ कायम की, कहीं पर सशक्त कार्यवाहियों के ज़रिए और कहीं शान्तिपूर्वक आन्दोलनों द्वारा । इसके बाद जब संसदों में जब मज़दूर किसान वर्गों का प्रतिनिधित्व बढ़ने लगा और पूँजीपतियों ने उनके ज़रिए अपना शासन बनाए रखना असम्भव देखा तो उन्होंने संसदें भंग कर दीं और तानाशाही कायम कर दी जिसको फासिज़्म का नाम दिया जाता है ।

फासिज़्म कोई क्रान्ति नहीं, पूँजीवादी का शासन बनाये रखने का नया रूप है । हद से हद उसे प्रतिक्रान्ति कह सकते हैं ।[113] प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में जब शासक पार्टी हार जाती है और विरोधी दल सत्ता प्राप्त करता है तब भी कोई क्रान्ति नहीं होती क्योंकि सामाजिक ढाँचा ज्यों का त्यों बना रहता है । दूसरे शब्दों में क्रान्ति का अर्थ है कि समाज के बुनियादी वर्गों में से प्रभुत्वशील वर्ग की सत्ता समाप्त हो जाय और अन्य वर्ग की सत्ता स्थापित हो जाय ।

वास्तव में आज क्रान्ति का अर्थ है कि मेहनकश जनता सत्ता हथिया लें ; राज्यतन्त्र पर पूँजीपति वर्ग का प्रभुत्व समाप्त कर दे तथा समाज में पूँजीवादी सम्बन्धों का उन्मूलन कर दे । यह, आमूल क्रान्ति या टोटल रेवल्यूशन की वैज्ञानिक परिभाषा है । इस दिशा में बढ़ाया गया हर कदम क्रान्तिकारी कदम है और दिशा से पीछे हटाने या पथभ्रष्ट करने वाला कदम क्रान्तिविरोधी कदम है ।[114]

विद्रोह तथा क्रान्ति दोनों भिन्न हैं क्रान्ति एक संगठित प्रयास है जिसके लिए राजनीकि और संगठनात्मक काम किया जाना अनिवार्य है । विद्रोह अन्ततः एक सार्थक परिवर्तन के लिए छिड़े गए संघर्ष का ही तो नाम है क्रान्ति हमेशा नयी व्यवस्था चाहती है । लेकिन विद्रोह तो सिर्फ़ एक्शन है । उसकी कोई पूर्वनिर्धारित योजना नहीं रहती । वह सतत् संघर्ष है ।[115] मनुष्य जब दासता की मनोवृत्ति से उबरने के लिए प्रयत्नशील होता है और समानता की मनोभूमि पर अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर संघर्षरत होता है, तभी विद्रोह की नींव पड़ती है ।[116] कविता के सन्दर्भ में विद्रोह एक विचार और चेतना है । यह मानवीय और सामाजिक स्थितियों से संयुक्त एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है । यह व्यक्ति को संगठनात्मक कार्य की ओर उन्मुख करता है । कामू के मतानुसार विद्रोह एक अनिवार्य परिणति है । ऐतिहासिक सत्य है ।[117]

नववामपंथी कवि क्रान्तिकारी हैं । उनकी क्रान्तिचेतना मध्ययुगीन विद्रोह भाव से एक दम भिन्न है । मध्ययुगीन विद्रोह भाव, धर्म और दर्शन पर निर्भर था । उसके केन्द्र में धार्मिक और दार्शनिक आस्थाएँ हैं । और अन्ततः उन्हीं से जुड़ी हुई मान्यताएँ और मूल्य भी थीं, जबकि इन आस्थाओं, मान्यताओं और मूल्यों से आधुनिक विद्रोह का कोई विशेष सरोकार नहीं है । विद्रोह की आधुनिक अवधारणा के मूल में ऐतिहासिकबोध, वैज्ञानिक चेतना, सामाजिक दर्शन और राजनीतिक दृष्टि होती है ।[118]

नववामपंथी कवि सामन्तवादी, पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरोधी हैं । यह मात्र साहित्यिक विरोध न होकर सामाजिक क्रान्ति का उत्प्रेरक विरोध है । धूमिल ने स्पष्ट लिखा है "मैं गलत बातों का विरोधी हूँ । और मेरा यह विरोध कभी अपनी पूरी प्रतिक्रिया के साथ बेलौस व्यक्त होता है और कभी बुदबुदाते हुए । जब मैं

किन्हीं कारणों से खुलकर गलत का विरोध नहीं कर पाता तो दुःखी पाता हूँ । दुस्साहस मेरी विवशता है ।[119] धूमिल का विरोध याने अस्वीकार आधे-अधूरे मन से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण बौद्धिक और मानसिक शक्ति की प्रेरणा उसमें निहित है । इस वजह से उनका अस्वीकार केवल भावुक प्रतिक्रिया, महज़ नकार, कोरा विद्रोह, आक्रोश या विस्फोट न होकर, रचना के पक्ष में एक दर्शन है ।

लीलाधर जगूडी ने 'नाटक जारी है' काव्य संकलन में व्यवस्था के मुखौटा को नोचकर फेंक दिया है

इस स्वतन्त्र मुल्क में व्यवस्था नाटक में लगी हुई है ; कुछ लोग देश को बना रहे हैं ; सहकारी आदमी देश उजाड़ रहे हैं ; और सरकारी दुनिया पोस्टर की दुनिया है । आजादी यहाँ डकैती है

"आजादी जब अंधेरे के लेन-देन में आकार लेती है
तो वह व्यक्तिगत फायदों के बाबात
सार्वजनिक क्षेत्र में
लघु कार्यक्रम के बहाने एक डकैती है ।"[120]

डकैत कौन है ? धनिक लोग । वे देश-सेवा के नाम पर देश को लूटते हैं । उनके सभी काम देश का काम हैं । याने वे देश खाते हैं । देश की टट्टी करते हैं । देश का पेशाब करते हैं ?[121]

सत्ता पूँजीपतियों और ज़मीन्दारों से मिलकर किसानों और मज़दूरों का दमन करती है तथा उनपर गोलियाँ बरसाती है । दमनचक्र चलानेवाली व्यवस्था से जूझकर किसानों और मज़दूरों ने अपनी जान गंवाई है । इसकी सही तस्वीर लीलाधर जगूडी 'इस यात्रा में' यों ही प्रस्तुत करते हैं

"जब चारों ओर
बारूद की गंध छा रही हो
तो इधर चलना ज़रूरी हो गया
जिधर से
मिट्टी में मिले हुए नगण्य लोगों को छूकर
अब भी फ़सलों की गंध आ रही है ।"[122]

इन नगण्य लोगों के दुश्मन क्रान्तिकारियों का असली 'टारजेट' है । वेणुगोपाल लिखते हैं

"और
तुम
देखने लगे हो
सुदूर
नीचे
सभी ओछे
सभी टच्चे

सबके सब नमक-हराम
दिखाई देते
दिखाई देते
हर चलायमान धब्बे में
आदमी नहीं उसे
जो
कभी आदमी नहीं होता
तुम्हारे लिए शरसंधान का एक
'टारगेट' होता है ।" [123]

व्यवस्था सत्ता में बने रहने के लिए तरह-तरह के हथकंड अपनाती है, व्यक्ति माने देश और देश माने व्यक्ति जैसा नारा लगवाती है और लोगों को भूखा रखती है । इसी शोषण-ग्रसित समाज में लोग उदास हैं । इस हरे-भरे देश में ! भूख, गरीबी और बेकारी भयानक रूप से विद्यमान हैं । सत्ता सज्जनों को भी पागल बना रही है । अपराध और पागलपन व्यवस्था की देन है । कवि वेणुगोपाल इस नृशंस व विकराल स्थिति का पर्दाफाश यों करते हैं

"क्यूबा-वियतनाम की बातें चोदने वाले
पब्लिक-गार्डन में गुरझते फूलों की फिक्र में
दुबले होते रहते हो लेकिन
अपने कमरे की दीवारों का उखड़ता पलस्तर
दिखलाई नहीं देता
अकाल-भुखमरी को टाइम्स आफ इंडिया के
ज़रिए जानते हो
दो-चार आँसू भी बहा लेते हो
फर्ज़ के नाम पर
लेकिन उसके बाद ! दिन-दुपहरी में भी
शहर के सबसे ज़्यादा व्यस्त चौराहे पर स्थित
होटल में बैठकर
अनुपस्थित अंधेरे की शिकायत करते हो
खिलाफ़त करते हो
एक पल को भी तुम्हारा उत्साह
अपने गरीबों में नहीं झाँकता ।" [124]

व्यवस्था हमें चुप्पी साधने को सिखाती है । पुलिस फोर्स को सिखाया जाता है हरेक पर शक करो, विश्वास केवल दीवान को करो, दारोगा का करो । [125] वेणुगोपाल इसका विरोध यों प्रस्तुत करते हैं

"तुम
जो
संगीत थे
इसीलिए विद्रोह थे
और इसीलिए
हर उस आदत के खिलाफ़ थे
जो चुप रहना सिखाती है ।" [126]

वेणुगोपाल इस व्यवस्था में चुप्पी साधने में असमर्थ हैं । वे विद्रोही रूख अपनाते हैं । उनको अच्छी तरह मालूम है कि व्यवस्था ने आम आदमी की आज़ादी को तरह-तरह से हड़प लिया है, आम आदमी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को कुचल दिया है, देने के नाम पर आम आदमी को केवल अभाव ही दिया है । व्यवस्था 'अर्थव्यवस्था' पर अपनी पकड़ मज़बूत बनाते हुए, संगठन को कुचलने में लगी हुई है । आज़ादी आज़ादी नहीं, आज़ादी खोखली आज़ादी है, वाकई वह गुलामी है । नववामपंथी कवियों ने व्यवस्था के विरुद्ध आक्रामक ढंग से हमला किया है । उन्होंने दृढ़ होकर संघर्ष की वकालत भी की है ।

नववामपंथी कवि भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा साहित्यिक विभीषिकाओं के प्रति लोगों को सजग करते हैं । वे सतर्क रहने की चेतावनी देते हैं । ज़िन्दा रहने के लिए पालतू होना ज़रूर है कहकर चुप्पी साधकर रहना भी अनुचित है । धूमिल यों लिखते हैं

"लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं है
इसलिए मैं कहता हूँ कि हर हाथ में
गीली मिट्टी की तरह हाँ. .हाँ मत करो
तनो
अकड़ो
अमरबेलि की तरह मत जीओ
जड़ पकड़ो ।" [127]

अब अपनी आदतों को बदलने का वक्त आ गया है । यह होंठ सौंप देने का समय नहीं । यह मासूम चेहरे को सहलाने का वक्त नहीं है । यह प्यार करने या प्रेम पत्र लिखने का समय नहीं है । वेणुगोपाल के शब्द उद्धृत किए जा सकते हैं

"यह
या तो बीच का वक्त होता है
यह पहले का
जब भी
लड़ाई के दौरान
सांस लेने का मौका मिल जाय

उस वक्त
जब
मैं तुम्हारी बंद पलकें बेतहाशा चूम रहा था और
हमारी
दिन-भर की लड़ाई की थकान
खुशी की सिहरनों में तब्दील हो रही थी
और
हमारे साथ
एक दूसरे के अंगों पर फिरने के बहाने
एक दूसरे की पोशीदा चोटों को
सहला रहे थे ।" [128]

दूर कहीं बिगुल बज रहा है यह फौजियों की वापसी का वक्त है ।

"यह वक्त घबराए हुए लोगों की शर्म
आँकने का नहीं
और न यह पूछने का कि सन्त और सिपाही में
देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन है ।
आह ! वापस लौटकर
छूटे हुए जूतों में पैर डालने का वक्त
यह नहीं है ।" [130]

इससे अवगत होकर क्रान्ति के लिए कवि अपने को सुसज्जित करते हैं । वेणुगोपाल लिखते हैं

"मैं
आजकल एक काम कर रहा हूँ
कि खुद को ठीक-पीटकर तैयार
कर रहा हूँ ।" [131]

यह आपातकाल का समय है । दुर्घटना बहुत नज़दीक है । यह सम्पूर्ण क्रान्ति का वक्त है । कवि अगली लड़ाई के लिए आह्वान करते हैं

"अपनी आदतों में
फूलों की जगह पत्थर भरो
मासूमियत के हर तकाज़े को
ठोकर मार दो
अब वक्त आ गया है कि
तुम उठो
और अपनी ऊब को आकार दो ।" [132]

इसी अवसर पर कवि चुप्पी साधकर चहार दीवारी के दमघोट वातावरण में बैठ न सकते हैं । जगूड़ी ने स्पष्ट बताया

"आ रही हवाओं से असम्पृक्त
नहीं रह पा रहा है
मेरा रक्त ।" [133]

इस वक्त कवि फूलों की मासूमियत या मासूम चेहरा तलाशते नहीं । वे पेड़ों और पत्थरों की भूमिका पर ज़ोर देते हैं

"पत्थर से पत्थर को रगड़ना
बेहतर होगा इस वक्त
इस वक्त आग की जुगाली और खून में लगातार
दौड़ती स्मृतियों को
जिलाये रखना ही बेहतर होगा ।" [134]

वेणुगोपाल ने स्पष्ट बताया है कि इस लड़ाई में फूल की कोई भूमिका न होती है । कवि यहाँ रूमानियत के स्पर्श से विमुक्त होना चाहते हैं उनके पास व्यापक जीवन दर्शन हैं जिसे उन्होंने रचनात्मक स्तर पर अंगीकार किया है । अपनी 'गोताखोर' दृष्टि द्वारा उन्होंने संघर्ष चेतना को अपनी कविताओं में प्रतिपादित किया है । वेणुगोपाल की काव्य चेतना इसी आत्मसंघर्ष से पूर्ण गोताखोर चेतना की परिचायक है । 'वे हाथ होते हैं', 'हवाएँ चुप नहीं रहतीं', 'चट्टानों का जलगीत', काव्य संग्रहों द्वारा वेणुगोपाल अपनी पृथकता स्थापित कर चुके हैं । मार्क्सवादी सौन्दर्य चेतना को लेकर कवि आगे बढ़ा है । इस दर्शन का पूर्णरूपेण प्रभाव सर्वत्र देखने को मिलता है । अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तनावों को झेलते हुए कवि ने कविता को नए तेवर प्रदान किए हैं । क्रान्ति को वे कविता की प्रक्रिया में देखते हैं और इसी प्रक्रिया के द्वारा वे परिवर्तन चाहते हैं । एक सार्थक रचनादृष्टि को कवि अनवरत संघर्ष से परिपूर्ण स्वीकारते हैं । कवि ने स्पष्ट बताया है कि सामाजिक बदलाव का एक मात्र विकल्प जनवादी चेतना और वर्गसंघर्ष ही है । वे क्रान्तिधर्मिता को अनिवार्य स्वीकारते हैं

"फैसला वे हाथ करेंगे
ऐन सिर पर
बगावत के बादलों की गड़गड़ाहट है
क्योंकि करोड़ों
बर्फ निगाहें अब धधकने लगी हैं
कमान पीठों ने बोरे गिरा दिये हैं और तनकर
सीधी हो गयी हैं
लुंजपुंज भिखारी हाथ-फौलादी घूँसों में
बदल गये हैं ।" [135]

निम्नवर्ग की संगठित क्रान्ति की आग ही इस पूँजीवादी शोषण तन्त्र को जला सकती है । बगावत के बादलों की गड़गड़ाहट और बर्फ निगाहों

का पिघलना, लुंजपुंज भिखारी हाथों का फौलादी घूँसों में बदल जाना, वर्ग-संघर्ष, क्रान्ति की ज़मीन है । जब तक हमारे लुंजपुंज भिखारी हाथ विवशता को तिलांजलि देकर फौलादी हाथों में परिवर्तित नहीं होते, 'बर्फ निगाहें धधकती नहीं' तब तक निम्नवर्ग के इतिहास में परिवर्तन नहीं ला सकता । आगे कवि लिखते हैं

"दोपहर में
लोग
बड़ा-सा पेड़
ढूँढ़ते हैं
और फूल
निपट अकेला हो जाता है ।
छांह की बुनावट में
फूल की कोई भूमिका नहीं होती ।" [136]

कवि डालियों, उन फूलों और मिट्टी की हकीकत को जान चुके हैं । इसलिए वे कहते हैं कि हवाएँ चुप न रहती हैं । हवा क्रूर दौर में चुप्पी धारण नहीं कर सकती । कवि यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं

"मैं
हाथों में फूल नहीं पत्थर लिए हुए हूँ
तो इसलिए कि अपनी मुट्ठियाँ
फूलों से
भरना नहीं चाहता हूँ

..इन्हें मेरा इन्तजार करना चाहिए
और राख के ढ़ेर में ढूँढ़ते रहना चाहिए
शोला नहीं तो कोई चिनगारी ही
मेरे लौटने तक ।" [137]

फूलों और मिट्टी के भविष्यनुमा अभिशाप को बदलने के लिए वे सौन्दर्य-बोध के सवाल पूछते हैं । इन स्थितियों को देखकर कवि कहते हैं कि इस शोषण के 'राख के ढ़ेर' में अवश्य ही विस्फोट होगा, क्योंकि इनमें अभी उर्वर शक्ति, आग शेष है । उन्हें विश्वास है कि इस राख के ढ़ेर में कभी न कभी चिन्गारियाँ अवश्य निकलेंगी जिससे पुनः अग्नि संग्राम होगा । इसके लिए वे व्यापक संघर्ष की तैयारियाँ कर रहे हैं । यह संघर्ष इतना विराट् और विकराल होगा कि उसमें प्रकृति भी साथ देगी । संघर्ष के समय वृक्षों तक साथ देता है । विनयश्रीकर के शब्दों में

"हमारे पास दमदार वृक्षों का समर्थन है
हत्यारों के खिलाफ़

ये वृक्ष हमारे साथ लड़ेंगे
हहराते हुए ये वृक्ष । झुण्ड के झुण्ड
और जुलूस के जुलूस निकल पड़ेंगे ।" [138]

लीलाधर जगूडी का इतिहास-दर्शन सदैव संघर्षपरक ही रहा है । उन्होंने अपनी गहन इतिहास दृष्टि द्वारा इसी तथ्य को रेखांकित किया है कि वास्तविक जीवन संघर्ष को निरूपित किया है । जगूडी सरलता, सुविधा तथा अनुबौद्धिकता के मार्ग की अपेक्षा संघर्ष, बौद्धिकता और विवेकशीलता का पक्षधर्मी हैं । कवि संघर्षपरक मिट्टी से नाता जोड़कर लिखते हैं

"न तना बनना सरल है
न टहनियों की तरह निकल आना
न फूल न फल, न पत्ता बनना सरल है
न अपनी ज़मीन
जड़ों के लिए ज़मीन को पटना
कुछ भी सरल नहीं है
सवाल केवल पेड़ होने का नहीं है
वह तो सिर्फ़ एक नाम है
जैसा कि आज़ादी
नाम में क्या रक्खा है ?" [139]

पूँजीवादी सत्ता के यह नियम हैं कि समाज को सदैव अबोध ही रखा जाये । इसके मूल में उन्हें अपने अन्तर्विरोधों को छिपाना है । समाज को संघर्ष-चेतना से दूर करना भी उनका लक्ष्य है । व्यवस्था की यह नीतियाँ सर्वथा असामाजिक, दायित्वहीन व ह्रासशीलता की द्योतक हैं । यह दृष्टिकोण संघर्ष चेतना की अपेक्षा निष्क्रियता, विवशता, संकल्प की अपेक्षा नियतिवादी बनाकर हमारी चेतना को क्षतिग्रस्त करता है । जब तक हम व्यवस्था के इन अन्तर्विरोधों को समझकर उनका विरोध कर संघर्ष चेतना अंगीकार नहीं करते तब तक यहाँ आज़ादी संदिग्ध एवं 'मोहताज' ही रहेगी । असलियत पहचानकर वेणुगोपाल लिखते हैं

"वहाँ फूल इन्तज़ार करता है
एक अदद हाथ का
मंच पे आने के बाद
लेकिन
अकसर
परदा उठने से पहले ही
पसीने और मिट्टी में
लथपथ होकर हाथ
सब कुछ भूल चुका
होता है
फूल के बाबत ।" [140]

कवि अपने व्यस्त जीवन में भी अपना दायित्व भूल जाते नहीं । उनका मन संघर्ष प्रक्रिया से गुज़र रहा है । उनका अनुभव भी लोकव्यापक और परिपक्व है । उनकी समूची रचनाएँ इसका ज्वलन्त मिसाल है

"मैं फूल नहीं हो सका
बगीचों से
घिरे रहने के बावजूद
उनकी हकीकत जान लेने के बाद
यह मुमकिन भी नहीं था । यों
अनगिन फूल हैं वहाँ । लेकिन
मुस्कुराता हुआ कोई नहीं ।
आसान है दहलीज से आंगन तक दौड़
घरेलु ठहाकों को देखना ।
छूना
लेकिन मैं किसी कतार में हूँ राशन की
या बस की या ऐसी ही कोई और. |4|

तमाम चुनौतियों की कतार में कवि खुद को तैयार करना चाहते हैं । वस्तुतः कवि का संघर्षदर्शन समुन्दरी यात्रा पर आधारित है । यह यात्रा इतनी खतरनाक, जोखिम भरी है । हर पड़ाव पर व्यक्ति के विचलित होने की संभावना है । कवि इस विचलन को तोड़कर संघर्ष चेतना का संचार करना चाहते हैं । क्योंकि कवि ने

"सुना है कि समंदर में मगर और शार्क हैं ।
और पता नहीं
कौन-कौन जानवर रहते हैं । सो
बचाव की तैयारी ज़रूरी है । इसलिए
दाँतों को इस कदर मज़बूत बना रहा हूँ
कि मौका पड़े तो मगर की पीठ में गड़ गएँ
और पंजों को इस लायक
कि शार्क की गरदन जकड़ लें
तो उसे फरिश्ते याद आ जाएं
और सुना है
कि वहाँ मीलों तक पानी ही
पानी होता है ।" |42

'गोताखोर', 'मल्लाह', 'तैराक', 'नदी की नाव', तमाम विकल्प हैं, जो उसके संघर्षबोध को निरूपित करते हैं । कवि स्वयं को सदैव 'समुन्दरी सफर' के लिए तैयार करते हैं । यही संघर्ष चेतना कवि को जनवादी चिन्तन से जोड़ती है । वेणुगोपाल के शब्दों में

"जबकि हमें सिर्फ यह करके ही
याने गोताखोर बनके ही

नहीं रह जाना है
पार भी करना है इसे
इस नदी को
हो सके तो नाव की तरह
नहीं तो मल्लाह की तरह
और अगर ऐसा भी न हो सके
तो फिर किसी तैराक की तरह
क्योंकि यात्रा कोई भी हो,
निर्दोष नहीं होती. "[143]

कवि जगूडी निर्जीव तथा आलसी जनता को सम्बोधित करते हैं । वे उसे अपने आप को बदलने की सलाह देते हैं । उसे बाहर सड़क पर आने और चीखने, लीक तोड़ने व साफ़-साफ़ बोलने को कहते हैं । कवि विश्वास की, कभी भलमान्साहत, शर्म और सरलता को छोड़ने की सलाह भी जनता को देते हैं

"उदास लोगों !
यह वज्रपात है
इसके बाद तुम्हारे चेहरे पर
हिलती हुई इच्छा के अलावा
आक्रमण के लिए शेष
नहीं रह जायेगी कोई दूसरी ज़मीन ।
xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

एक मामूली चिड़िया को भी
हमें अब स्वाभिमानी बनाना है
उदास लोगों ! यह वज्रपात है ।"[144]

लेकिन कवि जानते हैं कि जनता के चारों तरफ़ चक्कर काटता हुआ एक 'पूँजीवादी दिमाग' है जो परिवर्तन तो चाहता है मगर आहिस्ता-आहिस्ता । धूमिल इसकी ओर संकेत करते हैं

"कल तक मुँह में जीभ डालकर
बोलनेवाला प्यारा पड़ोसी
आज देशी दांतों की दोस्ती से
डर रहा है ।"[145]

सब के सब व्यवस्था के पक्ष में चले गए हैं । कवि इन्तज़ार करते हैं कि किसी न किसी एक दिन अदना आदमी भी कवि के साथ हो जाएगा । तेलुंगाना, श्रीकाकुलम तथा नक्सलबाड़ी जनक्रान्ति के बाद अनेक क्रान्तिकारी निष्क्रिय हो चुके हैं । लेकिन समय आने पर नवजनक्रान्ति में अपने पूर्ववर्ती साथी ज़रूर भाग लेंगे । कवि वेणुगोपाल के शब्दों में

"वह
किसी वक्त और कहाँ मेरे साथ हो जाएगा ?
नहीं जानता । इतना तो तय है कि वह
ऐसा कोई मौका नहीं चूकता जो मेरे लिए
महत्व रखता है
तेलुंगाने का जुलूस निकल रहा था
और वह मेरे साथ था ।
विद्यार्थियों और मज़दूरों पर गोली चल रही थी
और वह मेरे साथ था ।
नक्सलबाड़ी और श्रीकाकुलम में सरकारी ताकत को
मुँहतोड़ जवाब दिया जा रहा था
और वह मेरे साथ था ।" [146]

कवि की चेतना निरन्तर अशोभित स्थितियों को देखकर व्याकुल है । कवि टूटते परिवार में धनुष टंकार झेलते हुए जवान् बछडे-सा कराहते हैं । उनको मालुम है कि पैरों के नीचे की मिट्टी निरन्तर रौंदी जा रही है । कवि ने उस समाज की कराह, व्यथा को सुना, महसूसा है और उसकी तकलीफ़ों को निजता के स्तर पर आत्मसात् किया है । देश की वर्तमान दुर्दशा और आम आदमी की बिगड़ती हालत से कवि चुप्पी साधकर जीना नहीं चाहते हैं । वे जनता के साथ सक्रिय संघर्ष में भाग लेना चाहते हैं । वेणुगोपाल का कहना है कि कल के युद्ध के लिए सभी तैयारियों के साथ, अपनी कविता लिए मुझे वहाँ उपस्थित रहना है । कवि को जनता के साथ संघर्ष में भाग लेना है चाहे मृत्यु ही हो जाय ।

"जहाँ
तुम खडे हो
इस वक्त
जहाँ तुम चलते थे
कभी
वहाँ
अब भी एक रास्ता है ।" [147]

कवि पतझर और हरियाली में भी जनता का पक्षधर हैं । कभी-कभी कवियों को जुलूसों में जनता के साथ भाग लेना पड़ता है । कभी-कभी उनको कॉन्स्ट्रेशन केम्पों में जाना पड़ता है । वे नमकस्तूप न बन सकते हैं

"कभी अपने नवजात पंखों को देखता हूँ
कभी आकाश को
उड़ते हुए ।
लेकिन ऋणी मैं फिर भी

ज़मीन का हूँ
जहाँ
तब भी था जब पंखहीन था
तब भी रहूँगा जब पंख झर जायेंगे ।" [148]

कवि अभावग्रस्त लोगों की मुक्ति के लिए कटिबद्ध हैं । जुलूसों में भाग लेते वक्त तथा दीवारों पर नए पलस्तर देखते वक्त कवि का आत्मविश्वास बढ़ता है । वेणुगोपाल के शब्दों में

"मैं आकाश होने को ज़मीन हो जाता हूँ और
गमलों की जगहें बदलता हुआ
इतना प्रसन्न गुनगुनाता हूँ कि दीवारों पर
नया पलस्तर लग जाता है ।
× × × × × × × × × × ×

घर मेरे साथ हमेशा रहता है
मैं/ चाहे जिस सड़क पर, चाहे जहाँ रहूँ ।" [149]

कवि गुरिल्ला रूख अपनाकर जन-क्रान्ति में सक्रियता से भाग लेते हैं । वह पूर्णतः भरोसेमंद है । उनका विश्वास इस प्रकार है

"कुछ दिन अभी और यही लगेगा
रातों-रात बदल गए सम्बन्धों से
कल का सूर्य विकृत नहीं होगा
कुछ भी नहीं होगा लांछित
सिर्फ एक लावा जो कुर्सियों के आस-पास फूटेगा
नक्शा बदलने के लिए काफ़ी है ।" [150]

स्वप्निल श्रीवास्तव 'घुड़सवार' शीर्षक कविता में इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं

"तकलीफ़ों के बीच
पौधे सा बढ़ते हुए
सुबह-सा हँसते हुए
मैंने जाना कि
मैं घुड़सवार हो सकता हूँ ।
पथरीली ज़मीन पर
मेरे पांव
घोड़े से भी ज़्यादा तेज़
दौड़ सकते हैं
मेरी चीखों में
पर्वतों में पड़ सकती है चीख़ ।" [151]

नवक्रामपंथी कविता में सबसे अधिक मुखरित स्वर उसकी सशस्त्र क्रान्ति

चेतना का ही है । कवि अपने समय की जटिल समस्याओं से साहस के साथ जूझ रहे हैं उन्होंने स्पष्ट बताया ; यह तो युद्ध है/ एक युद्ध है । एक समूचा और निर्णायक युद्ध । × × × × होशियार रहो/ युद्ध में कोई सुरक्षित नहीं रहता/ चाहे जहाँ रहे / चाहे जहाँ छुप जाय × × × × × × एक चौकन्नापन / जरूरी है / युद्ध के मैदान के बाहर भी / जागते भी । चौबीसों घण्टे ।[52]

भूखी और नंगी पीढ़ी के कवि विद्रोह करना चाहते थे, वह एक क्षणिक मानसिक संघात द्वारा उत्पन्न उत्तेजना और कुलबुलाहट की फिसलन भरी जमीन थी । लेकिन नवजामपंथी कविता में व्यक्त विद्रोह के बीज हमारे देश के सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त है । और इसकी जडें साठोत्तरी राजनीति है । आक्रमण नवजामपंथी कविता की अपनी खासियत ही नहीं बल्कि वाकई जान है । उसमें प्रयुक्त शब्द भी लड़ाई तथा वर्तमान राजनीति से जुड़ा रहता है । 'यह तो युद्ध है' शीर्षक कविता इसका ज्वलन्त उदाहरण है

"पोस्टर छापते प्रेस हैं
नारे लिखते हाथ हैं
इस खाई से
उस खाई
दौड़ लगते पांव हैं
हथियारों के कारखाने बने
घर हैं
कल सबेरे
जो
आगे शुरू होने वाला है
युद्ध !"[53]

अकवितावादी आन्दोलन में भी व्यवस्था के प्रति विद्रोह था, किन्तु उस विद्रोह में केवल नकारात्मक तत्व मात्र निहित थे । उसमें वैचारिक प्रतिबद्धता का अभाव था । उनका आक्रोश और विद्रोह हास्यास्पद, बेअसर रहे । वामपंथी कवियों का आक्रोश और विद्रोह अकवियों की तरह औरत के गोश्त, स्तन और शिश्न के दायरे में ग्रस्त नहीं है । नवजामपंथी कवियों ने सर्वाधिक आक्रोश की मुद्रा अपनायी है । उनका अस्वीकार केवल भावुक प्रतिक्रिया, महज नकार, कोरा विद्रोह, बौखलाहट न होकर, रचना के पक्ष में दर्शन है । लडाई में कवि भी शामिल हो जाते हैं । कवि वेणुगोपाल लिखते हैं

"रात बहुत गुजर चुकी है ।
कि सबेरे होते ही

हमें
दीवार के दूसरी ओर
जारी लड़ाई में शामिल होना है ।" [154]

वर्तमान युग संघर्ष का है । कवि को भी जलती सामाजिक, सच्चाइयों से मुकाबला करना ही होगा । हज़ार बार छाती पे लात मिलने पर भी लड़खडाकर गिरने पर भी कवि को झुलसते अनुभवों के पार जाना ही होगा । कभी कभी इस श्रम में उसकी मृत्यु भी हो सकती है । बूर्ज़्वा दमनकारियों के अत्याचारों पर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी प्रकाश डालते हैं

"कुछ नहीं हो सकता
संगीनों के साये में
सिर्फ बलात्कार हो सकता है
बन्दूक की नली निहत्थी भीड़ को
कहीं नहीं ले जा सकती
सिवा उन नरभक्षी मांदों के
जहाँ जंगल की भाषा में
लोकतन्त्र और मताधिकार जैसे शब्दों का
व्याकरण बनता है ।" [155]

ऐसी दुर्दशा में भी कवि जागरूक हैं । वह सत्ता से लड़ने के लिए कटिबद्ध हैं । योद्धा तेज़ औज़ार की तलाश करते वक्त कवि भी अपने औज़ार इस्तेमाल करने के लिए तैयार हो जाते हैं और यों उसकी सहायता करते हैं ।

"ऐसी दुरुस्त स्थिति में
किसी अंधेरी रात के तीसरे पहर हो आक्रमण
आप निहत्थे हों / क्या करेंगे
क्या टेबल पर रखे पेपर वेट
अस्त्र नहीं बन जायेंगे आपके हाथ में ?
अपने कमरे की कुर्सियों से हैंगरों से
या कुछ दूसरी वस्तुओं से
आप शस्त्र का काम नहीं लेंगे ?" [156]

दिनों दिन बढ़ते जा रहे खतरे और संगीनों एवं फौजी बूटों तले रौंदी जाती हुई जनता का जीना मुश्किल हो गया है । युद्ध की संभावनाएँ बढ़ती जा रही हैं । 'कल की लड़ाई के लिए' शीर्षक कविता में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने इस आतंक को बहुत ही रोमांचक रूप में व्यक्त किया है

"सोये हुए गांवों
और कर्फ्यू में कांपते नगरों के बीच
कुछ कुछ निश्चित नहीं ।

सिवा एक बीमार संभावना के
कि पीड़ा से मुक्ति के लिए
सहनी होगी पीड़ा
लड़ाई से मुक्ति के लिए
लड़नी होगी लड़ाई ।"[157]

आम जनता की बात कोई सुनता नहीं । पुलिस और फौज भी इन्हीं की रक्षा कर रही है जिनके पास पूँजी है । प्रतिबद्ध नववामपंथी कवियों ने अपनी रचनाओं में इन सारी कुरीतियों का अनावरण किया है । उन्होंने सच्चाई को जनता के सामने खोलकर रख दिया है । कवि आशा, विश्वास और आकांक्षा के साथ क्रान्ति का उद्घोष भी करते हैं । वे बखूबी जानते हैं कि आज तक किसी को अपना अधिकार न तो हाथ पसारने पर मिला है, न मिलेगा अधिकार भीख में नहीं मिलता बल्कि उसे छीन लेने की जरूरत है । लीलाधर जगूडी ने 'उदासी के खिलाफ' कविता में मुसीबतों की मार से निराश हो गए लोगों को संघर्ष के लिए प्रेरित करते हुए लिखा है

"उदास लोगों ! उठो और फैसला दो
उठो और जिसने कल तुम्हें कुचला था
उसे घोडे की नाल बना दो
उसकी मजबूत हठवादिता को
उसकी दुर्भावनाओं को
सड़क पर मिला दो
क्योंकि हमें
मजबूत सड़कों की जरूरत है ।"[158]

मजदूरों की संगठित शक्ति का सही रूप संग्राम में ही पाया जाता है । शोषितों की विजय के लिए जनता को वर्ग संघर्ष में एकत्रित करने की जरूरत है । इसके लिए पहले मजदूरों, सब पेशों के मजदूरों को उनके आर्थिक प्रश्नों पर संगठित करना अनिवार्य है ।

मंगलेश डबराल सही निर्णय लेते हैं

"मैं अपनी उदास के लिए
क्षमा नहीं मांगना चाहता था
मैं नहीं चाहता था मामूली
इच्छाओं को चेहरे पर ले आना
मैं भूल नहीं जाना चाहता था
अपने घर का रास्ता ।"[159]

कवि का अपना विवेक है । वह अंधेरे में भी चल सकते हैं । वह अकेले में भी सब कुछ देख सकते हैं । उनको मालुम है कि जीवन व्यर्थ नहीं हुआ । आज भी वह सवालों का माकूल जवाब देने में सक्षम

हैं ।[160] वह कविता और कहानी की खोज में सड़क पर आते हैं । वह जनता से बातचीत करते हैं । इस तरह बातचीत करते वक्त कवि की आस्था बढ़ जाती है । मंगलेश डबराल की 'सफेद दीवार' शीर्षक कविता क्रान्ति का विस्फोट है । कविता की पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं

"शहर की सबसे लंबी सबसे सफेद दीवार खाली है इस वक्त उस पर लिखा जा सकता है/ अपना पूरा पता / बनाये जा सकते हैं वे चेहरे / जो अब नहीं हैं । xxxxxइस पर भूखे बच्चों की तस्वीर लगायी जा सकती है / गोलियों के निशान बनाये जा सकते हैं / और उनके चारों ओर उड़ती हुई बारूद / यहाँ खोदी जा सकती है / हत्यारों की आंखें / उनके खून से भरे हुए हाथ / सबसे लंबी संबसे सफेद दीवार / खाली है इस वक्त / इस पर लिखी जा सकती है कोई कविता । कल सुबह के लिए कोई सन्देश / इस पर दर्ज किया जा सकता है / अगली लड़ाई का ऐलान ।"[161]

नववामपंथी कवियों ने अपनी तीखी भाषा में बूर्ज्वा की हठवादिता और दुर्भावनाओं के खिलाफ विद्रोह का झण्डा उठाया । कवि सर्वहारा वर्ग तथा अन्य सभी शोषित पीडित, मेहनतकश को संगठित करके शोषक-शासक वर्ग के समूचे भेड़िया तन्त्र के खिलाफ जिहाद छेड़ने और उनके लूट के सिंहासन पर धावा बोलने का आह्वान करते हैं । वेणुगोपाल के शब्दों में

"हत्या की कोशिश नाकाम नहीं होनी चाहिए
वह बच गया तो दुगुना खूंखार हो जाएगा
तो जरूरी था कि मैं हथियारों की जाँच कर लेता
मैंने अपने पास के हथियारों पर नजर डाली
कलम और कविताएँ । बस ये ही तो
कलम तो उससे टकरायेगी नहीं कि
चूर-चूर हो जाएगी ।
कविताओं को तो वह फाड़-फूडकर
हवा में उड़ादेगा ।"[162]

पूँजीपतियों की नजर में यह जनवादी कविता सीधे-सीधे भोंडी, अधकचरी और फूहड है । वे इस कविता को गलत साबित करने की कोशिश करेंगे । इसलिए उनकी युक्ति-चालों की गिरफ्त से कविता तथा जनवादी संस्कृति को बचाना प्रतिबद्धता है । वेणुगोपाल आह्वान करते हैं

"लिखो कवि कविताएँ लिखो
और मैदान के किनारे
मत खडे रहो उन्हें अलापते-विलापते ।

आ जाओ
यहाँ युद्ध में जहाँ
तुम्हारी टुकडी है । आ जाओगे तो
सारे तनाव-बनाव से / उबर जाओगे ।" [163]

पूँजीवादी नीतियों पर आधारित व्यवस्था समाज को सदैव विघटित करने के षड्यन्त्र अपनाती है । वह समाज के संगठन के क्षतिग्रस्त करने के लिए उन्हें जीवन संघर्ष से पलायन करवाती है । यह स्वाभाविक है कि जब हमारा बुद्धिजीवी समाज एवं निम्नवर्ग बौद्धिकता एवं संगठनात्मकता से दायित्वहीन हो जायेगा तो एक ओर व्यवस्था की जडें मजबूत होकर प्रसारित होंगी, दूसरी ओर समाज में संघर्षचेतना भी निष्क्रिय रहेगी जिससे बूर्ज्वा विचारधारा व व्यवस्था समाज को दिशाहीन करती रहेगी । इसी अवसर पर बुद्धिजीवियों तथा श्रमिकों को सही दिशाबोध प्रदान करना कवियों की जिम्मेदारी है । प्रतिबद्ध कवि जनता की जमीन पर इन्हें खड़ा करने की कोशिश करते हैं । जगूडी के शब्दों में

"मैं उन्हें बाहर लाना चाहता हूँ
अत:पुर में । अत:पुर पर
मरे हुए हैं जो अनेक कवि
मैं उन्हें बाहर लाना चाहता हूँ
ताकि
जनता की जमीन पर
उन्हें रफा-दफा किया जा सके
और जिनमें थोडा भी प्राण हो
उन्हें खड़ा किया जा सके ।" [164]

नववामपंथी कवि संसार भर के करोड़ों शोषित लोगों की मुक्ति चाहते हैं । इन कवियों ने संसार भर के श्रमिक वर्ग को धरती पर परिश्रम करनेवाले साधारण जनों की खुशहाली के लिए संघर्ष करने का स्पष्ट मार्ग दिखाया है । कवि की विक्षुब्ध आवाज़ व्यर्थ न हो जाएगी । कवि व्यक्ति को सामूहिकता तथा समूह को साहसिकता प्रदान करते हैं । कवि धूमिल की विक्षुब्ध आवाज़ इसका मिसाल है

"उसे जगाओ और देखो
कि तुम अकेले नहीं हो
और न किसीके मुहताज हो
लाखों हैं जो तुम्हारे इन्तज़ार में खडे हैं
वहाँ चलो
उनका साथ दो
और इस तिलस्म का जादू उतारने में
उनकी मदद करो और साबित करो

कि वे सारी चीज़ें अंधी हो गयी हैं
जिनमें तुम शरीक नहीं हो. ।"[165]

कवि को मालूम है कि क्रान्ति महफिल की गज़ल नहीं होती कि लोग झूम उठें और आखिरी में फाड़ने लगे अपने अपने कपड़े । क्रान्ति आग है और आग के गीत गाना और सचमुच आग बन कर खुद को जला डालना एक बात नहीं है । वेणुगोपाल की दृष्टि में

"क्रान्ति
किसी नाटक की रिहर्सल नहीं होती
वह बस, क्रान्ति होती है । और कुछ नहीं
उसमें / न तो हरी कोंपलों को बख्शा जाता है
और न झूमती टहनियों को ।
सबको अपने-अपने हिस्से की मौत झेलनी होती है
सबकी जिन्दगी के लिए ।
अपना-अपना रोल निभाते हुए ।"[166]

अब तक चर्चित कवियों से भिन्न होकर गोरख पाण्डेय की कविताओं में एक सजग राजनीतिक कार्यकर्ता की वैचारिक प्रतिबद्धता और एक संपन्न व परिपक्व दृष्टि साफ़ परिलक्षित होती है । 'जागते रहो सोनेवाले' गोरख पांडेय का प्रथम काव्य संग्रह है । इसमें संकलित अधिकांश कविताएँ क्रान्ति का विस्फोट हैं । कविता का शीर्षक भी एक गहरी अर्थव्यंजना से सरोकार रखता है ।[167] गोरख इन कविताओं के माध्यम से अपने परम प्रिय सर्वहारा को साफ़ साफ़ जागते रहने की चेतावनी देते हैं ।

"आओ भाई बेचू आओ
आओ भाई अशरफ़ आओ
मिल-जुल करके छुरा चलाओ
xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

इस बार दंगा बहुत बड़ा था
खूब हुई थी खून की बारिश
अगले साल अच्छी होगी
फसल
मतदान की ।"[168]

यहाँ कवि गोरख मौकापरस्त प्रतिक्रियावादियों तथा संशोधनवादियों के विरुद्ध भी आक्रमण करते हैं । उनकी दृष्टि में पूँजीवादी लोकतन्त्रीय व्यवस्था जनता की एकता से भी बहुत घबराती है । एकताबद्ध जनता उसे अपनी मृत्यु के समान नज़र आती है । 'उनका डर' नामक कविता में गोरख पाण्डेय ने व्यवस्था के इसी डर को अभिव्यक्त किया है

"वे डरते हैं
किस चीज़ से डरते हैं वे
तमाम धन-दौलत
गोला-बारूद, पुलिस-फौज के बावजूद
उनसे डरना बंद कर देंगे,
उसी दिन इस भ्रष्ट लोकतन्त्रीय व्यवस्था
का आखिरी दिन होगा ।"[169]

गोरख पाण्डेय की कविताओं में जनता का यह आक्रोश अपने तेवर के साथ अभिव्यक्त हुआ है । निष्कर्षतः नववामपंथी कवि क्रान्तिकारी हैं । उनकी कविता आक्रामकता की कविता है । यह साम्राज्यवाद तथा नवउपनिवेशवाद के विरोध की कविता है । उसकी ललक सच्चाई को उद्घाटित करने की होती है ।

नववामपंथी कविता सांस्कृतिक क्रान्ति का हथियार :-

1968 में घटित नक्सलबाड़ी क्रान्ति ने समस्त भारतीय कविता को फिर एक बार क्रान्ति और प्रतिबद्धता के माहौल की ओर खींच लाया था । कवि ने अपनी कविता को औज़ार बनाया और इसके ज़रिए भी जोखिम उठाने के लिए तैयार हो गए । आठवीं दशक की शुरुआत में भी प्रमुखतः यही प्रवृत्तियाँ जारी रहीं । याने इस दशक में भी सामाजिक प्रतिबद्धता तथा सशस्त्र क्रान्ति कविता का केन्द्र विषय रहीं ।

भारत की पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था है और सत्ता भी उस पर आधारित है । हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों की सूची में निजी संपत्ति का प्रमुख स्थान है । उसकी अनियन्त्रित वृद्धि को रोकने में हमारे नियम सक्षम नहीं है । अतः भारत में प्रजातन्त्र पूँजीवाद के विकास के लिए प्रोत्साहन दे रहा है और यह आखिर पैसातन्त्र में बदल गया है ।

ऐसी हालत में सामाजिक बदलाव के लिए क्रान्ति का बीज बोने में कविता की अपनी सार्थक भूमिका होती है । नववामपंथी कवियों ने संसदीय बंदरनुमा आचरणों तथा साम्राज्यवादी देशों के शासकों के दारुण पंजों के विरुद्ध कविता को अस्त्र के रूप में प्रयोगार्थ अपनाया है । उनकी कविताएँ समाज की मृतमान्यताओं, टूटती हुई परंपराओं और सामाजिक व राजनीतिक भ्रष्टाचार से क्षुब्ध युवामानस की अभिव्यक्ति है ।[170] यह आघात और विस्फोट की कविता है।[171] नववामपंथी कवियों ने कविता को पीड़ित व शोषित वर्ग की चेतना और उसके संघर्ष से जोड़कर परिभाषित किया है । जैसे सूचित किया गया है कि उनकी दृष्टि में कविता तेज़ औज़ार है । आलोक धन्वा ने स्पष्ट लिखा है

"यह कविता नहीं
गोली दागने की समझ है ।"[172]

व्यवस्था को बदलने के लिए खतरनाक और पैनी औज़ारों की ज़रूरत है । समाज कवियों से सर्ग-शक्ति की ही नहीं साहस और भुज-शक्ति की भी माँग करता है । इस सन्दर्भ में कविता संघर्ष का पर्याय बन जाती है याने कविता युद्ध है

"जब पता चलता है
पहली बार
तो
इतना भर कि पेड़ सिर्फ़ पेड़ नहीं है
और न धूप सिर्फ़ धूप
न मैं सिर्फ़ मैं
न तुम सिर्फ़ तुम
न कविता सिर्फ़ कविता
ये सब अपने होने में
और उससे भी पहले एक युद्ध है
एक समूचा
और निर्णायक युद्ध ।[173]
xxxxxxxxxxxx

उस एक कविता से जुड़ने की कोशिश में/अपने हिस्से के कविता टुकड़े लिखते हुए/मैं ने जाना कि हरेक टुकड़ा/अपने आप में एक लड़ाई है ।[174] वामपंथी कवियों के लिए कविता खून सनी चमड़ी उतार लेने की प्रक्रिया है (दूधनाथसिंह) । उनकी दृष्टि में कविता बहता हुआ लहू है और इस लहू के बहाव को रोकना नामुमकिन है ।[175]

हालाँकि मनुष्य प्रकृति का अंग है । फिर भी प्रकृति को और सुन्दर तथा पूर्ण बनाने का सामर्थ्य उसमें है । सुन्दर को भी सुन्दर मलबरी की फुलकारी के रूप में परिवर्तित करने की क्षमता मनुष्य में निहित है । लेकिन इस शक्ति तथा अदम्य ऊर्जा को मनुष्य पहचानता नहीं । ऐसी हालत में कवि अपनी कविता के माध्यम से एकजुट होकर दुश्मन के खिलाफ़ लड़ने की शक्ति देते हैं । वास्तव में तभी कविता मनुष्य के समूचे अस्तित्व से जुड़कर सार्थक होती है । वह टूटते हुए आदमी को पूरी दृष्टि से पहचानने की लड़ाई लड़ती है ।[176] लीलाधर जगुड़ी परंपरागत कविता को अस्वीकारते हुए कविता की जुझारू भूमिका को यों रेखांकित करते हैं

"सब रोज़ लड़ना एक युद्ध
पिता की बन्दूक से संभव नहीं होता ।
फौजी दस्ते की तरह अंधेरे में

एक भाषा रवाइयाँ बदल रही है
और शब्दों को गोलियों की जगह भर रही है । [177]

धूमिल लिखते हैं "क्या आप आनन्द की तलाश में है ? क्या आप समझदारी और शरीर से पीड़ित हैं ? क्या आपको नौकरी नहीं मिल रही है ? क्या आपके भाइयों को आपके चरित्र पर सन्देह है ? और यदि हाँ तो उसके लिए मेरी राय है आप गुफाओं में जायें, आप किसी डाक्टर से सलाह लें, रोजगार दफ्तर जाकर कॅरियर गाइड्स देखें, चापलूसी करें और भक्ति-भाव से संकट रामायण पाठ करें, कविताएँ आपके लिए शायद, किसी काम की हों, कविता कोई साधन नहीं, जिसके इस्तेमाल से आप की जिन्दगी सुधर जाए । [178] आगे वे सवाल करते हैं

"कविता क्या है ?
कोई पहनावा है ?
कुर्त्ता-पाजामा है ?
नां, भाई, ना
कविता
शब्दों की अदालत में
मुजरिम के कटघरे में खडे
बेकसूर आदमी का
हलफ्नामा है । xxxxxxxxx कविता व्यक्तित्व बनाने की, चरित्र चमकाने की या खाने कमाने की चीज़ नहीं । कविता भाषा में आदमी होने की तमीज़ है । [179] समाज, समाज-व्यवस्था, अपने लोग इन सबका विरोध कोई भी कहीं भी कर सकता है । आदमी जैसा होना चाहिए उस ओर कविता हमें उन्मुख करती है । कविता में आदमी होने की तमीज़ का मतलब यह है कि आदमी वह है जो औरों को भी आदमी समझे और आदमीयत का ध्यान और सम्मान करे और पूरे समाज की मानसिकता इस प्रकार की हो, जिसमें कहीं पीड़ित, शोषित और दलित न हो । [180]

दरअसल कवि एक भीड़ में फंसा हुआ आदमी है । वे उस भीड़ को अकेले छोड़कर किसी दमघोट वातावरण में जा नहीं सकते । आज कवि अकेले नहीं । उनके साथ एक मुहल्ले के तमाम लोग हैं । किसी भी युग की कविता इन बातों का अतिक्रमण नहीं करती यद्यपि युगीन परिवेश के अनुसार वह अपना तेवर बदलती रहती है । दरअसल कवि एक वर्ग का अगुआ भी हैं । धूमिल इसकी ओर संकेत करते हैं

"मत भूलो
कि कवि एक कुनबे का अगुआ है
जिसके सदस्य
आजादी को आक्रमण की तरह झेल रहे हैं । [181]

कवि वही होता है जो अपने वातावरण से क्षुब्ध होता है और अपने क्षोभ का इजहार भाषा द्वारा करता है । ऐसे कवि अकेले को सामूहिकता देते हैं । उनकी कविता समूह को साहसिकता प्रदान करती है । और इस तरह अकेला आदमी भी

अनेक कालों और अनेक सम्बन्धों में एक समूह
में बदल जाता है ।
मेरी कविता इस तरह अकेले को
सामूहिकता देती है ।
और समूह को साहसिकता भी । [182]

वेणुगोपाल इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं

"मुझसे, कविता के छूटने का मतलब
होगा नदी से उसके बहाव का छूट जाना,
दूब से/हरेपन का नाता टूट जाना
मेरे/शरीर के तापमान का ज़ीरो डिग्री तक
उतर जाना । नज़रों की समूची हदों में
मौत ही मौत का पसर जाना । [183]

वेणुगोपाल का मन्तव्य यह है कि कविता सत्ता के विरुद्ध गुस्सा. नफ़रत है । वह आम आदमी के साथ लगाव है । एक लड़ाई है । वह लड़ाई की प्रेरणा भी है । वह बेहतरी के लिए होती है ; बदतरी के खिलाफ़ । कविता स्वप्न भाषा की तरह युद्ध भाषा भी है । प्रणयसन्देश की तरह समरसन्देश भी है । कविता बहुत ज़रूरी है । जीने के लिए एक बुनियादी ज़रूरत रोटी-कपड़ा और मकान की तरह । कविता, मार्क्सवाद, क्रान्ति और लड़ाई की तरह आचरण है । उसका अर्थ बहुत बदल गया है । धूमिल लिखते हैं कल तक/नगर पिता का सिर विरोध में/हिलता था और तुम पाते थे/कि कविता का अर्थ बदल गया है/मगर अब चीज़ों के गलत होने का/पता चल गया है । [184]

नववामपंथी कविता मनबहलाव की चीज़ नहीं है । वह हिंसा की हिंसा करती है । किसी से सहानुभूति नहीं मांगती है । वह अश्लील नहीं होती है । [185] वह सामाजिक बदलाव की नियामक शक्ति है ; अन्याय के विरुद्ध एक ताकतवार आवाज़ है । नववामपंथी कवियों के लिए वास्तविक कविता वह है जो अमानवीयता और आततायीपन के खिलाफ़ जनसाधारण की लड़ाई में सक्रिय भागीदार बनती है । वर्तमान कवि कविता के लक्ष्य के प्रति पूर्णतः सचेत है । आज कविता का लक्ष्य मानवमन को विभोर करना नहीं है, मनोरंजन का साधन जुटाना व महफ़िल सजाना नहीं है, लोरियाँ गाकर सुलाना नहीं है बल्कि सामाजिक सत्यों की दर्दनाक संघर्ष भूमि की ओर मानव-मन को घसीट ले जाकर असलियतों से

मुकाबला कराना ही उसका कर्म है । कविता के नए रूप और कर्तव्य के सम्बन्ध में कवि दिविक रमेश ने लिखा है

"शीर्षक बदलने होंगे कविताओं के
क्योंकि कविता
अब मेरे लिए लगाम है
कभी खुद पर
कभी दूसरों पर ।" [186]

उनका कथन है कि आज कविता भूख में तड़पती नारी की दर्दनाक तस्वीर खींचेगी । आज कविता फौलादी मुक्का है जो मुकाबला करते वक्त प्रतिद्वन्दी के नाक पर मार दे सके । सृजन उनके लिए एक महत्वपूर्ण कार्रवाई हो गया है । इसे वे खेत जोतने के समान मेहनत मानने लगे हैं । उनकी कविता का आदमी मिट्टी मेहनत और खून से प्रगाढ़ सम्बन्ध है

"शब्द किस तरह कविता बनते हैं
इसे देखो
अक्षरों के बीच में गिरे हुए आदमी को पढ़ो
क्या तुमने सुना कि यह लोहे की आवाज़ है
या मिट्टी में गिरे हुए खून का रंग ।" [187]

प्रतिबद्ध नववामपंथी कवियों की दृष्टि में कविता मेहनत है । जैसे किसान ज़मीन जोतकर बीज बोता है, वैसे ही कवि कविता की गीली मिट्टी में जनशक्ति के याने क्रान्ति के बीज बोते हैं । जनवादी कविता मिट्टी में गिरे हुए आदमियों को तीखे अक्षरों के बीच स्थान देने का श्रम हैं । इसलिए ही उनकी कविता मिट्टी की भीनी गन्ध और आदमी के खून के रंग से सनी है । उसमें नूपुरों की झनझनाहट नहीं, लोहे की आवाज़ है । यह तालाब नहीं, समुन्दर है । इसमें हर शब्द चुप न रहता है । हर शब्द गोली है । यह कविता आम आदमी के दिल की तह से निसृत आवाज़ है ।

कवियों ने समझ लिया है कि आदमी और कवि होने के पीछे एक खास मतलब होता है । उनको मालूम है कि कवि होने का मतलब 'वायलिनिस्ट' बनना नहीं है । जनता के साथ खडे होकर उनकी सनातन मुक्ति की चाहत में जनक्रान्ति में साझीदार होनेवाला व्यक्ति ही सच्चा कवि है । उनके लिए कविता, वृत्ति या पेशा नहीं रही । उन्होंने कविता से ईमानदारी को जोड़ दिया और निष्ठा से निभाया भी । उनकी काव्य-प्रक्रिया परंपरागत कविता से वाकआउट है । जनवादी वामपंथी कविता सांस्कृतिक क्रान्ति का तेज औज़ार है ।

सम्पूर्ण अदना व्यक्ति के रूप में समसामयिक भ्रष्टता को जीवन सन्दर्भों से जोड़ते हुए आदमी होकर आदमी पर उन्होंने लिखा । उन्होंने

पूर्ण सचेत होकर कविता को समाज, राजनीति और परिवेश के निकट खींचा है । वास्तव में, यह प्रतिबद्धता और कुछ नहीं है, समय और परिवेश की चुनौतियों को स्वीकार करने का ही दूसरा नाम है । आधुनिक व्यक्ति की तरह सारी पुरातन अवधारणाओं के आगे मात्र 'प्रश्नचिह्न' लगाकर नववामपंथी कवि चुप्पी साधकर बैठते नहीं । सच्चे कवि सभी समस्याओं और रूढियों को चुनौती के रूप में मानकर उसके विरुद्ध लड़ते हैं । वे यथास्थिति की चेतना को तोड़ने के साथ ही साथ यथास्थिति वर्गों के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति और युद्ध का आह्वान भी देते हैं । वे भी सशस्त्र युद्ध में शरीक हो जाते हैं । उनको प्रतिरोध की धुन में सत्ता का विरोध करना है । इतना ही नहीं, उनको जनवादी नीतियों और व्यवहारों का समर्थन भी करना है । सच को सच और झूठ को झूठ घोषित करने की साहसिकता नववामपंथी कवियों ने दिखायी है । नववामपंथी कविता का सबसे अधिक मुखर स्वर उसकी साहसिकता है । आज के प्रतिबद्ध कवि अपने पूर्ववर्ति कवियों से कहीं अधिक क्रान्तिकारी हैं । भारतीय जनता के जीवन की कठोर वास्तविकताओं को नजदीक से पहचानकर इनका उन्मीलन करना इनका लक्ष्य है । सामाजिक यथार्थ को रेखांकित करते हुए मात्र आक्रोश और झुंझलाहट पैदा करना इनका लक्ष्य नहीं है । एंगेल्स के अनुसार कवि या लेखक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने वाले 'तियरिटीशन' नहीं है । सामाजिक सत्यों को उद्भासित करके सम्प्रेषित करना ही उनका धर्म है ।[188] इस दृष्टि से नववामपंथी कवियों का अपना एक अलग स्थान और पहचान जरूर हैं ।

नववामपंथी कवि पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध जनवादी हैं । वे हमेशा जनता का हिमायती रहे । उनकी प्रतिबद्धता देश की आम जनता के प्रति रही । उन्होंने हमेशा सुविधा और समझौता का विरोध किया है । वे सत्ता का भागीदार बनना नहीं चाहते हैं । इसकी वजह से उनकी प्रतिबद्धता किसी व्यक्ति, परिवार या धर्म से नहीं है । उनकी प्रतिबद्धता समूचे जीवन और समस्त मानव जाति से है । समसामयिक जीवन्त समस्याओं के प्रति सचेष्ट और जागरूक रहकर साहित्य सृजन उनका धर्म है । कवि इतने निर्भीक और ईमानदार है कि खुद अपनी सर्जरी करते हैं । विचार आचार की संगति उनकी सबसे बड़ी खूबी रही । वे भीतर जो हैं वही बाहर भी हैं । उन्होंने जीवन भर किसी की सहानुभूति पाने की आकांक्षा नहीं रखी । जिन्दगी का ताप झेलने का साहस और पौरुष उनमें है । उनके लिए सारा जीवन एक अनवरत संग्राम है । वे जर्जरित व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने की कोशिश करते हैं । कविता उनके लिए इस लड़ाई का हथियार है ।

नववामपंथी कवियों ने रूढ़िवादी और जड़तावादी विचारों से जबरदस्त असहमति प्रकट की । उन्होंने कल्पना के शीशमहल से बाहर

आकर जीवन की खुरदरी ज़मीन पर खड़े होकर वर्तमान रतनोन्मुख जनतान्त्रिक जंगल के विरुद्ध लड़ने का महान प्रयास किया । उनके लिए सामाजिक ईमानदारी ही ज़्यादा महत्वपूर्ण रही है

निष्कर्ष

नववामपंथी कवि अनुभवसंपन्न हैं । वे गंवई अनुभवों के कवि हैं । यह गंवई अनुभव उनकी अदम्य सर्जनात्मक ऊर्जा का स्रोत है । उन्होंने विभिन्न पहाड़ी इलाकों के सामाजिक जीवन का निकट से अध्ययन किया था । उन्होंने मेहनतकश और पूँजीपति के बीच के टूटते सम्बन्धों को पहचान लिया, आम आदमी को जानवरनुमा ज़िन्दगी बसर करने के लिए मजबूर होते देखा ।

नववामपंथी कवियों में अपने देश की मिट्टी के प्रति गहरा लगाव है । वे मानव-व्यापार में पूर्णतः 'इन्वाल्वमेंट' में विश्वास रखते हैं । वे प्रतिबद्ध होकर अपने को लोगों से जुडा पाते हैं । वे सामाजिक अनुभवों एवं चुनौतियों में उनका हमसफर हैं ।

आज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों की जानकारी नववामपंथी कवियों को है । उनके काव्य का विचारपक्ष आज के सम्पूर्ण जीवन को अपनी परिधि में समेटता है, आज की समूची जीवन व्यवस्था पर रोशनी ड़ालता है । उनकी काव्य दृष्टि के दो मूल आधार है एक जनवादी चेतना दूसरी सामाजिक प्रतिबद्धता । राजनीतिक तथा सामाजिक जागरूकता या सतर्कता उनकी रचनाओं को सामाजिक प्रतिबद्धता से जोड़ती है ।

वर्तमान कवियों को सामाजिक असलियतों से वाकिफ़ रहना है । वाकिफ़ रहने का मतलब सामाजिक परिवर्तन तथा उसकी पुनः सृष्टि में कामयाब रहना है । स्वानुभवों के प्रति दायित्व तभी पूर्ण हो जाता है, जब हम इसे झेलने में सक्षम होते हैं । नववामपंथी कवि सामाजिक अनुभवों के बहाव में पूर्णतः बहते हैं । वे असलियतों के बीच नमक-स्तूप भी नहीं हो सकते । हज़ार बार लुढ़ककर गिरने पर भी कवि को असलियतों का मुकाबला करना ही पड़ता है । उनको अपनी जिन्दगी में कटु-अनुभवों को झेलना ही पड़ता है । अपनी सीमाओं के प्रति समझदार रहते हुए उनको हर दिन अदालतों और 'कान्सेन्ट्रेशन केम्पों' की नरक यातना से गुजरना ही पड़ता है । इन सबकी वजह से कवि की सृजनात्मक चेतना प्रतिगामी, प्रतिक्रियावादी यान्त्रिक जीवन के प्रति संघर्ष का रूप ले लेती है । इस प्रकार कविता संघर्ष बन जाती है ।

नववामपंथी कवियों ने कविता को जनता की मुक्ति का तेज़ औजार माना है । कविता सांस्कृतिक क्रान्ति का हथियार है । कवियों ने कविता को संघर्ष तथा लड़ाई माना है । उनकी दृष्टि में कविता

मनबहलाव की चीज़ नहीं । अनावरण और आक्रमण नववामपंथी कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

नववामपंथी कवि सच्चे अर्थ में जनवादी हैं, प्रतिबद्ध हैं ।

नववामपंथी कविता का अभिव्यक्ति-पक्ष

मार्क्सवादी विचारक वस्तु और रूप को अलग-अलग कटघरों में बाँटने के पक्ष में नहीं हैं। वे वस्तु और रूप के संयोग में ही साहित्य और कला की वास्तविक इयत्ता मानते हैं। वास्तव में कलाकृति के अन्तर्गत वस्तु और रूप के परस्पर तालमेल हो जाने से ही सच्ची कला की चरितार्थता संभव होती है। इसलिए प्रायः प्रत्येक मार्क्सवादी साहित्य चिन्तक ने वस्तु और रूप की अभिन्नता को ही सच्ची कला का गौरव माना है।[1]

वस्तु और रूप तत्व के सम्बन्ध में मार्क्सवादी विचारकों की एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण धारणा से भी परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। आधार और बाह्यसंरचना के सवाल पर जिस प्रकार मार्क्सवादी विचारकों की मान्यता अन्ततः आधार को ही नियामक मानने की है, उसी प्रकार वस्तु और रूप तत्व के विश्लेषण में भी वे वस्तु तत्व को ही कला और साहित्य का नियामक तत्व मानते हैं।[2] परन्तु जिस प्रकार उनका यह कहना है कि बाह्य संरचना केवल निष्क्रिय रूप से प्रभाव ही ग्रहण नहीं करती, मात्र आधार से अनुकूलित और नियमित ही नहीं रहती, बदले में आधार को प्रभावित भी करती है, और कभी-कभी एक सीमा के भीतर उसका रूपांतरण भी करती है, उसी प्रकार वस्तु और रूप तत्व के विषय में भी उनका मत है कि वस्तु तत्व, रूप तत्व को अनुकूलित नियमित और प्रभावित अवश्य करता है, परन्तु रूपतत्व को भी मात्र निष्क्रिय रूप से प्रभाव ग्रहण करनेवाला न मानना चाहिए। वह भी बदले में वस्तु तत्व को प्रभावित करता है, और सक्रिय रूप में स्थित होता है, तथा ऐसे अवसर भी आते हैं, जब वह वस्तु तत्व को रूपांतरित भी कर देता है। इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि मार्क्सवादी विचारकों ने रूप तत्व की अवहेलना नहीं की है, उसे एक निष्क्रिय इयत्ता ही नहीं माना है, वरन् उसके अपने महत्व तथा सक्रियता को भी पूरी स्वीकृति दी है। दरअसल वस्तुतत्व को प्रमुखता देते हुए भी मार्क्सवादी साहित्य चिन्तकों ने रूप तत्व की सापेक्षिक सक्रियता की भी स्वीकृति दी है।

अन्सर्ट फिशर के अनुसार रूप तत्व कतई उपेक्षणीय नहीं है, उसे गौण मानना एक बहुत बड़ी भ्रांति होगी। उनके मत से यह रूप तत्व ही है जो किसी वस्तु को कलाकृति बनाता है। यह भी जाहिर है कि मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तकों ने रूप तत्व का विरोध कभी नहीं किया है, उनका विरोध सदैव ही रूपवाद के प्रति रहा है। बहुधा रूपवाद के प्र

उनके विरोध को रूप तत्व का विरोध समझ लेने के कारण ही भ्रन्तियों का जन्म हुआ है । रूपवाद के प्रति उनके विरोध स्वाभाविक है । इस विरोध को रूपतत्व के विरोध या उपेक्षा की संज्ञा देना सर्वथा अनर्थ है । रूपतत्व के अन्तर्गत मार्क्सवादी विचारकों ने अभिव्यक्ति के नाना माध्यमों भाषा, शब्द, बिम्ब, प्रतीक आदि की चर्चा की है ।

कुछ सतही समीक्षकों ने नववामपंथी कवियों पर शिल्प के प्रति उदासीन होने का आरोप लगाया है, जो उन्हें न समझ पाने की नादानी का ही परिणाम है । मसलन, आलोचकों का यह निर्णय कितना हास्यास्पद है कि "जहाँ तक नववामपंथी की रचनाओं में शिल्प का प्रश्न है वे शिल्प के प्रति उदासीन रहे हैं । ऐसे समीक्षकों को कौन समझाए कि नववामपंथी कवि की रचनाओं में प्रतीकों और बिम्बों के असंवृत रूप की योजना हुई है । यह योजना पतनशील बूर्जुआ कलाकारों की तरह फूहड़, असम्बद्ध तथा अर्थहीन नहीं है । नववामपंथी कविताओं के अभिव्यक्ति-पक्ष के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्व विश्लेषणीय हैं भाषा, शब्द, बिम्ब प्रतीक आदि ।

काव्य-भाषा: भाषा मनुष्य की अर्जित संपत्ति है । सामाजिक जीवन के विकास-क्रम में प्रकृति के साथ संघर्ष करते हुए मनुष्य ने भाषा को हासिल किया था । विकास मनुष्य तथा सामाजिक जीवन के ही विकास की कहानी ही है । भाषा का सम्बन्ध सम्पूर्ण जन-जीवन से है । अतः मार्क्सवादी विचारकों ने भाषा की शक्ति और क्षमता के लिए सदैव जन-जीवन में गहराई से प्रविष्ट होने, और वहीं से उसे शक्ति तथा प्राणवत्ता देने की बात कही है । भाषा का सबसे जीवन्त रूप उनके अनुसार जन-जीवन के बीच ही संभव है । इसका प्रमाण तो वे रचनाकार तथा उनका साहित्य हैं, जो जीवन से गहराई से जुड़े रहते हैं । भाषा कवि के अनुभव और ज्ञान का साधन है तो कविता की भाषा का विश्लेषण करके उसके अनुभव की शक्ति को भी मापा जा सकता है ।[3]

मैक्सिको के प्रसिद्ध कवि एल्फांसो रीज़ के मत का उल्लेख करते हुए कवि चिन्तक ओक्टोवियो पॉज़ लिखते हैं 'कवि की पहली जिम्मेदारी भाषा के प्रति निष्ठा है ।[4] रघुवीरसहाय के संकलन 'सीढ़ियों पर धूप में' की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है कि काव्य के जो भी गुण बताये जाते या बताये जा सकते हैं, अन्ततोगत्वा भाषा ही के गुण हैं ।

भाषा के पुराने होने और उपमान के मैले होने की शिकायत अज्ञेय ने की थी । उनकी मान्यता है 'अच्छी भाषा लिखना अपने आप में उपलब्धि है, और कविता की प्रमुख विशेषता उसकी भाषा प्रयोग विधि है ।[5] फिर भी अज्ञेय छायावादी मसृण शब्दजाल से मुक्त न हो पाए थे । नववामपंथी कवियों ने बदले हुए परिवेश की अकुलाहट एवं छटपटाहट को अभिव्यंजित करने योग्य खुरदरी भाषा की तलाश की है ।

उन्होंने अभिव्यक्ति के धरातल पर हर तरह की प्रच्छन्नता और रहस्यात्मकता को तोड़ा है । बदली हुई परिस्थिति की मांग ने नववामपंथी कवियों को सपाट बयान के लिए मज़बूर कर दिया है । कवियों को जीवन के नए अनुभवों को सीधी सपाट भाषा में व्यक्त करना पड़ा । वे जानते थे "बौद्धिक भाषा दैनंदिन घटनाओं को सम्प्रेषणीयता प्रदान करने में असमर्थ है ।"[6] कविता की सम्प्रेषणीयता बढ़ाने की आवश्यकता पर बल देते हुए कुमार विकल कहते हैं "कविता आदमी का निजी मामला नहीं एक दूसरे तक पहुँचने के लिए एक पुल है ।"[7] नववामपंथी कवियों ने कविता की सम्प्रेषणीयता पर अधिक ज़ोर दिया है । उन्होंने भाषा के सभी पूर्वप्रचलित स्वरूप-संकेतों को अस्वीकृत कर दिया है । उन्होंने कविता को एक नयी भाषा प्रदान की । वे जानते हैं कि कविता की सक्रियता भाषा की सक्रियता है । उनका विश्वास यह है कि भाषा सम्प्रेषणीयता का गतिशील माध्यम है । भाषा रोज़मर्रा की जिन्दगी से हमेशा जुड़ने का औज़ार भी है ।

जैसे कहा गया कि फ़िलहाल कविता भी आदमी और आदमी को जोड़ता हुआ पुल बन गयी है । आज कविता में जीवन के सभी आयामों और प्रसंगों को नए शिल्प-प्रयोगों द्वारा वाणी देने का उत्साह परिलक्षित हुआ है । इसके फलस्वरूप कविता की सम्प्रेषणीयता भी आज बहुत बढ़ गयी है । सचमुच आज कविता संवाद की स्थिति में है । प्रतिबद्ध नववामपंथी कवि लीलाधर जगूडी के शब्दों में "भाषा का यह नया काव्य-रूप आधुनिक जीवन की विसंगतियों, विड़म्बनाओं तथा परिस्थितियों से सीधे जुड़ा होने के कारण "हम से जितना निकट है, इससे पहले वह आम आदमी से इतना जुड़ा नहीं ।"[8] आज कविता तथा काव्य-भाषा स्वतः पूर्ण अनुभव है ।[9]

कविता की भाषा में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह अपने कोशीय अर्थ से उबरकर एक दूसरे अर्थवृत्त व्यंजित करें । सशक्त कविता में भाषा का उसी प्रकार भरपूर प्रयोग हाता है, जैसे तुमुल युद्ध में शक्ति का । जिस कवि में जितनी सृजनशीलता होती है, उसकी काव्य-भाषा उतने ही खतरनाक अभिव्यक्ति के मोर्चे खोलती है । नववामपंथी कवियों के मतानुसार परंपरागत काव्य-भाषा समसामयिक कठोर वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति देने में असमर्थ है । इसलिए कवियों ने एक जीवन्त भाषा की तलाश की । धूमिल सवाल करते हैं -

"इस ससुरी कविता को जंगल से जनता तक
ढोने से क्या होगा ?"[10]

जनवादी कविता की रचना जनभाषा में होना स्वाभाविक है । नवीन अभिव्यक्ति के पक्षधर होकर धूमिल पुरानी जड़भाषा के विरुद्ध लिखते हैं

"नहीं
अब वहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है
पेशेवर भाषा के तस्कर-संकेतों
और बेलमुत्ती इबारतों में
अर्थ खोजना व्यर्थ है ।"[11]

पूर्वप्रचलित भाषा को बार बार दुहराना वांछनीय नहीं है । धूमिल घोषणा करते हैं

"अब, अतीत में अपना चेहरा
देखने के लिए
शीशे की धूल झाड़ना बेकार है
उसकी पालिश उतर चुकी है ।"[12]

परम्परागत काव्य-भाषा का प्रयोग करने वाले कवियों पर ध्यान रखते हुए धूमिल ने ही लिखा है

"जैसे हर लड़की तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला हो जाती है
वैसे ही हर तीसरे पाठ के बाद
कविता भी ।"[13]

इसलिए आज की रचनात्मक लड़ाई कल के हथियारों से नहीं लड़ी जा सकती है । 'कल सुनना मुझे' नामक काव्य-संग्रह की भूमिका में धूमिल ने "नई कविता" और वामपंथी कविता के भाषाभेद को बतलाने की कोशिश की है

"छायावाद के कवि शब्दों को तोलकर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे,
नयी कविता के कवि शब्दों को गोलकर रखते थे,
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर
रखते हैं ।"[14]

वे पूर्ववर्ती कविता की गोल-मोल भाषा से पूर्ण रूप से असन्तुष्ट हैं । पूर्ववर्ती कवियों की भाषा के विरुद्ध कवि अपना आक्रोश प्रकट करते हैं

"तुम्हारी भाषा
उस महरी की तरह है, जो
महाजन के साथ रात-भर
सोने के लिए
एक साड़ी पर राजी है ।"[15]

आगे वे अत्यन्त खुरदरी शब्दों में सवाल करते हैं

"तितली के पंखों में पटाखा बाँधकर
मदारी की भाषा के हल्के से कौन-सा
गुल खिला दूँ?"[16]

धूमिल बिरासत में पायी हुई भाषा से तृप्त नहीं हैं । वे साफ़-साफ़ कह देने वाली भाषा की मांग करते हैं

"भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है
जो सड़क पर और है
संसद में और है
इसलिए और है
इसलिए बाहर आ !
सड़क के अंधेरे से निकलकर
सड़क पर आ !
.आ, बाहर आ,
मैं एक अदना कवि तेरी भाषा का मुँहताज़
मुझे अपनी बोली में शरीक़ कर
चीख़, अपने होने की पीड़ा से चीख़
लीक तोड़
अब और तरह
मत दे
साफ़-साफ़ कह दे ।" [17]

गोरख पाण्डेय तीखी भाषा पर ज़ोर देकर लिखते हैं

"कविता, युग की नब्ज़ धरो !

आदमखोरों की निगाह में
खंजर-सी उतरो !

उलटे अर्थ विधान तोड़ दो
शब्दों से बारूद जोड़ दो
अक्षर-अक्षर पंक्ति-पंक्ति को
छापाभार करो !" [18]

वेणुगोपाल की मान्यता यह है कि करोड़ों आँखें एक दिन भाषा को जानेंगी. ..भाषा में कविता को पहचानेंगी. .प्रेम को देखेंगी. .सपनों से मिलेंगी और खुशी से लबालब हो जायेंगी 'कि यहाँ भी हमारी ही ज़िन्दगी है !' [19] ये जनवादी कवि बौद्धिक संयम की भाषा का विरोध करते हैं । उनकी भाषा ईमानदार आदमी के तीखे प्रहार की भाषा है । यह अनावरण और आक्रमण की भाषा है । यह अकवियों की काले-पत्थर की-सी जड़ और चेतन विहीन भाषा नहीं । वामपंथी कवि लड़ाई के हथियार की भांति अपनी काव्य-भाषा का प्रयोग करते हैं । वे प्रायः भाषा की सर्जनात्मकता के लिए लोक के उस भू-गर्भ में प्रवेश करके अपनी संपत्ति जुटाते हैं, जहाँ सर्जनात्मकता का

विशाल भंडार छिपा पड़ा है । कवियों ने भाषा को सपाट करके उसके ऊपर पड़े सदियों के आवरणों को चीरकर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है । उनकी कविता की सीधी-सादी सपाट बयानी अत्यन्त मार्मिक है । गोरख पाण्डेय की कविता की पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं

"कुर्सी खतरे में है तो प्रजातन्त्र खतरे में है
कुर्सी खतरे में है तो देश खतरे में है
कुर्सी खतरे में है तो दुनिया खतरे में है
कुर्सी न बचे
तो भाड़ में जायें प्रजातन्त्र
देश और दुनिया ।" [20]

नववामपंथी कवि कविता के सम्बन्ध में यही रवैया अपनाते हैं कि छन्द और व्याकरण के नियमों को भंग करना अनिवार्य है । उनकी मान्यता यह है कि "जो भाषा जीवन को साहित्य से पृथक करती है उसे त्यागना जीवन और साहित्य दोनों के लिए हितकर है ।" [21] जनता की भाषा तथा कविता की भाषा अलग-अलग नहीं । जनता की भाषा वस्तुतः कच्चे माल की तरह है जो कविता के अन्तर्गत समर्थ कवियों के माध्यम से परिष्कृत रूप प्राप्त करती है ।

नववामपंथी कवियों ने कविता को चमत्मकार के सतरंगे कुहासे से तथा काव्य-भाषा की परम्परागत जटिल शब्दावली से पूर्णरूप से मुक्त किया । वेणुगोपाल की कविता इसका ज्वलन्त मिसाल है

"तुम अंग्रिम टुकड़ी में हो कवि !
तुम्हारी अपनी कविताओं ने
तुम्हें यहाँ तक पहूँचाया है ।
ऐसे में अपनी भूमिका को
छोटा करके मत देखो ।
उनकी बातों पे मत जाओ ।
यह तो युद्ध है ।

xxxxxxxxxxxxxxxxx
वे
चाहे तुम्हारी कविताओं को
सीधे-सीधे
भोंडी, अधकचरी और फूहड़ कह दें
xxxxxxxxxxxxxxxxx
कि तुम/ गैर ज़रूरी/ साबित हो जाओ नतीजे में ।
उनकी युद्ध-चालों की गिरफ़्त से
बचो । लिखते रहो । खूब-खूब कविताएँ ।

कि जरूरी है इस निर्णायक युद्ध में
कविताओं का लिखा जाना ।"[22]

कविता तथा भाषा की इस मुक्ति को वामपंथी कवियों के कवि-कर्म की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है । नववामपंथी कविताओं में प्रयुक्त भाषा बोलचाल की जीवित भाषा है । गोरख पाण्डेय के शब्दों में

"बढ़ें महँगी, घटे जिनगी हमार सजनी
मिलि-जुलि घेरली सेठ के दुआर सजनी
गोली भरलें सिपाही धुआँधार सजनी
खून-खून भइल सेठ के दुआर सजनी
हिया काँपल देखि सीधे अत्याचार सजनी
× × × × × × × × × × × ×
खून चूस, देस बेचवा, लबार सजनी
ई दलाल पूँजीपति जमींदार सजनी
× × × × × × × × × ×
इनसे निपट के एक रस्ता मार सजनी
जब हम मिलि उठाइबि हथियार सजनी
अब गाँव-गाँव हो जा तइयार सजनी
गाँठि बान्ह लेनिन-माओ के विचार सजनी
बिना क्रान्ति के न होई उधियार सजनी ।"[23]

कविता को बोलचाल की भाषा के निकट लाने का अर्थ केवल बोलचाल के शब्दों को अपनाने तक ही सीमित नहीं है । बल्कि सही मायने में आज के जीवन की धड़कन को व्यक्त करने वाली लय को गहरे स्तर पर पकड़ना है ।[24] नववामपंथी कविता में प्रयुक्त भाषा रोज़मर्रा जीवन की भाषा के अत्यन्त निकट है । सर्जनात्मकता उसकी अन्तरंग पहचान है । राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय ने सूचित किया है "नववामपंथी कवियों की काव्य-भाषा पंक्तिशः सर्जनात्मकता का सुन्दर प्रतिमान बन गयी है । उनकी भाषिक पुनर्रचना की क्षमता बेजोड़ है ।"[25]

संक्षेप में, नववामपंथी कवियों ने अपने व्यक्तित्व का आक्रामक, मौलिक और अक्खड़ स्वरूप अपनी काव्य-भाषा में भी उतार दिया है । उन्होंने अभिजात काव्य-भाषा को एकबारगी झटका देकर कविता को नए तेवर प्रदान किया है । उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य प्रकट होता है कि समझौता, नववामपंथी कवि की प्रकृति के विरुद्ध है और वह भाषा के सामने झुकने की जगह उसमें परिष्कार करने में विश्वास रखते हैं । इस जनवादी रूप के कारण ही उनका भाषा-चिन्तन इतना सारगर्भित और तीक्ष्ण है । यह भाषाबोध उनके मार्क्सवादी दर्शन का अभिन्न अंग है । एक सीधी-सरल भाषा को वे नवजनवादी क्रान्ति का तीक्ष्ण हथियार बना

लेते हैं । वे रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से साधारण से साधारण शब्द चुनते हैं और उसे एक आक्रामक भाषा का स्वरूप प्रदान करते हैं । असल में सहज सरल आक्रामक भाषा साठोत्तरी जनवादी कविता के प्राण है ।[26] प्रतिबद्ध जनवादी कवियों ने आक्रामक भाषा के माध्यम से जर्जरित व्यवस्था का अनावरण तथा इसके विरुद्ध आक्रमण भी किया है । अब भाषा के अन्तर्गत आते विभिन्न आयामों के धरातल पर नववामपंथी कविता का विश्लेषण करना अपेक्षित है ।

शब्द :- कविता में अभिव्यक्ति के माध्यम शब्द होते हैं । समाज में भौतिक शक्तियों के परिवर्तन में जो तीव्रता होती है, वह विचार (कला, संस्कृति आदि) में नहीं होती । शब्द अर्जित संपत्ति के रूप में परम्परागत अर्थ लिए रहते हैं । सृजनशील साहित्य में उनका प्रयोग हो चुका होता है । कोई कवि नए विचारों को अभिव्यक्त करना चाहता है; किन्तु उसकी शब्द-सम्पदा पुराने समाज-सम्बन्धों या 'रिफ्लेक्सों' के अधीन होती है । ऐसी हालत में कविता में उसे उन्हीं शब्दों में नए अर्थ भरकर नए प्रतीक और बिम्बों का सृजन करना पड़ता है । इससे एक ओर पुराने का निषेध होता है और कविता का विकास भी, दूसरी ओर कवि अभिव्यक्ति को कलात्मक बनाने में सफल हो जाता है ।[27]

शब्द सामाजिक सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं अतः उनका सम्प्रेषण उनकी सामाजिकता को भी उद्घाटित करता है । शब्द सामाजिक व्यक्ति मन के उद्देश्य को सम्प्रेषित करते हैं अतः उस व्यक्ति की वर्गीय मानसिकता भी उद्घाटित करते हैं । प्रतिबद्ध कवि हर शब्द को हमेशा सामाजिक बदलाव का तेज़ औज़ार मानते हैं ।[28] मैक्सिको के प्रसिद्ध कवि एल्फान्सो रीज़ के मत का उल्लेख करते हुए कवि चिन्तक ऑक्टोवियो पॉज़ लिखते हैं 'लेखक के पास शब्द के अलावा कोई दूसरा औज़ार नहीं होता ।'[29] डॉ॰रामस्वरूप चतुर्वेदी शब्दों को महत्व देकर 'भाषा और संवेदना' नामक पुस्तक में लिखते हैं - "कविता उत्कृष्टतम शब्दों का उत्कृष्टतम क्रम" है ।[30] इस धारणा की और भी स्पष्ट अभिव्यक्ति 'तारसप्तक' के द्वितीय संस्करण के कवि-वक्तव्य 'पुनश्च' में इस प्रकार हुई है: 'काव्य सबसे पहले शब्द है । और सबसे अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है । शब्द का ज्ञान - शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृति बनाती है ।[31]

कविता नित्य नवीनता में जीवित रहती है । कविता को सचेत और नवीन बनानेवाली जीवन्त इकाई है सन्दर्भ युक्त शब्द । इस जीवन्त शब्द को कविता से हटाने से कविता की मौत होती है । राज़ीव सक्सेना संवेदनशील शब्दों की क्षमता पर दृष्टि डालते हैं

"गूँजते रह जाते संवेदनशील शब्द
जिनसे फिर आनेवाले लोग

अपनी-अपनी दुनियाओं का
नया सृजन करते हैं ।"[32]

इसी वजह से प्रतिबद्ध कवि शब्दों को जीवन्त बनाने की कोशिश करते हैं । वे पुराने मरे हुए शब्दों को सन्दर्भ के अनुकूल प्रयोग करके शब्दों को नयी स्फुर्ती प्रदान करने में सचेत हैं । धूमिल के शब्दों में

"कविता में
अब कोई शब्द छोटा नहीं पड़ रहा है ।"[33]

आगे वे लिखते हैं

"शब्द किस तरह
कविता बनते हैं
इसे देखो ।
अक्षरों के बीच गिरे हुए आदमी को पढ़ो ।"[34]

हर एक शब्द का जीवन्त इन्सान के साथ सम्बन्ध है । नववामपंथी कविता में शब्द एक जीवन्त इकाई है । दरअसल उनकी हर एक कविता में शब्द ज्वालामुखी की तरह फूटता है ।

"हम देश के सबसे बड़े नेता को
अपने सबसे प्रिय नेता को
सबसे महत्वपूर्ण नागरिक को
देंगे सबसे बड़ा सम्मान
अजूबा अभूतपूर्व नागरिक सम्मान
फूल से नहीं
सोने-चाँदी से नहीं
सिक्कों से नहीं
हम उन्हें खून से
जी हाँ खून से तोलेंगे ।"[35]

अत्यन्त परिचित परिवेश से लिए हुए हजारों शब्द उनकी कविता की अपनी विशेषता है । परिवेश को समूर्त करने में ये शब्द सक्षम हैं । धूमिल की पंक्तियाँ हैं

"हर तरफ तरह-तरह के जन्तु हैं
श्रीमान् किन्तु हैं
मिस्टर परन्तु हैं
कुछ रोगी हैं
कुछ भोगी हैं
कुछ हिजड़े हैं
कुछ जोगी हैं
तिजोरियों के प्रशिक्षित दलाल हैं
आँखों के अन्धे हैं

घर के कंगाल हैं
गूँगे हैं
बहरे हैं
उथले हैं, गहरे हैं
गिरते हुए लोग हैं
अकड़ते हुए लोग हैं
भागते हुए लोग हैं
पकड़ते हुए लोग हैं
गरज यह कि हर तरह के लोग हैं ।" 36

इन पंक्तियों में क्षिप्रता है । हर शब्द आक्रोश से समाप्त होता । ये शब्द आस-पास के लोगों के स्वार्थ-लिप्त चेहरे को बेनकाब करने में पर्याप्त है । साधारण लोग भी ऐसी कविताओं का आस्वादन कर सकते हैं । अरुण कमल की कविता 'हाथ' भी इसका ज्वलन्त उदाहरण

"सरकार का कहना है
कारखाने में गोली चली, उसमें
ट्रेड यूनियन का हाथ है,
मारे गये मुसहर, उसमें भी
किसान सभाओं का हाथ है,
विद्यार्थियों के हंगामों में
छात्र-संगठनों का हाथ है
और राज्य में जो भी गड़बड़ी है
सबमें कम्यूनिस्टों का हाथ है ।
हुजूर ने ठीक फरमाया
इस दुनिया के पीछे भी ईश्वर का हाथ है ।" 37

वामपंथी कवियों की कविताओं में देहात की स्थानिक शब्दावली की भरमार है । 'माराज', बालकिशुन, इशे बांन्धो, उशे काट्टो, ऐना चमकाओ, बड़कू, छोटकू जैसे शब्द कवियों ने ग्रामांचलों से प्राप्त किए हैं । गाभिन पेट, रक्तपात, लालफीता, इश्तहार, समूची पशुता, गर्भ गद्गद्, मवेशीखाना, पंचायत-भवन, चरागाह आदि शब्दों को वामपंथियों ने समकालीन सामाजिक सन्दर्भ से जोड़कर एक नयी अर्थ लय पैदा कर दी । कवि उपेक्षित जगत् से शब्द बटोरते हैं कीमा, कसाई, ठीहा, गंड़ास, बोटी आदि शब्दों को साठ् तक कविता में स्थान नहीं मिला था । कवियों ने इन शब्दों को एक नयी सर्जनात्मक ऊर्जा प्रदान की है । धूमिल का काव्यांश यहां द्रष्टव्य है ।

"कविता, सिर्फ़ उतनी ही देर तक सुरक्षित है
जितनी देर कीमा होने से पहले,

कसाई के ठीहे और तनी हुई गंड़ास के बीच
बोटी सुरक्षित है ।"[38]

बटलोही, गगरी, आगंड़-बाँगड़, का खेल, घोड़ा-हाथी का खेल, दांत टूटी कंघी, फटेहाल, कलफ कालर, खटर-पटर एक ढूढ़ा साईकिल जैसे शब्दों का समूह एक लोक-परिचित, सहज सामान्य वातावरण से पहली बार कविता में प्रयुक्त हुआ है । शब्दों के ऐसे चुनाव में नववामपंथी कवि उनके भदेसपन से पूरा लाभ उठाते हैं और भाषा के आभिजात्य को तोड़कर उसमें नयी चमक पैदा करते हैं । उनकी कविताओं में प्रयुक्त शब्द आज की विकराल स्थिति को सम्प्रेषित करने में काभयाब है । उसमें जीवन की गन्ध है तथा खून का रंग भी । 'हलफनामा, बेकसूर, कठघरा, मुजरिम, अदालत, हथकड़ी, हत्यारा, तस्कर-संकेत, आदि शब्द बूर्ज्वा जर्जरित हालत की देन है । इसके अलावा राजनीतिक शब्दावली का अभूतपूर्व भण्ड़ार प्रतिबद्ध कविता में खुल गया है । इस शब्द भण्ड़ार के कुछ नमूने इस प्रकार हैं वनमहोत्सव, जनतन्त्र, पूँजीवादी दिमाग, आम-चुनाव, मतपेटियां, प्रजातन्त्र, संसद, समाजवाद, साम्राज्यवाद, नारा, जुलूस, राष्ट्रीय झंड़ा, तिरंगा कफ़न आदि । इन कवियों ने अपनी कविताओं में वारंट, पालिश, बिल, मैकनिज़्म, शो-केस, रिहर्सल, ट्रेड़मार्क, रडार, एक्स-रे, ट्रैफिक पुलिस, सायरन आदि अनेक अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी धड़ल्ले से किया है । धूमिल की काव्य-भाषा में अंग्रेज़ी भाषा के वाक्य ज्यों-के-त्यों मिलेंगे । कविता श्रीकाकुलम की शुरूआत की पंक्तियाँ हैं

"द गन इज़
नोट इन द
हैंड्स ऑफ द
प्यूपिल जे.पी. ।"[39]

लकड़बग्धा, भेड़िया, जंगल, हक्क, चट्टान, आग, तपता भूखण्ड़ आदि शब्दों का बार बार प्रयोग नवक्रान्ति कविता में हुआ है । यह केवल शिल्पगत प्रयत्न नहीं है । यह दरअसल कविता के स्वभाव तथा प्रतिबद्ध दृष्टि के बीच एक सर्जनात्मक रिश्ता गढ़ सकने की कोशिश है । समूची कविताओं में शब्द की आदिम तीक्ष्ण शक्ति की सहायता से राजनीतिक द्वन्द्वात्मक धरातल, समकालीन इतिहास के भयानक सन्दर्भ, पतनशील अर्थव्यवस्था, सामाजिक दुर्दशा तथा क्रान्तिमार्ग को मूर्त किया गया है । दरअसल नववामपंथी कविता किसी-न-किसी स्तर पर संसद या सड़क से जुड़ी हुई है । 'संसद' अर्थात् भारतीय राजनीति और 'सड़क' अर्थात् भारतीय मामूली आदमी ।[40] यह निर्विवाद बात है कि नववामपंथी कविता की सारी शब्दावली सामाजिक और राजनीतिक संसार की शब्दावली

है । 'जनतन्त्र' और 'संसद' जैसे शब्दों का अधिक प्रयोग कवि की राजनीतिक जागरूकता को व्यक्त करता है ।

असल में सहज सरल आक्रामक शब्द नववामपंथी कविता के प्राण हैं । धूमिल, गोरख पाण्डेय, वेणुगोपाल, मंगलेश डबराल, लीलाधर जगूड़ी, चन्द्रकान्त देवताले तथा अरुण कमल की प्रायः सभी कविताओं में आक्रामक पैने शब्दों का प्रयोग हुआ है । इनकी कविताओं में शब्द बुलेट का काम करते हैं ।

बिम्ब :- किसी भी काव्य-कृति के मनोवैज्ञानिक, सान्दर्यात्मक विवेचन के लिए उसमें प्रयुक्त बिम्बों तथा प्रतीकों को विश्लेषित व संश्लेषित करना अनिवार्य है । काव्य के समाजशास्त्रीय विवेचन के लिए उसके माध्यमों प्रतीक और बिम्ब की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

रूसी सौन्दर्यशास्त्री माइकल ओव्स्यान्निकोव ने अपने 'कलात्मक बिम्ब' नामक लेख में सही कहा है "कला बिम्बधर्मिता को त्यागने में समर्थ नहीं है क्योंकि वह कला की आत्मा, उसका अन्तस्तत्व और उसका मुख्य गुण है ।"[41] कलात्मक कृतियों में इनका उपयोग पाठक या दर्शक की सौन्दर्यशास्त्रीय समझ को जाग्रत करने के लिए होता है । यहीं से कला का सामाजिक उद्देश्य भी शुरू होता है । ऊपर के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कलाकृति को समझने समझाने में उसके बिम्ब और प्रतीक जैसे माध्यमों की अवहेलना नहीं हो सकती ।

नववामपंथी कविता की सही पहचान और अर्थोन्मीलन के लिए प्रतीकों, बिम्बों का सही परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण-संश्लेषण की ज़रूरत है । यों तो किसी भी कृति के विश्लेषण-संश्लेषण में इस प्रद्धति का उपयोग कारगार हो सकता है किन्तु नववामपंथी कवियों के सन्दर्भ में इसकी विशेष आवश्यकता है । क्योंकि इनकी कविता की भाषा बिम्बों की भाषा है । कवियों ने समकालीन असलियतों को उजागरित करने के लिए अपनी कविताओं में वैविध्यमय बिम्बों का प्रयोग किया है । यह वैविध्यमय बिम्ब इनकी रचनाओं को पूर्ववर्ती कविताओं से अलग करता है । पूर्ववर्ती कविता अप्रासंगिक बिम्ब योजना की वजह असमर्थ तथा विफल सिद्ध हुई थी । और वह बोलचाल की भाषा से दूर हो गयी थी । नववामपंथी कवि अप्रासंगिक तथा जटिल बिम्बयोजना से कविता को मुक्त करने के पक्षधर हैं । इस कविता में छायावादी तथा नयी कविता में चित्रित मसृण बिम्बमाला का बिलकुल अभाव है । नववामपंथी कवि घोषणा करते हैं "इस सन्दर्भ में पहला काम कविता को "भाषाहीन" करना है, साथ अचेतन बिम्बों और प्रतीकों से भी उसे मुक्त करना है । कभी-कभी (या अधिकांशतः) सान्दर्यच्युत प्रतीकों और बिम्बों के कारण

कविता की स्थिति उस औरत जैसी हास्यास्पद हो जाती है जिसके आगे एक बच्चा हो, गोद में एक बच्चा हो, और एक बच्चा पेट में हो ।"[42]

नववामपंथी कवियों ने अपनी कविताओं में समकालीन ज़िन्दगी से जुड़े प्रासंगिक तथा जीवन्त अनेक बिम्बों का प्रयोग किया है । यह उनकी रचनाप्रक्रिया की खासियत है । कुछ मार्मिक बिम्ब यहाँ द्रष्टव्य हैं "हवा से फड़फड़ाते हुए हिन्दुस्तान के नक्शे पर गाय ने गोबर कर दिया है ।"[43] "सिर कटे मुर्ग की तरह फड़कते हुए जनतन्त्र[44] "शहर की समूची पशुता के खिलाफ़ गलियों में नंगी घूमती हुई पागल औरत का गाभिन पेट"[45] सौन्दर्य में स्वाद का मेल न मिलने पर महुवे के फूल पर मूतने वाले कुत्ते[46], "दीवारों से चिपके गोली के छर्रों"[47], "सड़कों पर बिखरे जूतों की भाषा"[48], "महाजन के साथ रात भर सोने के लिए एक साड़ी पर राजी महरी"[49], "झड़ पड़ने के लिए हमारी सहमति का इन्तजार करने वाली घास की नोक पर थरथराती हुई ओस की एक बूँद,"[50] "गलियों और सड़कों और घरों में बाढ़ की तरह फैले हुए बच्चे"[51], "टीलीफॉन के खंभे पर फँसी पतंग,"[52] "कसरत करते हुए बच्चे,[53] "आदमी की शिराओं में बहता खून"[54], "विशाल दलदल के किनारे पड़ा हुआ अधमरा पशु,"[55] "बैसाखी पर झुकी पंगुल बच्चों की कतार"[56] आदि बिम्ब वर्तमान जीवन और जगत् से जुड़े हैं । इस प्रकार नववामपंथी कविता में आधुनिक शहरी तथा ग्रामीण ज़िन्दगी से सम्बन्धित अनेक बिम्बों का प्रयोग किया गया है । 'आग बुझाने के लिए लाल बाल्टियों में रखा बालू और पानी,' 'तार छूने के उत्सुक देहाती बच्चों की कसरत', 'फुटपाथ से होकर गुजरने वाला जुलूस,' 'लाठीचार्ज से भागनेवाले लोग' आदि नववामपंथी कविता की स्वार्जित बिम्बमाला है ।

नववामपंथी कवि जिन बिम्बों का अन्वेषण कर रहे थे वे छायावादी कविता के बिम्बों की तरह कल्पनाश्रित नहीं थे । इन कवियों का मन छायावादी कवियों की भांति नक्षत्रों, फूलों और बनस्पतियों के रमणीय स्थलों पर नहीं टिक पाता है । उनकी कविता में प्रयुक्त बिम्ब समकालीन जगत और ज़िन्दगी को गहराई तक समेटनेवाले हैं । अरुण कमल की कविता 'यात्रा' इसका सही मिसाल है

"खिड़कियों से झाँकता है पंजाबी मज़दूर
दूर अन्धकार गहन गसा अन्धकार
कहीं-कहीं बसे रोशनियों के परिवार
और यहाँ पंजाबियों से भरा हुआ डब्बा
पंजाबी मर्द, पंजाबी लड़कियाँ, औरतें, बच्चे
सब के सब जा रहे हैं वापस फिर काम पर,
ये परिवार मज़दूरों के

जूट कारखानों के, लोह कारखानों के
कोई नहीं जानता कब बन्द हो जायेंगी
कौन-सी मिलें
किनकी होगी छँटनी, किनकी कटेंगी तनखाहें,
सब रह गये थे घर पर दो-एक दिन फाज़िला" 57

नववामपंथी कविता में बीभत्स ढ़ंग के तीखे बिम्ब मौजूद है । ये बिम्ब आज की विड़म्बनापूर्ण परिस्थितियों से उद्भूत हैं

"यह बुढ़ापे की शुरूआत है
अंधेरी कोठरी में सर झुकाकर काँपने
और हड्डियों में ठंढ़ बैठने की शुरूआत
चेहरे धीरे-धीरे धुंधले होते हैं
जीते जी गुम हो गयी एक पीढ़ी
एक दलदल में धँसे गए साथ के लोग ।" 58

तीखे बिम्बों से ज़िन्दगी की असलियतों का पोल खोलना नववामपंथी कवियों का कवि-कर्म है

"आजादी के रथ के पीछे
लाल झण्ड़ा फहराकर
जनता नदी की तरह बहने लगी ।
मानो पानी का सोता फूट निकला हो ।" 59

कवियों ने अत्यन्त सपाट बिम्बों का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर किया है

"पैदल जानेवाले बच्चों का कोई भरोसा नहीं
वे घर से जल्दी चल पड़ते हैं
और स्कूल पहुंचते हैं अक्सर देर से
रास्ते में गंदी हो जाती हैं उनकी पोशाक
जिन्हें संभालते हुए वे भागते हैं
आँखें नीचे किये खड़े होते हैं कतार में ।"60

देहाती अनुभव के कवि धूमिल के सामने बिम्ब विधान का अधुनातन बातायन खुलता है

"एक अजीब-सी प्यार भरी गुर्राहट
जैसे कोई मादा भेड़िया
अपने छौने को दूध पिला रही है और
साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है ।" 61

नववामपंथी कविता का समग्र बिम्ब मानव विरोधी समकालीन, सामाजिक, राजनीतिक संरचना (संस्थाएँ, संसद, न्यायालय, शिक्षालय, प्रशासन-संस्थान आदि की असफलता या उच्च वर्गीयता) तथा व्यवहार के

अनावरण या मूर्तिभंजन का बिम्ब है । अतः नववामपंथी कवि अपनी रचनाओं में जर्जरित व्यवस्था का त्रासद बिम्ब प्रस्तुत करते हैं

"अखबारों में खबर थी
कैलिफोर्निया की एक कुतिया ने
तेरह बच्चे एक साथ जने ।
अखबारों में खबर थी
युवराज ने कंगालों में कम्बल बाँटे ।
अखबारों में खबर थी
विश्वसुन्दरी का वजन 39 किलो है ।
अखबारों में खबर थी
राजनेता से दाढ़ी मुड़ायी ।
एक खबर जो कहीं नहीं थी
किश्ता गौड़ को फाँसी हो गयी
एक खबर जो खबर नहीं थी
भूमैया को फाँसी हो गयी ।" [62]

(किश्ता गौड़ और भूमैया आन्ध्र प्रदेश के नकसलबन्दी, जिन्हें आपात्काल के दौरान फाँसी दे दी गयी थी ।)

नववामपंथी कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता ने उसे बिम्बों के प्रति नयी चेतना दी है । वर्तमान दौर की कविताएँ यह प्रमाणित करती हैं कि भाषा के सम्प्रेषणीय बनाये बिना और कविता में उभर रहे बिम्बों को नए अर्थ दिए बिना या नये बिम्बों का प्रयोग किए बिना कविता को सम्प्रेषणीय नहीं बनाया जा सकता । [63] नववामपंथी कविताओं की सबसे बड़ी ताकत उनकी सहज सम्प्रेषणीय भाषा है, जिसमें बिम्बों का अनावश्यक उलझाव नहीं । कविता में प्रयुक्त बिम्ब ताज़गी लिए हुए हैं

"हमारी यादों में छटपटाते हैं
कारीगर के कटे हाथ
सच पर कटी ज़ुबानें चीखती हैं
हमारी यादों में
हमारी यादों में तड़पता है
दीवारों में चिना हुआ
प्यार ।
यहीं पर
एक बूढ़ा माली
हमारे मृत्यु ग्रस्त सपनों में
फ़ूल और उम्मीद
रख जाता है ।" [64]

कविता में अनेक बिम्बों का सहारा लेकर कवि गांव की गरीबी के मार्मिक चित्र पेश करते हैं । इसमें किसी आख्यान या फैन्टसी का सहारा नहीं लिया गया है । हर बिम्बविधान के केन्द्र में एक विचार है जो क्रूर समकालीन स्थिति को धीरे-धीरे उघाड़ता है और उसे संघर्ष चेतना से सम्बद्ध कर देता है । ये बिम्ब वर्तमान जीवन से गृहीत हैं

"पैदल बच्चों की सूरत अकसर
उनकी माँओं से मिलती है
शाम को जब वे लौटते हैं झुंड के झुंड
जैसे किसी हमले में खदेड़े जाते हुए
पैदल बच्चों की दुनिया में
कभी-कभी फूल आते हैं
पैदल बच्चों की दुनिया में
कभी-कभी हवा बहती है
कभी-कभी उन्हें देखा गया है
कोमल भावनाओं के विरोध में
कुछ शब्द लिखते हुए ।" [65]

नववामपंथी कवियों के काव्य-बिम्बों की विविधता, तथा प्रखरता उनकी रचना-प्रक्रिया की खासियत है । दरअसल नववामपंथी कविता में प्रयुक्त वैविध्यमय तीखे बिम्बों में नवीनता, ताज़गी, तथा अनावरण-क्षमता मौजूद है । ये बिम्ब 'संसद' तथा 'सड़क' से जुड़े रहते हैं । कम शब्दों में, नववामपंथी कविता बौद्धिक और बोझिल काव्यबिम्बों से मुक्त है । कविता में प्रयुक्त बिम्बों में कृत्रिमता और बौद्धिक अटपटापन नहीं है । अतः वर्तमान राजनीति, तथा सामाजिक ज़िन्दगी से जुड़े बिम्बों की बुनावट नववामपंथी कवियों की रचनाओं को अतिरिक्त तीखापन प्रदान करती है ।

प्रतीक प्रत्येक नए काव्य-युग में बहुत से परिचित विधान अपर्याप्त हो जाते हैं । वस्तुजगत् को विशिष्ट दृष्टि से साक्षात्कृत कर उसकी पुनः सृष्टि करने में कवि जिन उपकरणों का प्रयोग करते हैं, प्रतीक-विधान उनमें प्रमुख है । कविता की अर्थ-विवेचना के लिए उसमें प्रयुक्त प्रतीकों का विश्लेषण-संश्लेषण इसलिए जरूरी है क्योंकि कवि इस माध्यम से अपना संवेदनात्मक उद्देश्य संप्रेषित करते हैं । [66]

प्रतीक सारे सृजनात्मक साहित्य के लिए शक्तिशाली माध्यम है । सजग प्रतिबद्ध कलाकारों ने इसकी कभी उपेक्षा नहीं की । रचना प्रक्रिया में प्रतीकों का समावेश उतना ही स्वाभाविक है जितना चित्रकला में आकर्षक उभरते रंगों का प्रयोग होता है । नववामपंथी कवि प्रतीकों के प्रयोग में काफ़ी रुचि लेते हैं । भाषा की मुक्ति के अलावा नववामपंथी

कविता का सबसे प्रबल-पक्ष उसकी प्रतीक योजना है ।

प्राचीन प्रतीक निरन्तर प्रयोग के कारण निष्प्राण हो जाते हैं । अधिक घिसने से उनका मुलम्मा छूट जाता है । नववामपंथी कवियों ने जान लिया है कि तीव्र अनुभूतियों को व्यक्त करने में पूर्ववर्ती कविता में प्रयुक्त प्रतीक असमर्थ है । इसलिए उन्होंने वर्तमान कठोर वास्तविकताओं को अभिव्यक्त करने योग्य नवीन प्रतीकों की खोज की । धूमिल ने अपनी कविताओं में 'शातिर दरिन्दा' और चन्द्रकान्त देवताले ने 'लकड़बग्धा' का प्रयोग किया है । ये नवीन प्रतीक हैं । ये शब्द तो आज के वर्गविरोधी पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी शासकों के लिए प्रतीक रूप में प्रयुक्त हैं । पूर्ववर्ती कविताओं में ऐसे प्रतीकों का अभाव है । 'जंगल', 'पेड़', 'दलदल' आदि शब्द भी नववामपंथी कविता में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त प्रतीक हैं ।

राजकमल चौधरी की लम्बी कविता 'मुक्तिप्रसंग' में प्रयुक्त 'उग्रतारा' कविता का केन्द्रीय प्रतीक है ।"[67] 'उग्रतारा' नदी भी है जो प्रवाह के सत्य को कवि मन में प्रतिष्ठित करती है । 'उग्रतारा' आदिम और शाश्वत नारी, प्रेयसी, माँ और संरक्षिका का एक साथ प्रतीक भी है ।

नववामपंथी कवियों ने निर्जीव प्रतीकों को छोड़कर नवीन सौन्दर्य-चेतना के अनुरूप नए-नए प्रतीकों का प्रयोग भी किया है

"राजपथ की वनतन्त्री व्यवस्था में
मैं अकेला और अरक्षित हूँ
मेरे स्नायुतन्त्र पर भय और आतंक की
कंटीली झाडियाँ उग आई हैं ।
जिन्हें काटने के लिए सख्त हाथों के साथ-साथ
खुरदुरे शब्दों की जरूरत है
इन झाड़ियों को काटने के लिए
ठीक हाथों और ठीक शब्दों की तलाश में
मैं होरी किसान और मोचीराम के पास जाऊँगा ।"[68]

यहाँ प्रयुक्त 'कंटीली झाड़ियाँ' अमानवीयता की प्रतीक हैं । कवियों ने देश की वर्तमान जर्जरित स्थिति को अंकित करने के लिए प्रतीक रूप में 'मौसम', 'पेड़', 'समन्दर', 'जंगल' आदि का प्रयोग किया है । 'भेड़िया' 'बनैले पशु' आदि प्रतीक शब्द भी उनकी कविताओं की संप्रेषणीयता का उत्स है । 'घर' एक सुरक्षित व्यवस्था का प्रतीक है

"अपना रास्ता चलते हुए
हम आपस में कहते हैं
संभल कर चले
हमें, चलना है कई साल
'घर' से निकलना है

घर में प्रवेश करना है
'चींटी' चाल चलते कभी हड़बड़ करते
बचे रहना है आंधी से
जो आने को है कभी भी ।" 69

'दलदल' जर्जरित व्यवस्था का प्रतीक है

"समय है कि तुम
इन कमरों से बाहर आ जाओ
और अपने नए खरीदे जूते को
दलदल में छोड़कर
उस रेगिस्तान में लौट जाओ
जहाँ तुम्हारे साथी
पानी की मशकों के इन्तजार में होंगे ।" 70

चन्द्रकान्त देवताले ने 'लकड़बग्धा हँस रहा है' शीर्षक कविता-संकलन में अनेक स्थलों पर 'सड़क', 'हवा', 'जंगल', 'चट्टान', 'दरख्त', 'तिनका' आदि का बार-बार प्रयोग किया है

"तुम कमरे को सड़क मत बनाओ
भरोसा रखो हवा पर
वह तोड़ कर रख देगी
जंगलों की चुप्पी
गूंगे नहीं रहेंगी दरख्त
मथ देगी समुद्र
झाग में तैरेंगे जीवित शब्द तब तक
अच्छा नहीं लगता सुनना कुछ भी

वेणुगोपाल, गोरख पाण्डेय, लीलाधर जगूड़ी, धूमिल की कविताओं में 'घास' और 'पशु' शब्द का प्रयोग हुआ है । 'घास' और 'पशु' क्रमशः शोषित और शोषक के लिए प्रयुक्त है । ये प्रतीक स्थितियों को वैचारिकता से जोड़कर उन्हें मूर्त करने के औजार है ।

धूमिल की रचनाओं में 'दलदल' शब्द बेईमान व्यक्ति समूहों का प्रतीक है । उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है

"मगर तुम्हारे लिए कहा गया हर वाक्य
एक धोखा है जो तुम्हें दलदल की ओर
ले जाता है ।" 71

आदम खोर पूँजिपतियों की नृशंसता को व्यक्त करने के लिए विक्षुब्ध होकर धूमिल निम्नलिखित कविता में 'चालाक शातिर दरिन्दा' शब्द का प्रयोग करते हैं

"वह आदमी
तुम्हें सिलसिले से काटकर

अलग कर देने पर तुला है
जो आदमी के भेस में
शातिर दरिंदा है
जो हाथों और पैरों से पंगु हो चुका है
मगर नाखून में ज़िन्दा है
जिसने विरोध का अक्षर-अक्षर
अपने पक्ष में तोड़ लिया है ।" 72

यह चालाक दरिंदा आदम-खोर है । आज यह शातिर दरिंदा हमारे आस-पास घूमता है । धूमिल ने यहाँ आम-आदमी को भीड़ और जुलूस से अलग कर देने में लीन प्रतिक्रियावादी के लिए ही शातिरदरिन्दा नाम दिया है । देहाती अनुभव के नववामपंथी कवियों के सामने प्रतीक-विधान का अधुनातन वातायन खुलता है

"एक अजीब-सी प्यार भरी गुर्राहट
जैसे कोई मादा भेड़िया
अपने छौने को दूध पिला रही है और
साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है ।" 73

प्रतीक पूरे सन्दर्भ में कवि की मानसिकता तथा उनके संवेदनात्मक उद्देश्य को सम्प्रेषित कर देते हैं । यदि प्रतीकों के सही प्रयोग से कथ्य सही मायने में सम्प्रेषित हुआ है तो यह एक गुण है । नववामपंथी कवि इसमें सफल हुए हैं ।

निष्कर्ष सम्प्रेषण के माध्यम जो प्रायः भाषा, शब्द, बिम्ब तथा प्रतीक होते हैं, स्वयं स्वतन्त्र नहीं होते । वे कवि की वर्गीय स्थिति, उसका युग (दास युग, सामन्ती युग, पूँजीवादी युग, समाजवादी युग) तथा उसकी कला-विरासत से निर्मित होते हैं । नववामपंथी कविता का शिल्प अधुनातन है । ये भाषा को वस्तु और व्यक्ति के बीच दीवार बनने के विरुद्ध थे । इसलिए उन्होंने काव्य-जगत् से उपेक्षित जनबोली को फिर से कविता में स्थान दिया और उसे सर्जनात्मकता की क्षमता प्रदान की । अभिजात भाषा का तिरस्कार करके अनावश्यक बिम्बों तथा प्रतीकों को भी छोड़कर कविता को अत्यन्त सपाट कर दिया । याने कविता को वाकई जनता की बोली में परिवर्तित कर दिया गया ।

कविता के इतिहास में नववामपंथी कवियों का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उन्होंने एक नयी भाषा से कविता को सृजनात्मक ऊर्जा प्रदान की । हम निस्संकोच कह सकते हैं कि नववामपंथी कवियों ने हिन्दी काव्य-भाषा को नए आयाम दिये जो आगामी कविता को तह तक प्रभावित करने के लिए कामयाब है ।

इस कविता की सारी शब्दावली सामाजिक और राजनीतिक संसार की शब्दावली है । इसमें मानव जगत् से चुने हुए बिम्बों का प्रयोग किया गया है । यह कवि की मानव संसार में दिलचस्पी तथा समाज और यथार्थ के प्रति सजगता के कारण है । भाषा, शब्द, बिम्ब तथा प्रतीक योजना में एक मौलिकता दिखाई पड़ती है । यह मौलिकता कवि की सामाजिक तथा राजनीतिक सम्पृक्तता से अर्जित है ।

उपसंहार

नववामपंथी कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता

प्रतिबद्धता दरअसल कोई नयी संकल्पना नहीं है । वह हमेशा बरकरार रही है, बल्कि काल और परिवेश के मुताबिक उसके अर्थ के आयामों में परिवर्तन जाहिर होता आया है । रासो कवियों और रीतिबद्ध कवियों की प्रतिबद्धता शायद वक्त की सख्त ज़रूरत से उद्भूत चालबाजी या अस्तित्व की सुरक्षा के खयाल से जुड़ी मजबूरी रही होगी, लेकिन प्रेम-पीर से ग्रस्त घनानंद की बेबसी अलग ढंग की थी, मस्तमौला कबीर और रामग्रस्त तुलसी की प्रतिबद्धता अलग राहों से गतिमान थी, वैसी ही निराला, अज्ञेय तथा मुक्तिबोध के बीच भी हम प्रतिबद्धता के नींवाधार पर दीवारें खड़ा कर सकते हैं । लेकिन आखिर ये सब संवेदनशील कवि रहे हैं, संवेदनशीलता का मतलब जैसे कि अज्ञेय ने सूचित किया है, पाठकों के समक्ष भावों को उंडेलना मात्र नहीं है बल्कि वैचारिक रूप में उनकी तरक्की के लिए कोशिश करनी भी है । यही सचमुच सृजनकार की जिंदगी के पीछे का सही तर्क है । इस दृष्टि से उपर्युक्त कवियों की बेहतरीन भूमिका रही होगी, लेकिन 'सामाजिक प्रतिबद्धता' याने मौजूदा समाज के अंतरविरोधों, असमानताओं व अनीतियों को जबरदस्त उभारते हुए तथा उन्हें तहस-नहस करते हुए एक नवीन समाज की संरचना के लिए कविता को औजार के रूप में इस्तेमाल करने की बात पर, साहित्यिक इतिहास में उपलब्ध तमाम कवियों को कसने की कोशिश करें तो हमारे सामने चुनिंदा कवि ही हिमालय की चोटी की भांति अक्खड़ और फक्कड़ खड़े नज़र आयेंगे । इस ठोस धरातल पर अड़िग खड़े होकर ही नववामपंथी कवि अपनी अलग हैसियत, खासियत और मौजूदगी तक अख्तियार करते आये हैं ।

याने नववामपंथी कवियों ने वर्तमान में जीते हुए समूचे वर्तमान को पूर्णतः तिरस्कार किया है क्योंकि उन्होंने वर्तमान की विद्रूपताओं को तह तक अनुभव किया था, असंतोष महसूस किया था, (जैसे कि धूमिल ने लिखा है "उसने तुम्हारे परिवार को/नफ़रत के उस मुकाम पर ला खड़ा किया है /कि कल तुम्हारा छोटा लड़का भी/तुम्हारी पड़ोसी का गला/ अचानक अपने स्लेट से काट सकता है ।) इसके साथ बेहतरी की इच्छा भी उनमें अनवरत जाग्रत हुई थी । कवि वेणुगोपाल ने लिखा है, "शायद इसी वजह दुनिया के पहले आदमी ने लड़ाई शुरू की थी, पहली शब्द और पहली कविता ने भी । जिस दिन, जिस क्षण कविता लिखी जाती है, उसी दिन, उसी क्षण वह लड़ाई में शरीक हो जाती है ।" अर्थात् जिस

कविता ने वर्तमान की नृशंसता के विरुद्ध आक्रामकता का रवैया अपनाया है, वर्तमान की गहरी अंधियारी में परिवर्तन की दिया बत्ती जलाकर परिवेश को प्रदीप्त करने की कोशिश की है, जो हमेशा परिवर्तन का हिमायती और क्रांतिकारियों का अंधाधुंध समर्थन करता आया है, क्रांतिकारियों की तलवार के तेज़ धार की भूमिका अदा करती आ रही है, वो विपक्ष की कविता है, यही दरअसल प्रतिबद्ध कविता भी है ।

नववामपंथी प्रतिबद्ध कवियों ने हमेशा आक्रामक और सपाट भाषा में अपने खयालों को जाहिर किया है ; समय का आघात आत्मसात् करते हुए अपने विकारों को अभिव्यक्ति की तीष्णता के लिए सायास इस्तेमाल किया है ; अपनी आत्मा की छाप जबरदस्त मुद्रित करने की कोशिश की है, मुकाबले की अनिवार्यता की समझ में कविता को संघर्ष और जंग का माध्यम बनाने याने सक्रिय औजार के रूप में उपयोग करने का खतरनाक प्रयास किया है । इसके साथ इस अनवरत जंग में अपनी भूमिका पहचानने की ईमानदारी भी दिखायी है

"तुम अग्रिम टुकड़ी हो कवि
तुम्हारी अपनी कविताओं ने तुम्हें
वहाँ तक पहुँचाया है ।
ऐसे में अपनी भूमिका को
छोटा करके मत देखो ।"

इसलिए हर दम कविता उनके लिए सांस की तरह सहज, अनिवार्य और जीवंत भी रही है ।

इन्होंने सर्वहारा वर्ग के प्रति सिर्फ सहानुभूति ही नहीं दिखायी है, उन्हें अपना कॉमरेड मानते हुए वर्गहीन साम्यवादी समाज की संरचना के लिए उनके अधिनायकत्व को स्वीकार भी किया है क्योंकि कवि को मालूम है कि मज़दूर वर्ग ही वर्तमान इतिहास को पलट कर नये इतिहास की संरचना कर सकते हैं, उनके हाथ ही क्रांति ला सकते हैं "वे हाथ जो लगातार उग रहे हैं/बरस रहे हैं/अवतार ले रहे हैं खेतों में/खलिहानों में, सड़कों पर, गलियों में/वे हाथ होते हैं/एकदम हाथ/और बंदूकों, बमों और बारूद भण्डारों के नियंता ।" कवि तो इनका हम-सफ़र हैं, इनके संघर्ष का साथी, इनकी प्रेरणा और इनकी क्रांतिकारिता को तेज़ करने का कारगर हथियार ।

नववामपंथी कवियों ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद व माओ चिंता को अपना दर्शन माना है । उनकी मान्यता है कि मार्क्सवाद कोरा प्रत्ययवाद नहीं है । वह जड़ भी नहीं उसका निरंतर विकास होता है । वह मानव को मिथ्या आशयवाद से मुक्ति देनेवाला समग्र दर्शन है । वह सिर्फ सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को बुलन्द करनेवाला सीमित सिद्धान्त

नहीं है बल्कि समूचे मानववर्ग की मुक्ति से प्रेरित होकर, उस लक्ष्य की ओर अग्रसर होता क्रियाशील आदर्श है । वह सिर्फ व्याख्या ही नहीं करता है बल्कि परिवर्तन के लिए संघर्षरत भी रहता है, अन्य दर्शनों की तुलना में उसकी व्यतिरिक्तता भी यही है ।

इन कवियों की यह मान्यता है कि क्रांति सिर्फ सत्ता हासिल करने से पूर्ण नहीं होती है । उसकी संपूर्णता और विजय तभी संभव हो सकती है जब यह, क्रांति मानव के मूल्य-बोध, नैसर्गिक व परंपरागत चेष्टाओं, व आदतों में नींवाधार परिवर्तन लाते हुए एक नये मानव के सृजन में कामयाबी हासिल करती है । इसी संदर्भ में माओ की सांस्कृतिक क्रांति की उपादेयता है । सांस्कृतिक क्रांति, वाकई प्रतिक्रांति नहीं बल्कि मानव को साम्यवादी चिन्तन से अभिभूत करते हुए सभ्य व संपूर्ण मानवत्व की ओर ले चलती दीपशिखा है । साम्यवाद की विजय दरअसल सांस्कृतिक क्रांति पर ही निर्भर रहती है ।

इन कवियों ने क्रांति की अवश्यंभाविता और वर्तमान के विनाश पर बार बार ऐलान जाहिर किया है । उनके लिए क्रांति, सशस्त्र क्रांति है । यह क्रांति उनके विरुद्ध है जो शोषण और दमन करते हैं, जो दूसरों को इनसान मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं, जो खुदगर्ज और स्वार्थी हैं जो अल्पमत होते हुए भी बहुमत पर हुक्कुम चलाते हैं और जो इतना खतरनाक हैं कि हमारे अपने हाथ को भी हमारे खिलाफ़ इस्तेमाल करा सकते हैं । इस क्रांति से कोई बच नहीं सकता । सबको अपनी पक्षधरता दिखानी होगी । सबको अपना रोल निभाना होगा, सबको अपने हिस्से की मौत झेलनी होगी

"क्रांति किसी नाटक की रिहर्सल नहीं होती/वह
बस क्रांति होती है/और कुछ नहीं ।
उसमें/सबको/अपने अपने हिस्से की मौत/
झेलनी होती है । सबकी ज़िन्दगी के लिए
अपना अपना रोल निभाते हुए ।" वेणुगोपाल ।

निष्कर्षतः नववामपंथी कवि

मौजूदा समाज का बदलाव चाहते हैं
उसको तहस नहस करते हुए समाजवाद
लाना चाहते हैं, इसके लिए सशस्त्र
क्रांति ही एक उपाय शेष बचा है ।
यह क्रांति सर्वहारा वर्ग ही कर सकते हैं
कवि भी इसमें शामिल हैं
अपनी कविताओं के साथ,
क्योंकि उनकी कविता तो, माध्यम, प्रेरणा

और औजार है क्रांति का । अतः सामाजिक
प्रतिबद्धता, उनके लिए
समाज के हित में अपने को इस्तेमाल का
योग्य बनाना है, अपना रोल निभाते हुए
खुद को मिटा देना है ।

सन्दर्भ

पहला अध्याय

1. Jean Paul Sartre- Situations - Part-2 P.26,27
   शिवप्रसाद सिंह-आधुनिक परिवेश और नवलेखन-उद्धृत पृ.31,32
2. Jean Paul Sartre The purpose of writing Spring Thunder - December 1990. 45
3. Jean Paul Sartre - What is Literature ? - Introduction ix
4. The Other Horizon Kanchankumar 32
5. Jean Paul Sartre - What is Literature ? Introduction ix
   "Commitment for Sartre also implies a conscious affirmation of certain values and of the writer's function as an agent of Freedom. The Writer is urged try and embrace the human condition in its totality and in exploring a situation, to unite the specific with the absolute literature must help the reader to make himself full and free man in and through history."
6. Jean Paul Sartre - Situations 90
   "Our liberty today is nothing except the free choice to fight in order to become free."
7. Jean Paul Sartre The Age of Reason Introduction by Henri Peyre
8 Jean Paul Sartre - What is Literature ? Introduction ix
   "Sartre asserts that the writer - any writer - is inevitably committed because he cannot soar above history

whatever his pretensions to doing so."

9. Jean Paul Sartre - What is Literature ? 22
"We think that the writer should commit himself completely in his works, and not in an objectly passive roll by putting forward his vices, his misfortunes, and his weaknesses but as a resolute will and as a choice as this total enterprise of living that each one of us is, it is then proper that we take up this problem at its begining and that we in our turn, ask ourselves 'Why does one write ?"

10. Jean Paul Sartre What is Literature ? X
"Literature should not be a sedative but an irritant, acatalyst provoking men to change the world in which they live and in so doing to change themselves. By adopting this role the writer ensures that the content of his work will avoid sterile dogmatism. By anticipating the point of view of the potentially free reader he frees himself. The process is dialectical and reciprocal."

11 विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन मार्क्सवाद पृ.244

12. विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन मार्क्सवाद 243

13. 32

14. शिवकुमार मिश्र मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन इतिहास तथा सिद्धान्त 150

15. Literature and Art - K.Marx and Engels - Current Book House Bombay-1, 1956. 1
"In the Social Production which men carry on, they enter

into defnite relations that are indispensable and independant of their material forces of production, the sum total of their relations ~~of their relations~~ of production constitutes the economic structure of society - the real foundation on which rises a legal and political super structure and to which correspond definite forms of social consciousness. The mode of production in material life determines the social, political and intellectual life processes in general."

16. Karl Marx and Frederick Engels- Manifesto of the Communist Party, 1975 40
"With the dissolution of the Primitive Communities Society begins to be differ entiated into separate and finally antagonistic classes."

17. Karl Marx and Frederick Engels- Manifesto of the Communist Party--1975 41
"Society as a whole is more and more splitting up into two great hostile camps, into two great classes directly facing each other : Bourgeoise and Proletariat."

18. चंचल चौहान जनवादी समीक्षा 45

19. Avnerziz - Foundations of Marxist Aesthetics - "Art as a form of social consciousness". 24

20. Marx Engels collected works - xxiii. 193

21. Dave Laing - The Marxist Theory of Art. 5

"Only through the objectively unfolded richness of man's essential being is the richness of subjective human sensibility (a musical ear, an eye for beauty etc)in short senses capable of human gratification, senses confirming themselves as essential power of man, either cultivated or brought into being.... the forming of the five senses is a labour of the entire history of the world down to the present."

22. Avnerziz - Foundations of Marxist Aesthetics. 284
"All narrow simplification is alien to the Marxist-Leninist understanding of class nature of art. Marxism comes out against bourgeois aesthetics, which pays little heed to the class essence of art."

23. On Literature and Art - Anatoly Lunacharsky. 96
"The Proletariat is able to renew the culture of mankind."

24. Towards a Sociology of Novel - Goldmann.
"Bourgeois ideology....is the first ideology in History that is both radically profane and historical, the first ideology whose tendency is to deny anything sacred whether the other worldly sacredness of the transcendental religions or the immanent sacredness of the historical future. It is the fundamental reason why bourgeois society created the first radically non-aesthetic form of consciousness."

25. Avner Zis - Foundations of Marxist Aesthetics. P.289
"There is no real freedom under capitalism. Society based on the power of money enslaves the artist, prostituting his art."

26. Marx and Engels Selected Works, Vol.I, Moscow-1969. III

27. -do- -do- III

28. Lenin - On Culture and Cultural Revolution - The Three sources and three component parts of Marxism. 37
"The wage worker sells his labour power to the owner of plant, factories and instruments of labour. The worker spends one part of the day covering the cost of maintaining himself and his family (wages), while the other part of the day he works without remuneration, creating for the capitalist surplus value, the source of profit, the source of the wealth of the capitalist class. The doctrine of surplus value is the cornerstone of Marx's economic theory."

29. Marx and Engels - Selected Works XXVI (i) 377

30. -do- -do- 377
"A writer is a productive labourer not so far as he produces ideas but in so far as he enriches the publisher. Leipzig who fabricates books under the direction of his publisher."

31. विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन मार्क्सवाद 36

32. रमेशकुन्तल मेघ आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण 222

33. K.Marx - Literature and Art 54

34. K.Marx and F.Engels - Manifesto of the Communist Party - 'Bourgeois and Proletarians'. 40
"The history of all hitherto existing society is the history of class struggles."

35. K.Marx and F.Engels -Manifesto of the Communist Party - "Proletarians and Communists".
"The history of all past society has consisted in the development of class antagonisms, antagonisms that assumed different forms at different epochs."

36. Marx and Engels-Selected Works-Vol.I.
"Of all classes that face to face with bourgeoisie today, the proletariat alone is a revolutionary class." 117

37. Deve Laing - The Marxist Theory of Art. 5
"In no sense does he regard his works as a means. They are ends in themselves, so little are they means for him and others that when necessary, he sacrifice his existence to others."

38. Marx-Engels - Literature and Art 32

39. --do- -do- 2

40. Lenin-Marx, Engels and Marxism 47

41. V.I Lenin - On Literature and Art - 1984 - Introduction. 27

42. V.I. Lenin Collected Works - Vol.10 48, 49

43. आमुख - अक्तूबर -1988 समझदार लेखकों की नासमझी. 15

44. आलोचना अप्रेल-जून 1970 14

45. V.I.Lenin - Where to Begin? - Party organisation and Party Literature. 14

"Literature must become a component of organised, planned and integrated social - Democratic party work."

46. "The Working Class and its Press." "In Lenin's Work 'Party Organisation and Party Literature' the principle of party commitment is elaborated first and foremost as a proclamation of the open link between the artist and the proletariat, together with its party - Avner Zis - Foundation of Marxist Aesthetics. 285

47. V.I.Lenin - On Literature and Art. 77

"First of all, we are discussing party literature and its subordination to party control. Everyone is free to write and say whatever he likes, without any restrictions. But every voluntary association (including a party) is also free to expel members who use the name of the party to advocate anti-party views. Freedom of speech and the Press must be complete."

48. Avner Zis - Foundations of Marxist Aesthetics. 286

"Commitment of Socialist Art does not mean that artists are encouraged to take out party membership. Membership as

such does not guarantee that anartist's creative work will automatically be committed. At the same time an artist may not actually be enrolled in the party, yet in his art be deeply committed to the party's cause. It is common knowledge that Gorky was not a party member. Nor was Mayokovsky, yet he never thought of his creative work as anything but dedicated to the service of the revolution, the people and the party."

49. Avner Zis- Foundations of Marxist Aesthetics. Konstantin Fedin wrote : "For me the art of literature has a single purpose : it is an activity which serves society, serves the people." 287

50. Lenin - Marx, Engels, Marxism 31

51. लेनिन और साहित्य देवराज उपाध्याय
हंस सितम्बर, 1938.

52. V.I.Lenin On Literature and Art - Introduction. 30

53. -do- -do- 29

54. --do- -do- 23

55. आलोचना अप्रेल-जून, 1970.
लेनिन और साहित्य - भीष्म साहनी 11
Lenin on Literature and Art. 18

56. Avner Zis--Foundations of Marxist Aesthetics. 285
"Commitment presupposes that art possess a high degree of Social relevance, and be actively and deliberately geared to the service of the people."

57 शिवकुमार मिश्र मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन 211
इतिहास तथा सिद्धान्त

58. Avner Zis -Foundations of Marxist Aesthetics. 284,285
"Lenin enhanced the original Marxist tenet with regard to the class essence of art through his elaboration of the Principle of Commitment. The Leninist Principle of Commitment in art and the Principle ofart's class essence are of equal importance. In Class Society art naturally is always class oriented, and its Commitment stems precisely from this fact."

59. लेनिन ग्रन्थावली जिल्द -31 317
उद्धृत आलोचना अप्रेल-जून, 1970 14

60. Lenin-Socialism and War 1977-
Lenin-Against Imperialist War-1966. 202
"Imperialism is capitalism of the stage of development at which the dominance of monopolies and finance capital is established."

61. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता डॉ. भक्तराम शर्मा 120

62. Avner Zis-Foundations of Marxist Aesthetics. 284
"Art is always committed to the one particular class but its class character is particulrly in evidence at times when social contradictions are exacerbated. It is therefore natural that in the present age which is characterised by the transition from capitalism to socialism, the class nature of art emerges even more clearly, if not blatantly, for the ideological struggle in the sphere of art is becoming more and more acute."

63. V.I.Lenin - Collected Works - Vol.10 P.48
Lenin - Where to begin. Party Organisation 17
The Working Class and its Press.
"There can be no real and effective 'freedom' in a society based on the power of money, in a society in which the masses of working people live in poverty and the handful of rich live like parasites.... Are you free in relation to your bourgeois publisher Mr.Writer, in relation to your bourgeois public."

64. Lenin On Literature and Art - Party Organisation and Party Literature. 78
"The freedom of the bourgeois writer, artist or actress is simply masked (or hypocratically masked) dependance on the money-bag, on corruption, on prostitution."

65. V.I.Lenin-Where to begin - Party organisation and Party Literature - The Working Class and its Press 14
"Literature must become part of the common cause of the Proletariat, 'a cog and a screw' of one single great Social-Democratic Mechanism set in motion by the entire politically conscious vanguard of the entire working class. Literature must become a component of an organised, planned and integrated Social Democratic Party work."

66. V.I.Lenin-Collected works Vol.10 48

"It will be a free literature because the idea of socialism and sympathy with the working people, and not agreed or careerism, will bring ever new forces to its ranks. It will be a free literature, because it will serve, not some satiated heroine, not the bored, upper ten thousand, suffering from falty degeneration, but the millions and tens of millions of working people the flower of the country, its strength and its future."

67. Selected Readings from the works of Maotse Tung talks at the Yenan Forum on Literture and Art.
"The purpose of our meeting to-days is precisely to ensure that Literature and art fit well into the whole revolutionary machines as a component part, that they operate as powerful weapons for uniting and educating the people and for attacking and destroying the enemy and that they help the people fight the enemy with one heart and one mind."

68. Selected Readings from the works of Maotse Tung 250

"In our struggle for the liberation of the Chinese people there are various fronts, among which there are the fronts of the pen and of the gun, the cultural and the military fronts. To defeat the enemy we must rely primarily on the army with guns. But this army alone is not enough; we must also have a cultural

army, which is absolutely indispensable for uniting our own ranks and defeating the enemy. Sincee the May 4th Movement such a cultural army has taken shape in China, and it has helped the Chinese revolutions, gradually reduced the domain of China's Feudal culture which serves imperialist aggression, and weakened their influence.... Literature and art have been an important and successful part of the cultural front since the May 4th Movement."

69. Selected Readings from the works of Mao-tse tung 271

"There is in fact no such thing as art for art's sake, art that stands above classes, art that is detached from or independent of politics. Proletarian literature and art are part of the whole Proletarian revolutionary cause."

70. Sected Redings from the works of Mao-tse Tung. 271

"Party work in literature and art occupies a definite and assigned posion in party revolutionary work as a whole and is subordinated to the revolutionary tasks set by the party in a given revolutionary period. Opposition to this arrangement is certain to lead to dualism or pluralism, and in essence amounts to 'politics-Marxist, art bourgeois', as with Trotsky."

71. Selected Readings from the works of Mao-tse Tung 272

"Literature and art are subordinate to politics, we mean class politics, the politics of the masses, not the politics of a few so-called statesman. Politics, whether revolutionary or counter revolutionary, is the struggle of class against class, not the activity of a few individuals."

72. Selected Readings from the works of Mao-tse-Tung 277

"The fundamental point of departure for literature and art is love, love of humanity."

73. Selected Readings from the works of Mao-Tse Tung 277

"There will be genuine love of humanity - after classes are eliminated all over the world. Classes have split society in to many antagonistic groupings; there will be love of all humanity when classes are eliminated, but not now."

74. Selected Readings from the works of Mao-Tse Tung 259 260

"Therefore, our literature and art are first for the workers, the class that leads the revolution".

75. Selected Readings from the works of Mao-Tse Tung 259

"Indeed literature and art exist which are for the exploiters and oppressors. Literature and art for the landlordclass are feudal literature and art."

76. Mao-Selected Readins from the works of Mao Tse Tung 259

"Literature and Art for the bourgeoisie are bourgeois literature and art."

77. -Selected Readings from the works of Mao-Tse Tung 259

"People like Liang Shih-Chiu, whom Lu Hsun criticized, talk about literature and art as transcending classes, but in fact they uphold bourgeois literature and art and oppose Proletarian literature and art."

78. येनान की कला-साहित्य गोष्ठी में भाषण एवं हमारे पार्टी इतिहास के कुछ अनुभवें
माओ-त्से-तुंग 29

79. 31
32

80. Selected Readings from the works of Mao Tse Tung 255
257

"If our writers and artists who come from the intelligentsia want their works to be well received by the masses, they must change and remould their thinking and their feelings. Without such a change, without such remoulding, they can do nothing well and will be misfits."

81. -Selected Readings from the works of Mao-Tse-Tung 256
257

"Anyone who considers himself a revolutionary Marxist writer and especially any writer who is a member of the Communist Party, must have a knowledge of Marxism - Leninism."

82. -Selected Readings from the works of Mao Tse Tung 263

"By Marxism we mean living Marxism which plays an effective role in the life and struggle of the masses, not Marxism inwords. With Marxism in real life, there will be no more sectarianism."

83. Selected Readings from the works of Mao-Tse Tung 281

"To study Marxism means to apply the dialetical materialist and historical materialist view point in our observation of the world of society and of literature and art; It does not mean writing philosophical lectures in to our works of literature and art."

84. Selected Readings from the works of Mao-Tse Tung 275

"The bourgeoisie always shuts out proletarian literature and art, however great their artistic merit."

85. Mao-Selected works Vol.III-1969 97

86. Selected Readings from the works of Mao-Tse Tung 279

"If you are a bourgeois writer or artist, you will eulogize not the proletariat but the bourgeoisie, and if you are a proletarian writer or artist, you will eulogize not the bourgeoisie but the proletariat and working people."

87. "Since our literature and art are basically for the workers ; peasants and soldiers, "Popularization" means to popularize among the workers, peasants

and soldiers, and "raising standards" means to advance from their present level. 264

Selected readings from the works of Mao-Tse-Tung.

88. -do- -do- 272

"If we had no literature and art even in the broadest and most ordinary sense we could not carry on the revolutionary movement and win victory."

89. Mao - Selected Works - Vol.1969- 271

90. Mao-Tse-Tung Talk at an enlarged working conference, January, 1969. Peking Review, No.7, July 7, 1978.
"Freedom is the recognition of necessity and the transformation of the objective world."

91. Manoranjan Mohanty - The political Philosophy of Mao-Tse Tung. 77
"The Cultural Revolution provided the form and the focus to the idea of continuing revolution. It established the need for revolutionary class struggle involving the masses to uphold proletarian line. The focus was now on the struggle against capitalism, imperialism and revisionism with unprecedented stress."

92. Plekhanov - Art and Social Life 68
"It appears, then, that in present day social conditions the fruits of art for art's sake are far from delectable."

93. Plekhanov Art and Social life. 18

"The belief in art for art's sake arises when artists and people keenly interested in art are hopelessly at odds with their social enviroment."

94. Plekhanov - Art and Social life 5

Some say: "Society is not made for the artist, but the artist for society. The function of art is to assist the development of man's consciousness, to improve the social system."

Others emphatically reject this view: "In their opinion, art is an aim it itself to convert it into a means of achieving any extraneous aim, even the most noble, is to lower the dignity of a work of art."

95. Plekhanov Art and Social life 73

"Thus we find that art for art's sake has turned in to art for money's sake."

96. Plekhanov - Art and Social life 74

"Is it surprising that at a time of universal venality, art also becomes venal ?"

97. Plekhanov - Art and Social life 87

"In decadent times art 'must' be decadent. This is inevitable."

98. Plekhanov Art and Social life 79

"The majority of our present-day artists adheres to the bourgeios standpoint and are quite impervious to the great emancipitory ideas of our time."

99. Plekhanov - Art and Social life 75
76

"Gifted artist will increase his power substantially if he absorbs the great emancipatory ideas ofour time. Only these ideas must become part of his flesh and blood, and he must express them precisely as an artist, He must be able, more over, to form a correct opinion of the artistic modernism of the present-day ideologists of the bourgeoisie."

100 विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन मार्क्सवाद 67

101 136

102. शिवकुमार मिश्र. मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन इतिहास तथा सिद्धान्त 278

103. 263
264

104. Luhsun's thought on the league of left wing writers - A talk given at the Inagural meeting of the left wing writers - on March 2, 1930. Re printed from chinese Literature No.10. 1971."

105. K.Marx, Theses on Feuerbach 'selected works' in three Volumes Vol. I 15

"The philosophers have only interpreted the world in various ways, the point however, is to 'change' it."

106. विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन मार्क्सवाद भूमिका IV

107 नयी-समीक्षा अमृतराय 66

108. विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन मार्क्सवाद भूमिका III

109. 17

110. 21

111. The Art of the seventies: A balance sheet - K.Sachidandan 3

"Antonio Gramsci's concept of 'hegemony' embraces every field of human activity including culture. Class struggle, according to him is not limited to the econimic base it extends to religion, art, literature, customs, beliefs, rituals and even proverbs that express 'common sense', the folklore of philosophy and ideological and discursive construct constituting an invisible element of the superstructure of particular social formations. Gramsci always pointed to the need of combating this cultural hegemony by developing alternative practices based on people's 'good sense' that resists the hegemonic ideology."

112.	विश्वंभर नाथ उपाध्याय	समकालीन मार्क्सवाद	पृ.83
113.			45
			46
114.			46
115.			247
116.			87
117			185
118.			189
119.			76
120.			77
121			103
122.	प्रेमचन्द	कुछ विचार	6,7
123.			7,8
124.			9
125.	दामोदर सदन	वर्ष 10: अंक 4 जुलाई, सितम्बर 1988	24
126.	कमलेश्वर		25
127	प्रेमशंकर		18
128.	डॉ.शिवकुमार मिश्र		23
129.	गजानन माधव मुक्तिबोध - नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र		109

* * * * * *

अध्याय - 2

1 गाजानन माधव मुक्तिबोध नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ. 32
2. Christopher Caudwell - Illusion and Reality. "Art is the product of the society." 5
3. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास 9
4. शिवप्रसाद सिंह का लेख नवलेखन - स्थिति और समस्याएँ कल्पना 210 अगस्त-सितम्बर 1969 10
5. अमृतराय - आधुनिक भावबोध की संज्ञा 118
6. टाइम्स ऑफ इंडिया - बम्बई 24 मई 1985 एन इंटरनेशनल मोनेटरी फंड, स्टाफ सर्वे
7 डॉ. राजकृष्णन नवभारत टाइम्स बंबई 24 मार्च 1985
8. आलोचना - अप्रेल-जून 1970. वर्ष 19. नवांक 13 सशस्त्र क्रान्ति की समस्याएँ 122
9. पी. जे. जेम्स - नवदिगन्त सितम्बर 1990 ऋणजाल में फँसी हुई बजट 4
10. पी. जे. जेम्स - नवदिगन्त सितम्बर 1990 ऋणजाल में फँसी हुई बजट 4
11 डॉ. हरदयाल हिन्दी कविता का समकालीन परिदृश्य 83
12. घनानन्द एम. शर्मा जदली मोहन राकेश व्यक्तित्व एवं कृतित्व 30
13. डॉ. गोपाल राय - अज्ञेय और उनके उपन्यास 31
14. विश्वनाथ त्रिपाठी कथा मौन भंग का संकेत आलोचना त्रैमासिक वर्ष 19 नवांक 17 अप्रेल-जून 1971 1
15. " 2
16. 1
17 डॉ. रामविलास शर्मा प्रगति काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल 19
18. 21
19. जगदीश नारायण श्रीवास्तव समकालीन कविता 147
20. सं. कंचन कुमार आमुख अक्तूबर 88 3
21 4
22. 5
23.
24. शुकदेव चट्टोपाध्याय साहित्य का वर्गचरित्र और हिंसा - आमुख फरवरी 1984 22
25. सशस्त्र क्रान्ति की समस्याएँ आलोचना अप्रेल-जून 1970 122

26. पूर्वी हवा मई 1990 वर्ष-1 अंक 2 पृ. 1
27 Red Star 29 September 1991 - Recent Developments in Soviet Union and the Revisionist Gangs in India. 7
28. " 7
29. पूर्वी हवा मई 1990 2
30. पूर्वी हवा - पूर्वी यूरोप समाजवाद का नहीं, पूँजीवाद का संकट है - 'हरख' 3
31 Norman Kurtin; Lasse and Lasse Berg - Face to Face Fascism and revolution in India 203
"The struggle in Naxalbari was not primarily over land, accordingly to the Naxalites, land was only a minor issue; the main issue was political power state power. This power can be gained only through armed struggle. This is a fundamental difference between them and the bourgeois and petty bourgeois parties, including India's two communist parties.
32. The Great Proletarian Cultural Revolution in Historical Perspective W.C. Deb 2
33. International Review - 61. 2nd Quarter 1990 1
34. Red Star February 1991 5
35. World Revolution - April 1991. "Only the working class can create an alternative." 1
36. गजानन माधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व जनक शर्मा 135
37 डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिशील काव्य-धारा और केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील साहित्य और वामपक्ष 26
38. धर्मवीर भारती डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम 47
39. डॉ. रामदरश मिश्र ; डॉ. महीप सिंह समकालीन साहित्य चिन्तन 44
40. विश्वनाथ त्रिपाठी 'कथा मौन भंग का संकेत आलोचना अप्रेल-जून 1971. वर्ष 19 नवांक 17 पूर्णांक 54 144

41. समकालीन साहित्य चिन्तन डॉ.रामदरश मिश्र, डॉ.महीप सिंह पृ. 75
कविता और विविध आन्दोलन डॉ.सुखबीर सिंह
42. 75/76
43. डॉ.देवेश ठाकुर नयी कविता के सात अध्याय 168
44. डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी कविता यात्रा रत्नाकर से रघुवीर सहाय तक 97
45. डॉ.श्यामसुन्दर मिश्र अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य 192/193
46. डॉ.रामदरश मिश्र, डॉ.महीप सिंह समकालीन साहित्य चिन्तन 75
47 78
48. मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला के प्रतीक चंचल चौहान 9
49. डॉ.कृष्ण दत्त पालीवाल नया सृजन नया बोध 208
50. अखिल भारतीय प्रगतिशील साहित्यकार सम्मेलन क्यों और कैसे रिपोर्ट लहर जुलाई,अगस्त 1973 13
51. डॉ.रणजीत का लेख नयी कविता और समसामयिक काव्यान्दोलन लहर जुलाई,अगस्त 1973 18
52. डॉ.रमेश कुन्तल मेघ क्योंकि समय एक शब्द है 460
53. डॉ.त्रिलोचन पाण्डेय छायावादोत्तर हिन्दी कविता प्रमुख प्रवृत्तियाँ 205
54. मुक्तिबोध नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र 79
55. डॉ.विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन सिद्धान्त और साहित्य 16
56. अक्षय उपाध्याय अगली कविता के आस-पास पहल जून 79 156
57. सं.विश्वनाथ प्रसाद तिवारी दस्तावेज-42 साहित्य त्रैमासिक वर्ष 11.अंक 2.जनवरी-मार्च 1989 14
58. दस्तावेज-42 साहित्य त्रैमासिक. सं.विश्वनाथ प्रसाद तिवारी. वर्ष 11 अंक 2 जनवरी,मार्च 89 जनवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ वशिष्ठ अनूप 14
59. उत्तरार्द्ध सं.सव्यसाची अंक 20. अक्टूबर 1982 जनवादी साहित्य विशेषांक कुंवरपाल सिंह 108
60. गजानन माधव मुक्तिबोध नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र-जनता का साहित्य 79

61 नमितसिंह द्वारा प्रस्तुत "साहित्य को जनता से जोडने की प्रक्रिया पहल-12 पृ.176

62 177

63. रामदरश मिश्र आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि 40

64. आलोचना जुलाई-सितम्बर 1970 76

65. आलोचना जुलाई-सितम्बर 1970 मुक्तिबोध मूल्यांकन परिचर्चा इन्द्रनाथ मदान 1

66. " 5

67 मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष ; अपरपक्ष जगदीश शर्मा 33

68. चाँद का मुँह टेढ़ा है गजानन माधव मुक्तिबोध 26

69. मुक्तिबोध मूल्याँकन परिचर्चा इन्द्रनाथ मदान आलोचना-जुलाई,सितम्बर 1970 6

70. मुक्तिबोध शुद्ध प्रगतिवादी थे जगदीश कुमार आलोचना जुलाई,सितम्बर 1970 41

71 42

72. गजानन माधव मुक्तिबोध चाँद का मुँह टेढ़ा है इस चौडे उँचे ढ़ीले पर 221

73. मुक्तिबोध और धूमिल के बारे में नामवर सिंह आलोचना त्रैमासिक वर्ष 37. अंक 89. अप्रेल,जून 1989 48

74. मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व जनकशर्मा 137

75. चाँद का मुँह टेढ़ा है गजानन माधव मुक्तिबोध 20

76. त्रिलोचन शास्त्री से वीरेन्द्र मोहन की बातचीत आलोचना त्रैमासिक. वर्ष 37.अंक 89 अप्रेल,जून 1989 50

77 " 50

78. चंचल चौहान मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला के प्रतीक 114

79. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी समकालीन हिन्दी कविता उद्धृत 39

80. सं.नेमीचन्द्र जैन मुक्तिबोध रचनावली-2 370

81 " 371

82. सं नेमीचन्द्र जैन मुक्तिबोध रचनावली -2 ब्रह्मराक्षस 318

83. चाँद का मुँह टेढा है 273

84. चंचल चौहान मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला के प्रतीक 15

85. " 17

86. मुक्तिबोध का मानवतावाद ओमप्रकाश अग्रवाल आलोचना वर्ष 19. नवांक 17.अप्रेल,जून 1970 41

87 मुक्तिबोध रचनावली-2 नेमीचन्द्र जैन अंधेरे में 322

88. मुक्तिबोध रचनावली-2 नेमीचन्द्र जैन पृ.240
चकमक की चिनगारियाँ
89. चाँद का मुँह टेढा है गजानन माधव मुक्तिबोध 299
अंधेरे में
90. मुक्तिबोध-रचनावली-2 नेमीचन्द्र जैन 410
चम्बल की घाटी में
91 मुक्तिबोध-रचनावली-2 नेमीचन्द्र जैन अंधेरे में 351
92. चाँद का मुँह टेढ़ा है मुक्तिबोध 140
93. मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला का प्रतीक चंचल चौहान 104
94. सं.गंगाप्रसाद विमल गजानन माधव मुक्तिबोध का
रचना संसार प्रकाशकीय
95. गाजानन माधव मुक्तिबोध का रचना संसार
सं.गंगा प्रसाद विमल
लोकहितवादी चेतना के कवि मुक्तिबोध-हरिनारायण व्यास 12

अध्याय 3

1 रमेश कुन्तल मेघ साक्षी है सौन्दर्यप्राश्निक पृ.242

2. K.Marx - 'A Contribution to the critique of political economy - Moscow 1970 21

MECW XIII 819

"It is not consciousness of men that determines their being, but on the contrary, their social being, that determines their consciousness."

3. V.I.Lenin - collected works Vol.38 212

"Men's consciousness not only reflects the objective world but creats it."

4. Mao-Tsetung - "Where do correct ideas come from ? Selected Readings. Mao said "Matter can be transformed in to consciousness and consciousness in to matter." 503

5. रमेशकुन्तल मेघ साक्षी है सौन्दर्यप्राश्निक पृ.244
6. अन्सर्ट फिशर कला की जरूरत अनुवादक 137
अनुवादक रमेश उपाध्याय
7 धूमिल- संसद से सडक तक पटकथा 114
8. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 95
9. धूमिल संसद से सडक तक सच्ची बात 82
10. 83
11 लीलाधर जगूडी रात अब भी मौजूद है हत्या 98
12. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 114
13. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत सुरक्षा के करतब 80/
81
14. वेणुगोपाल-सिर्फ 4 -'क्योंकि समय एक शब्द है 488
रमेशकुन्तल मेघ उद्धृत
15. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 112
16. देवेन्द्र कुमार समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी 77
कविता स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद रघुवंश उद्धृत
17 धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 114
18. लीलाधर जगूडी रात अब भी मौजूद है स्वतन्त्र जुबान 22
19. 20
20. डॉ.सुधांशु कुमार (उडिया) आजकल जून 1983 17
21 शिवराम कारंत (कन्नड) आजकल जून 1983 18
22. आर.शौरी रंजन (तमिल) आजकल जून 1983 18
सामाजिक जीवन में बुद्धिजीवी की भूमिका परिचर्चा
23. धूमिल कल सुनना मुझे एक कविता कुछ रचनाएँ 27
24. रामदरश मिश्र बाह्य तो वसन्त आ गया है 148
हिन्दी की प्रतिनिधि श्रेष्ठ कविताएँ सं.बच्चन
25. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 139
26 141
27 लीलाधर जगूडी नाटक जारी है इस व्यवस्था में 49
28. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 86
29 चन्द्रकान्त देवताले आग हर चीज में बतायी गयी थी 120
मैं भीतर से चाहता हूँ
30. चन्द्रकान्त देवताले भूखण्ड तप रहा है 14
चकमक पत्थर
31 82
32. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है इस व्यवस्था में 41

33. धूमिल कल सुनना मुझे रोटी और संसद पृ. 33
34. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 88
35. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 115/116
36. धूमिल संसद से सडक तक कवि 1970 69/70
37 चन्द्रकान्त देवताले आग हर चीज में बतायी गयी थी- 'इन्कमटैक्स आफीस' 98
38. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 62
39. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 110
40. चन्द्रकान्त देवताले लकडबग्धा हंस रहा है फिलवक्त 40
41 62/63
42. धूमिल संसद से सडक तक उस और की बगल में लेटकर 29
43. रामदरश मिश्र पक गयी है धूप ये कविताएँ भूमिका
44. धूमिल संसद से सडक तक शहर, शाम और एक बूढा मैं 79/80
45. धूमिल संसद से सडक तक अकाल दर्शन 20
46. कैलाश बाजपेयी वातायन जुलाई 1968 29
47 देवेन्द्र कुमार 'बहस जरूरी है'- दस्तावेज-42, जनवरी-मार्च 1989 जनवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ उद्धृत 17
48. गोरख पाण्डेय जागते रहो सोनेवालो 88/89
49. लीलाधर जगूडी बची हुई पृथ्वी 'बलदेव खटिक' 103
50. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है प्रेमालाप 27
51 28
52. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है इस व्यवस्था में 48
53. धूमिल संसद से सडक तक भाषा की रात 94
54. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है हर तरह रोना है 41
55. " 126
56. चन्द्रकान्त देवताले दीवारों पर खून से रचना प्रक्रिया के पूर्व 9
57 धूमिल- कल सुनना मुझे गांव में कीर्त्तन 76
58. चन्द्रकान्त देवताले आग हर चीज में बतायी गयी थी 134

59. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा पृ.119
60. 140
61 140
62. लीलाधर जगूडी बची हुई पृथ्वी बलदेव खटिक 102
63. लीलाधर जगूडी रात अब भी मौजूद है हत्या 97
64. उत्तरा जनवादी लेखक संघ के तृतीय बिहार राज्य सम्मेलन के अवसर पर प्रकाशित 6
65. 6
66. अरुण कमल अपनी केवल धार 17
67 Mao- Problems of Art and Literature. 29
68. रमेश कुन्तल मेघ-साक्षी है सौन्दर्यप्राशिनक 252
69. " 252
70. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 111/112
71 111
72. नरेन्द्र वसिष्ठ रूपान्तरण की कहानी हिन्दी की प्रतिनिधि श्रेष्ठ कविताएँ .सं. बच्चन 100
73. धूमिल संसद से सडक तक भाषा की रात 94/95
74. धूमिल संसद से सडक तक प्रौढ़ शिक्षा 51
75. 51
76. धूमिल संसद से सडक तक नक्सलबाडी 74/75
77 चन्द्रकान्त देवताले आग हर चीज में बतायी गयी थी सवाल-जवाब 118
78. समकालीन लम्बी कविता की पहचान डॉ.युद्धवीर धवन 97
79. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 103
80. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 137
81 लीलाधर जगूडी रात अब भी मौजूद है 71
82. 78
83. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 137
84. त्रिनेत्र जोशी अभिव्यक्ति सं.बालकृष्णराव गोविन्द रजनीश उद्धृत 67
85. कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह आधी रात समकालीन कविता की भूमिका विश्वंभरनाथ उपाध्याय 142
86. सौमित्र मोहन लुकमन अली समकालीन कविता की भूमिका सं.विश्वंभरनाथ उपाध्याय [3]165

87 धूमिल संसद से सडक तक शहर, शाम और पृ. 11/
एक बूढा मैं 12
88. धूमिल संसद से सडक तक राजकमल चौधरी के लिए 35
89. लीलाधर जगूडी रात अब भी मौजूद है कार्यकर्ता से 30
90. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है 9
91 धूमिल संसद से सडक तक शहर, शाम और 80
एक बूढा मैं
92. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 115/
116
93. धूमिल संसद से सडक तक शहर, शाम और 80
एक बूढ़ा मैं
94. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 139
95. धूमिल संसद से सडक तक
96. वेणुगोपाल हवाएँ चुप नहीं रहती अखबार में 58
97 समकालीन कविता, बदलते मूल्य ज्योत्सना 19
दिसम्बर 1985
98. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है घर संभालते हुए 86
99. समकालीन कविता, बदलते मूल्य ज्येत्सना 19
दिसम्बर 1985
100. समकालीन कविता और समाज मनोज सोनकर 17
दीर्घा 48 दिसम्बर 1988 हरदयाल 'अखबार में
अंधेरा' उद्धृत
101 दीर्घा-48 दिसम्बर 88 शोभानाथ यादव 17
भस्मासुर की भूमिका उद्धृत
102. ऋतुराज अबेकस दीर्घा -48 85/
86
103. सं. जगदीश गुप्त अजामिल-त्रयी 55
104. सुधाकर मिश्रा कुर्सी पहल-14 4
105. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है हर तरह होना है 41
106. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 130
107 लीलाधर जगूडी नाटक जारी है 24
108. धूमिल संसद से सडक तक 131
109. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा
110. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है अनैतिक 67
111 मंजुल उपाध्याय धूमिल और समकालीन कविता 66
112. Poetry and politics - C.M.Bowra 2

113. सं. हरदयाल संचेतना-33 जनवरी-मार्च 1975 पृ. 10
बिहार आन्दोलन सही सन्दर्भ की तलाश परिचर्चा
114. " 11
115. The Rebel - Camus - Forword P.viii
116. नरेन्द्र मोहन का लेख विद्रोह का स्वर और 17
समकालीन कविता गवाह
117 The Rebel I - Camus 17
118. नरेन्द्र मोहन, देवेन्द्र इस्सर विद्रोह और साहित्य 19
119. धूमिल, कविता पर एक वक्तव्य नया प्रतीक 3
फरवरी 1978
120. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है 110
121 " टेलिफोन 97
122. -इस यात्रा में 79
123. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत गोया आईने में 88/
चले गए हो 89
124. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत ब्लेकमेलर 101
125. " 113
126. गोया आईने में 87
चले गए हो
127 धूमिल संसद से सडक तक प्रौढ़ शिक्षा 53
128. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत प्यार का वक्त 63
129. धूमिल संसद से सडक तक शहर,शाम और 81
एक बूढ़ा मैं
130. धूमिल संसद से सडक तक बीस साल बाद 12
131 वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत तैयारी 22
132. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 124
133. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है 9
134 चन्द्रकान्त देवताले आग हर चीज में बतायी गयी थी 105
135. वेणुगोपाल हवाएँ चुप नहीं रहतीं 73
136. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत फूल (दो) 37
137 वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत गुजर रहा हूँ 30
138. विनय श्रीकर ज्योत्सना 21
139. लीलाधर जगूडी घबराए हुए शब्द 24
140. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत फूल (एक) 36
141 वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत मेरा वर्तमान 34
142. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत तैयारी 24
143. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत हवाएं चुप 31
नहीं रहतीं

144. लीलाधर जगूडी रात अब भी मौजूद है 24/
उदासी के खिलाफ़ 25
145. धूमिल संसद से सडक तक भाषा की रात 101
146. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत ब्लैकमेलर (सात) 108
147 गोया आइने में 83
चले गए हो
148. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 'उडते हुए' 15
149. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत घर लौटते हुए 19
150. लीलाधर जगूडी नाटक जारी है इस व्यवस्था में 43
151 स्वप्निल श्रीवास्तव इसलिए दस्तावेज 42 15/
अंक 5. 1979 उद्धृत 16
152. वेणुगोपाल हवाएँ चुप नहीं रहतीं 95
यह तो युद्ध है (1, 2, 3) 97, 100
153. वेणुगोपाल हवाएं चुप नहीं रहती यह तो युद्ध है (5) 101
154. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत प्यार का वक्त 64
155. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी साथ चलते हुए 45, 46
दस्तावेज 42. उद्धृत 19
156. श्रीकान्त जोशी अनुमेहा. वर्ष 10. अंक-3 सितम्बर 88
157 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कविता कल की लडाई 18
के लिए दस्तावेज 42
158. लीलाधर जगूडी रात अब भी मौजूद है 24
उदासी के खिलाफ
159 मंगलेश डबराल घर का रास्ता 75
160 मंगलेश डबराल घर का रास्ता बाँये हाथ का खेल 56
161. मंगलेश डबराल घर का रास्ता सफेद दीवार 52, 53
162. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 111
163. वेणुगोपाल हवाएँ चुप नहीं रहतीं 103
164. लीलाधर जगूडी रात अब भी मौजूद है 39
जनता की ज़मीन पर
165. धूमिल संसद से सड़क तक पटकथा 125, 126
166. वेणुगोपाल हवाएँ चुप नहीं रहतीं प्रॉक्सी-2 64
167 नरेन्द्रसिंह साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना
168. गोरखपाण्डेय जागते रहो सोनेवालो 1-3
169. 26
170. अनुवाक् शोध पत्रिका वचनदेव कुमार
अंक 8. वर्ष 1977 परमानन्द श्रीवास्तव का लेख 15

171 सं. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, सं. मंजुल उपाध्याय समकालीन कविता की भूमिका पृ. 3

172. आलोकधन्वा की कविता उद्धृत उर्मिलेश का लेख 76
समकालीन जनवादी कविता नई कहानी सितम्बर '79

173. वेणुगोपाल हवाएँ चुप नहीं रहतीं 8

174 8

175. दीर्घा -5 जनवरी-मार्च 1978 17

176. राजेन्द्र मिश्र समकालीन कविता सार्थकता और समझ 7

177 लीलाधर जगूडी नाटक जारी है इस व्यवस्था में 47

178. धूमिल कविता पर एक वक्तव्य नया प्रतीक- 2
1978 फरवरी

179. धूमिल संसद से सड़क तक मुनासिब कार्रवाई 91

180. आलोचना 1989. अप्रेल-जून 55

181 धूमिल कल सुनना मुझे "मैं हूँ" 62

182. धूमिल कल सुनना मुझे कविता के द्वारा हस्तक्षेप 66

183. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत 97

184. धूमिल संसद से सड़क तक मुनासिब कार्रवाई 88, 89

185. धूमिल कल सुनना मुझे भाषा की रात में 2
धूमिल की भूमिका

186. दिविक रमेश हिन्दी की प्रतिनिधि कविताएँ-सं. बच्चन

187 धूमिल संसद से सड़क तक - कल सुनना मुझे 80

188. बालचन्द्रन चुल्लिकाड आज की कविता 14
रसना दिसम्बर-जनवरी 1980

अध्याय 4

1 शिवकुमार मिश्र मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन पृ. 252
इतिहास तथा सिद्धान्त

2. Anatoly Lunacharsky - On Literature and Art. "And so the Marxist critic takes first of all as the object of his analysis the content of the work, the social essence which it embodies." 14

3. नामवरसिंह कविता के नए प्रतिमान 101
काव्य-भाषा और सृजनशीलता

4. प्रभात त्रिपाठी प्रतिबद्धता और मुक्तिबोध का काव्य -उद्धृत 156
ओक्टोवियो पॉज़ 'द लेबिरिन्थ ऑफ सोलिट्यूड 164

5. रामस्वरूप चतुर्वेदी भाषा और संवेदना पृ. 39
काव्य-भाषा का स्वरूप
6. सं.प्रभात मित्तल आज की कविता
नन्दकिशोर नवल का लेख कविता में सम्प्रेषणीयता
की समस्या 176
7 डॉ.रमेशकुन्तल मेघ क्योंकि समय एक शब्द है
उद्धृत (सिफ-6 कुमार विकल) 488
8. लीलाधर जगूडी 'असली आधार की ओर' पहल - 13
जनवरी 1979 231
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी भाषा और संवेदना
काव्य-भाषा का स्वरूप 39
10. धूमिल संसद से सड़क तक कवि 1970 67
11 धूमिल संसद से सड़क तक कविता 10
12. धूमिल संसद से सड़क तक शहर में सूर्यास्त 47
13. धूमिल संसद से सड़क तक कविता 9
14. धूमिल कल सुनना मुझे भाषा की रात में
धूमिल की भूमिका 1
15. धूमिल संसद से सड़क तक जनतन्त्र के सूर्योदय में 15
16. धूमिल संसद से सड़क तक कवि 1970 67
17 धूमिल संसद से सड़क तक भाषा की रात 105
18. गौरख पाण्डेय जागते रहो सोनेवालो कविता 63, 64
19. वेणुगोपाल चट्टानों का जलगीत कविता भूमिका
20. गोरव पाण्डेय जागते रहो सोनेवालो कुर्सीनामा 48
21 देवेन्द्र इस्सर साहित्य और आधुनिक युगबोध 181
22. वेणुगोपाल हवाएँ चुप नहीं रहतीं 'यह तो युद्ध है' 102
23. गोरव पाण्डेय जागते रहो सोनेवालो
मेहनत के बारहमासा 132
24. नामवरसिंह कविता के नए प्रतिमान 105
25. राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय नयी कहानी सितम्बर 1979 187
26. नरेन्द्रसिंह साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना 263
27 चंचल चौहान मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला का प्रतीक 30, 31
28. Sartre - What is Literature 13
"The committed writer knows that to reveal is to change and that one can reveal only by planning to change."
29. ओक्टोवियो पॉज़ 'द लेबिरिन्थ ऑफ सोलिट्यूड' 164

30. नामवर सिंह कविता के नए प्रतिमान काव्य-भाषा और सृजनशीलता पृ. 94
31 नामवरसिंह कविता के नए प्रतिमान 93
32. राजीव सक्सेना आत्मनिर्वासन तथा अन्य कविताएँ 25
अस्तित्व का गीत
33. धूमिल संसद से सडक तक 15
34. धूमिल कल सुनना मुझे धूमिल की अन्तिम कविता 80
35. अरुण कमल अपनी केवल धार अपील 51
36. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा 129,30
37 अरुण कमल अपनी केवल धार हाथ 39
38. धूमिल कल सुनना मुझे किस्सा जनतन्त्र 16
39. धूमिल कल सुनना मुझे कविता श्रीकाकुलम 20
40. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी समकालीन हिन्दी कविता 197
41 चंचल चौहान मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला के प्रतीक 19
42. धूमिल कविता पर एक वक्तव्य नया प्रतीक ;
फरवरी 1978
43. धूमिल संसद से सड़क तक बीस साल बाद 12
44. धूमिल संसद से सड़क तक जनतन्त्र के सूर्योदय में 15
45. धूमिल संसद से सड़क तक जनतन्त्र के सूर्योदय में 14
46. धूमिल संसद से सड़क तक बसंत 23
47 धूमिल संसद से सड़क तक बीस साल बाद 11, 12
48. धूमिल संसद से सड़क तक बीस साल बाद 11, 12
49. धूमिल संसद से सड़क तक जनतन्त्र के सूर्योदय में 15
50. धूमिल संसद से सड़क तक जनतन्त्र के सूर्योदय में 15
51 धूमिल संसद से सड़क तक अकाल दर्शन 17
52. धूमिल संसद से सड़क तक मोचीराम 42
53. धूमिल संसद से सड़क तक पटकथा 108
54. धूमिल संसद से सड़क तक पटकथा 134
55. धूमिल संसद से सड़क तक पटकथा 130
56. धूमिल कल सुनना मुझे सापेक्ष्य संवेदन 53
57 अरुण कमल अपनी केवल धार यात्रा 14,15
58. मंगलेश डबराल घर का रास्ता शुरूआत 36
59. कंचन कुमार वी.आई.लेनिन एक कविता
लहर जुलाई-अगस्त 1972 10
60. मंगलेश डबराल घर का रास्ता पैदल बच्चे स्कूल 30
61 धूमिल संसद से सड़क तक पटकथा 122-23

62. अरुण कमल अपनी केवल धार खबर पृ. 17
63. डॉ. रामदरश मिश्र, महीपसिंह समकालीन साहित्य चिन्तन 93
64. गोरख पाण्डेय जागते रहो सोनेवालो फूल और उम्मीद 9
65. मंगलेश डबराल घर का रास्ता पैदल बच्चे स्कूल 30, 31
66. चंचल चौहान मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला का प्रतीक 23
67 सं. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, मंजुल उपाध्याय समकालीन कविता की भूमिका समकालीन कविता एक विश्लेषण 51
68. नरेन्द्र सिंह साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना कुमार विकल की कविता उद्धृत 223
69. मंगलेश डबराल घर का रास्ता 18
70. कुमार विकल 'विपथगामी' उद्धृत नरेन्द्र सिंह साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना 221
71 धूमिल संसद से सड़क तक प्रौढ़ शिक्षा 51
72. धूमिल संसद से सड़क तक मुनासिब कार्रवाई 92
73. धूमिल संसद से सड़क तक पटकथा 122, 123

*****
****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क. काव्य-संग्रह

1 कल सुनना मुझे धूमिल युगबोध प्रकाशन प्रथम संस्करण'77
2. संसद से सड़क तक धूमिल राजकमल प्रथम संस्करण-1972
3. सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र धूमिल वाणी प्रकाशन-प्र.सं. 1984
4. नाटक जारी है लीलाधर जगूडी अक्षर प्रकाशन प्र.सं. 1972
5. बची हुई पृथ्वी लीलाधर जगूडी-राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 1977
6. घबराये हुए शब्द लीलाधर जगूडी-राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 1981
7 इस यात्रा में लीलाधर जगूडी साहित्य भारती प्र.सं. 1977
8. चट्टानों का जलगीत वेणुगोपाल शीर्षक प्रकाशन-द्वि.सं 1981
9. हवाएँ चुप नहीं रहतीं वेणुगोपाल-संभावना प्रकाशन-प्र.सं. 1980
10. आग हर चीज में बतायी गयी थी चन्द्रकान्त देवताले राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 1989
11. भूखण्ड तप रहा है चन्द्रकान्त देवताले संभावना प्र.सं. 1982
12. लकड़बग्धा हँस रहा है चन्द्रकान्त देवताले-संभावना प्र.सं. 1980
13. जागते रहो सोनेवालो गोरख पाण्डेय राधाकृष्ण प्र.सं. 1983

14. अपनी केवल धार अरुण कमल वाणी प्रकाशन प्र.सं.1980
15. घर का रास्ता मंगलेश डबराल राधाकृष्ण प्र.सं.1988
16. पहाड़ पर लालटेन मंगलेश डबराल राधाकृष्ण प्र.सं.1981
17 सूरज सब देखता है-जुगमन्दिर तायल-आनन्द प्रकाशन-प्र.सं.1968
18. पक गयी है धूप - रामदरश मिश्र-भा.ज्ञा.पी.प्रकाशन-प्र.सं.1969
19. चाँद का मुँह टेढ़ा है गजानन माधव मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन द्वि.सं.1965

ख. आलोचनात्मक ग्रन्थ

20. अकविता और कला सन्दर्भ- श्याम परमार-कृष्ण ब्रदर्स-प्र.सं.1968
21 अभिव्यक्ति- सं.बालकृष्ण राव, गोविन्द रजनीश-
रंजन प्रकाशन प्रथम संस्करण
22. अज्ञेय सं.विश्वनाथ प्रसाद तिवारी नेशनल पब्लि. प्र.सं.1978
23. अज्ञेय और उनके उपन्यास -डॉ.गोपालराय दि मैकमिलन
कंपनी ऑफ इन्डिया लिमिटेड प्र.सं.1975
24. अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य
श्यामसुन्दर मिश्र विद्या प्रकाशन प्र.सं.1971
25. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि
रामदरश मिश्र अभिनव प्रकाशन प्र.सं.1975
26. आज की कविता सं.प्रभात मित्तल पश्यन्ती प्रका. प्र.स.1960
27 आत्मनेपद अज्ञेय भारतीय ज्ञान पीठ प्र.सं.1960
28. आधुनिक कविता और युग दृष्टि शिवकुमार मिश्र
विद्यामन्दिर .प्र.सं.1966
29. आधुनिक कविता नए सन्दर्भ डॉ.वीरेन्द्र सिंह
पंचशील प्रकाशन प्र.सं.1975
30. आधुनिक परिवेश और नवलेखन शिवप्रसाद सिंह
लोकभारती प्रकाशन प्र.सं.1970
31 आधुनिक भाव-बोध की संज्ञा अमृतराय
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं.1972
32. आधुनिक हिन्दी कविता-सं.जगदीश चतुर्वेदी-मैकमिलन-प्र.सं.1975
33. आधुनिक हिन्दी कविता विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
राजकमल प्रकाशन प्र.सं.1977
34. आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य डॉ.बरसानेलाल
चतुर्वेदी प्रभात प्रकाशन प्र.सं.1973
35. आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ
नरेन्द्र मोहन आदर्श साहित्य प्रकाशन प्र.सं.1973

36. आधुनिकता के पहलू विपिनकुमार अग्रवाल
लोकभारती प्रकाशन प्र.सं.
37 आधुनिकता और हिन्दी साहित्य इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन प्र.सं.1973
38. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक
चेतना डॉ.पीताम्बर सरोदे अतुल प्रकाशन -- प्र.सं.1987
39. आधुनिकताबोध और आधुनिकीकरण रमेशकुन्तल
मेघ अक्षर प्रकाशन प्र.सं.1969
40. आर्थिक स्वतन्त्रता के मूल उपादान मुराद नेपेसोव
पीपुल पब्लिशिंग हाउस 1984
41 आलोक पंथा कृष्णबिहारी मिश्र नेशनल पब्लि. प्र.सं.1977
42. आस्वाद के धरातल धनंजय वर्मा विद्या प्रकाशन प्र.सं.1969
43. एक साहित्यिक की डायरी गजानन माधव
मुक्तिबोध भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन प्र.सं.1964
44. कटघरे का कवि: 'धूमिल' गणेश तुलसीराम
अष्टेकर पंचशील प्रकाशन प्र.सं.1979
45. कविता का जीवित संसार-अजित कुमार-अक्षर प्रकाशन-प्र.सं.1972
46. कविता के नए प्रतिमान नामवर सिंह राजकमल प्र.सं.1968
47 कविता यात्रा रत्नाकर से रघुवीर सहाय
रामस्वरूप चतुर्वेदी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया प्र.सं.1976
48. कहीं भी कविता खत्म नहीं होती सं.नरेन्द्र मोहन
संभावना प्रकाशन प्र.सं.1978
49. कलाविमर्श मार्क्सवादी मापदण्ड सं.रवीन्द्रन
'निला' (मलयालम) प्र.सं.1983
50. काव्य बिम्ब डॉ.नगेन्द्र नेशनल पब्लि.हाउस प्र.सं.1967
51 काव्य की भूमिका दिनकर उदयाचल प्रकाशन प्र.सं.1958
52. कृति और सन्दर्भ डॉ.नवल किशोर स्टुडेन्ट ब्रदर्स 1976
53. क्योंकि समय एक शब्द है रमेशकुन्तल मेघ
लोकभारती प्रकाशन प्र.सं.1975
54. किसान कैसे लडते हैं स्वामी. सहजानंद सरस्वती
पीपुल पब्लिशिंग हाउस जनवरी 1989
55. कुछ विचार प्रेमचन्द
56. गजानन माधव मुक्तिबोध की रचना संसार
सं.गंगाप्रसाद विमल सुषमा पुस्तकालय प्र.स.
57 गजानन माधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व
जनक शर्मा पंचशील प्रकाशन प्र.सं.1983

58. छायावाद की प्रासंगिकता रमेशचन्द्र शाह
राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.सं.1973
59. जनवादी समीक्षा नया चिन्तन, नये प्रयोग
चंचल चौहान पांडुलिपि प्रकाशन प्र.सं.1979
60 तारसप्तक के कवियों की समाज चेतना वाणी प्र. प्र.सं.1987
61 तीसरा साक्ष्य सं.अशोक बाजपेयी संभावना प्र. प्र.सं.1979
62. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास
लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय राजपाल एण्ड सन्स 1982
63. नया काव्य नया मूल्य ललित शुक्ल मैकमिलन प्र.सं.1975
64. नया सृजन नया बोध डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल
राजेन्द्र पुस्तक केन्द्र प्र.सं.1975
65. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र मुक्तिबोध
राधाकृष्ण प्रकाशन 1971
66. नयी कविता के सात अध्याय देवेश ठाकुर
मौलिक साहित्य प्रकाशन प्र.सं.1970
67 नयी कहानी की भूमिका कमलेश्वर शब्दकार प्र.सं.1978
68. नयी समीक्षा अमृतराय हँस प्रकाशन 1977
69. निमूल वृक्ष का फल लक्ष्मीनारायण लाल
लिपि प्रकाशन सितम्बर 1978
70. पश्यन्ती - धर्मवीर भारती भारतीय ज्ञानपीठ प्र. 1971
71 पूँजीवाद को दरकिनारकर समाजवाद की ओर बढ़ने
का रास्ता कार्ल मार्क्स फ्रडरिक एंगेल्स
व्ला.इ. लेनिन पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस हिन्दी सं. 1987
72. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल
डॉ.रामविलास शर्मा परिमल प्रकाशन प्र.सं.1986
73. प्रतिक्रियाएँ डॉ.देवराज राजकमल प्रकाशन प्र.सं.1966
74. प्रतिबद्धता और मुक्तिबोध का काव्य प्रभात त्रिपाठी
वाग्देवी प्रकाशन प्र.सं.1990
75. प्लेटो के काव्य सिद्धान्त निर्मला जैन
नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्र.सं.1965
76. फिलहाल - अशोक बाजपेयी राजकमल प्रकाशन प्र.सं.1968
77 बदलते परिप्रेक्ष्य नेमीचन्द्र जैन राजकमल प्र. प्र.सं.1968
78. भवन्ती अज्ञेय राजपाल एण्ड सन्स प्र.सं.1972
79. भगतसिंह की सुनें सुधीर विद्यार्थी
निशान्त नाट्य मंच प्र.सं.1990
80. भगतसिंह के दस्तावेज सं.नीलिमा शर्मा
निशान्त नाट्य मंच द्वि.सं.1989

81. भाषा और संवेदना रामस्वरूप चतुर्वेदी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन प्र.सं. 1964
82. मार्क्स की रचना 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना
प्रगति प्रकाशन, मोस्को 1987
83. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता डॉ. भक्तराम शर्मा
वाणी प्रकाशन प्र.सं. 1980
84. मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन इतिहास तथा
सिद्धान्त डॉ. शिवकुमार मिश्र म.प्र. हिन्दी
ग्रन्थ अकादमी प्र.सं. 1973
85. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन प्र.सं. 1984
86. मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला के प्रतीक
चंचल चौहान पाण्डुलिपि प्रकाशन प्र.सं. 1976
87 मेहनतकशों की सत्ता क्या है ? दमीत्री दमीतेर्को,
वसीली युगाचोव प्रगति प्रकाशन, मोस्को 1988
88. मोहन राकेश व्यक्तित्व एवं कृतित्व
डॉ. धनानन्द एम्. शर्मा 'जदली' शान्ति प्रकाशन सं. 1990
89. येनान की कला साहित्य गोष्ठी में भाषण एवं हमारे
पार्टी इतिहास के कुछ अनुभवें माओ-त्से तुंग
क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी संघ, बिहार प्र.सं. 1983
90. लंबी कविताओं का रचना विधान डॉ. नरेन्द्रमोहन
मैकमिलन प्र.सं. 1977
91 लेनिन की रचना 'राज्य और क्रान्ति'
व. गव्रीलोव प्रगति प्रकाशन मोस्को प्र.सं. 1989
92. लेनिन मार्क्सवाद के ऐतिहासिक विकास की
कुछ विशेषताएँ प्रगति प्रकाशन, मास्को 1982
93. 'वामपंथी' बचकानापन और टुटपुँजिया मनोवृत्ति
व्ला. इ. लेनिन प्रगति प्रकाशन, मास्को 1988
94. विचार कविता की भूमिका सं. नरेन्द्रमोहन,
महीपसिंह नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्र.सं. 1973
95. विद्रोह और साहित्य सं. नरेन्द्रमोहन, देवेन्द्र इस्सर
साहित्य भारती प्रकाशन प्र.सं.
96. समकालीन कविता की भूमिका सं. डॉ. विश्वम्भरनाथ
उपाध्याय, मंजुल उपाध्याय मैकमिलन प्र.सं. 1976
97 समकालीन सिद्धान्त और साहित्य डॉ. विश्वम्भरनाथ
उपाध्याय प्र.सं. 1976

98. समकालीन हिन्दी कविता विविध परिदृश्य
गोविन्द रजनीश देवनागर प्रकाशन प्र.सं.
99. समकालीन हिन्दी साहित्य वेदप्रकाश शर्मा
'अमिताभ' जवाहर पुस्तकालय प्र.सं. 1973
100. समकालीन कविता का व्याकरण परमानन्द श्रीवास्तव
शुभदा प्रकाशन प्र.सं. 1980
101 समकालीन साहित्य चिन्तन डॉ. रामदरश मिश्र,
डॉ. महीप सिह प्रभात प्रकाशन प्र.सं. 1986
102. समकालीन कविता और धूमिल डॉ. मंजुल उपाध्याय
अनामिका प्रकाशन प्र.सं. 1986
103. समकालीन लम्बी कविता की पहचान
डॉ. युद्धवीरधवन संजीव प्रकाशन प्र.सं. 1987
104. समकालीन हिन्दी कविता विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 1982
105. समकालीन कविता पर एक बहस जगदीश नारायण
श्रीवास्तव चित्रलेखा प्रकाशन प्र.सं. 1978
106. समकालीन कविता संप्रेषण विचार आत्मकथ्य
वीरेन्द्रसिंह पंचशील प्रकाशन प्र.सं. 1987
107 समकालीन मार्क्सवाद विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
पंचशील प्रकाशन प्र.सं. 1987
108. समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता
डॉ. रघुवंश केन्द्रीय हिन्दी संस्थान प्र.सं. 1972
109. साहित्य और आधुनिक युग बोध देवेन्द्र इस्सर,
जयकृष्ण अग्रवाल प्र.सं. 1973
110. साहित्य और समसामयिक संदर्भ डॉ. शिवकुमार मिश्र
कला प्रकाशन प्र.सं. 1977
111 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य रामगोपाल सिंह चौहान-
विनोद पुस्तक मन्दिर प्र.सं. 1965
112. साक्षी है सौन्दर्यप्राश्निक रमेश कुन्तल मेघ
नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्र.सं. 1980
113. सोवियत सत्ता और स्त्रियों की स्थिति व्ला. इ. लेनिन
प्रगति प्रकाशन, मास्को 1980
114. हिन्दी कविता का समकालीन परिदृश्य
डॉ. हरदयाल आलेख प्रकाशन प्र.सं. 1978
115. हिन्दी के प्रगतिशील कवि डॉ. रणजीत
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस 1973

116. हिन्दी की प्रतिनिधि श्रेष्ठ कविताएँ
सं. डॉ. हरिवंशराय बच्चन हिन्दी पॉकेट बुक्स, प्र.सं. 1978

ग. आलोचनात्मक साहित्य (अंग्रेजी)

117. A Contribution to the critique of Political Economy. K.Marx - Moscow 1970

118. An Introduction to the Study of Literature - William Henry Hudson - Kalyani Publishers, 6th Indian Edition 1975

119. Against Imperialist War - V.I. Lenin - Progress Publishers - Moscow. 1966

120. Articles on Soviet Literature Anatoly Lunacharsky - Moscow 1958

121 Art against Ideology-Fischer 1970

122. Art and Social Life-Plekhanov Foreign Language Publishing House, Moscow. Translated 1957
from the Russian by A.Fine Berg - Third printing 1977

123. Art and Society - Adolfo-sanchus Vascus 1973

124. Art and Revolution-Harmonds Worth, John Berger 1970

125. Dialectical Materialism - An Introductory Course - Maurice Conforth - National Book Agency. November 1972

126. Face to Face - Fascism and Revolution in India - Lasse and Lisa Berg - Berkeley, California 1971
English translated by Norman Kurtin

127. Foundation of Marxist Aesthetics - Avnerzis - Progress Publishers, Moscow. 1977

128. Glassnost Perestroika - Crisis of Imperialism - M.M. Somasekharan. 1990

129. India The Critical Years - Kuldip Nayar - Vikas Publications. 1971
130. Indian Government and Politics - D.C. Gupta - Vikas Publishing House. Third Revised and Enlarged Edition 1976
131. India and the raj 1919-1847. Vol.I - Glory, Shame and Bondage - Sunitikumar Ghosh-Prachi, Calcutta 1989
132. India in Crisis - J.D.Sethi Vikas Publishing House. 1975
133. Illuminations - W.Benjamin 1970
134. Illusion and Reality - Christopher Caudwell, PPH Ltd 1986
135. Karl Marx and World Literature - S.S.Prawer 1978
136. Karl Marx in His Earlier Writings - H.P.Adoms-London 1940
137. Karl Marx : A Biography - Progress Publishers - Moscow 1970
138. Lu Hsun's Thoughts on the League of the Left Wing Writers.
A talk given at the Inaugural Meeting of the League of Left Wing Writers on March 2 1930. Reprinted from Chinese Literature 1971 October.
139. Lenin and Philosophy - Louis Althusser - London 1971
140. Mao-Tse tung, Talks on Philosophy 1964 August 18 Mao Tse tung unrehearsed, Edited by Stuart Schram 1974
141. Marxism and Aesthetics-H-Koh 1962
142. Marxist Theory of Literature-H.Gallas. 1964
143. Marx before marxism - David Maclellam Harmonds Worth 1972
144. Marx and Engels on Literature and Art, Edited

by L.Buxendal, S.Morawsky
St.Louis.
145. Marx's Theory of Alienation
Istvan Marzaros London 1970
146. Marxism and Literature -
Terry Eagletone - London 1978
147. Marx, Engels and Lenin - On
the Dictatorship of the
Proletariat - Foreign
Languages Press, Peking
First Edition 1975
148. Marx, Engels, Marxism -
Lenin. Progress Publishers
Moscow - Reprinted 1979
149. Manifesto of the Communist
Party - K.Marx. F.Engels.
Progress Publishers, Moscow 1975
150. On Literature - Maxim Gorkey
Progress Publishers, Moscow 1965
151. On Literature and Art -
V.I.Lenin - Progress Publi-
shers, Moscow, 4th Edn. 1978
152. On Literature and Art -
Anatoly Lunacharsky -
Progress Publishers - Ist Edn. 1965
153. Philosophical Problems of
Revolution - K. Venu
Vijayan Book Stall, Kottayam
First English Edition 1982
• Problems of Art and
Literature - Mao Tse tung
Indian Edition 1952
• Poetry and Politics 1900-1960
C.M.Bowra - The syndics of
the Cambridge University
Press, Cambridge 1966
154. On Culture and Cultural
Revolution - Lenin - 4th prg. 1985
155. Revolutionary Literature
from the Philippines
Edited by E.San Juan
156. Resonance of Distant
Thunders - The Cultural
impact of Naxalbari in
Kerala - K.A. Mohandas -
Janakeeya Kala Sahithya Vedi 1990

157. Socialism and War - Lenin
Progress Publishers, Moscow 1977
158. Selected Readings from the
works of Mao Tse tung -
Foreign Languages Press,
Peiking 1971
159. Selected Works Vol.V -
Mao Tse tung. Peiking
160. Selected Writings in Sociology
and Social Philosophy -
Harmonsworth 1963
161. Selected Philosophical
Works - Moscow. Progress
Publishers 1974
"Art and Social Life- 631-687
162. The Philosophy of the Art
of Karl Marx - M.Lifshitz -
London 1973
163. The Poverty of Theory and
Essays - E.P.Thomson-London 1979
164. The Judgement - (Insidestory
of the Emergency in India)
Kuldip Nayar- Vikas Publ. 1977
165. The Indian Big Bourgeoisie -
Sunitikumar Ghosh-Calcutta 1985
166. The other Horizon - Kanchan-
Kumar - Progress Publications-
Chittaranjan Park, Delhi 1988
167. The task of the China League
for Civil Rights - Soong
Ching Ling-Vshasri Printers 1981
168. The Cultural Revolution in
the context of Expanding
Revisionism - M.M.Somasekharan
Janakeeya Kala Sahithya Vedi 1990
169. The Great Proletarian Cultural
Revolution in Historical
Perspective- Paper presented
by W.C.Deb - 4th AILRC Confe-
rence at Trichur.
170. V.I. Lenin : Collected Wroks
(Vol.X) Moscow, Progress
Publishers. 1972
171. What is Literature - Jean
Paul Sartre- Translated

by Bernard Frechtman with an Introduction by David Caute Methien and Co.Ltd. 1978

172. Where to begin ? Party Organisation and Party Literature- 'The Working Class and its Press - Progress Publishers, Moscow. 1971

घ: पत्रिकाएँ -

173. अनुवाक् शोध पत्रिका सं.वचनदेव कुमार-अंक-8 1977
174. अतएव. वर्ष-1 अंक-3 सं.रामपाल सिंह
175. आलोचना. त्रैमासिक. वर्ष-19. नवांक-अप्रेल-जून 1970
176. आलोचना.वर्ष-19. नवांक-17 अप्रेल-जून 1971
177 आलोचना वर्ष.19 नवांक.21 पूर्णांक-58 अप्रेल-जून 1972
178. आलोचना त्रैमासिक. वर्ष-37 अंक-89. अप्रेल-जून 1989
179. आमुख अक्टूबर 1988
180. आमुख फरवरी 1984
181 आजकल जून 1983
182. आजकल वर्ष-44. अंक-12. पूर्णांक-536-अप्रेल 1989
183. इन्कलाब अगस्त 1991
184. इन्टरनेशनलिस्ट नं.2 1990
185. उत्तरा जनवादी लेखक संघ के तृतीय बिहार राज्य सम्मेलन के अवसर पर प्रकाशित
186. उत्तरार्द्ध सं.सव्यसाची अंक.20 अक्टूबर-जनवादी साहित्य विशेषांक 1982
187 कल्पना 210. अगस्त-सितम्बर 1969
188. कल्पना 213. फरवरी 1970
189. दस्तावेज 40. वर्ष.10 अंक-4.जुलाई-सितम्बर 1988
190. दीर्घा 5. जनवरी-मार्च 1978
191 दीर्घा -43. वर्ष-11 अंक-3. पूर्णांक-43 -सितं. 1987
192. दीर्घा जून 1977
193. दीर्घा 48. वर्ष-12. अंक-4. पूर्णांक-48.दिसम्बर 1988
194. नया प्रतीक फरवरी 1978
195. नवदिगन्त सितंबर 1990
196. नयी कहानी सितंबर 1979

197	पूर्वी हवा मई	1990
198.	पहल 14. जून	1979
199.	भाषा त्रैमासिक	1980
200.	रसना दिसम्बर-जनवरी (मलयालम)	1980
201	लहर सितंबर	1974
202.	विशाल भारत मार्च	1937
203.	वातायन जुलाई	1968
204.	संग्राम अंक 18.सितम्बर	1991
205.	EPW-Vol.XXXVI.Jan.26	1991
206.	EPW-Vol.XXIII No.11. March	1988
207	International Review-61. 2nd Qtr.	1990
208.	Red Star. 23 Feb.1991. April-May	1991
209.	Spring Thunder - Vol.I. No.2 March	1986
210.	Spring Thunder - December	1990
211	World Revolution - April	1990

****
*

UNIVERSITY LIBRARY ★ COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY ★
COCHIN - 682 022